

Barcode : 1990010086278

Title - samb puran

Author - vinod chandra srivastava

Language - hindi

Pages - 364

Publication Year - 1975

Barcode EAN.UCC-13



1990010-086278

# साम्ब-पुराण

(सटीक हिन्दी रूपान्तर)

प्रावक्षयन : डॉ. राजेन्द्र कुमार

डॉ. विनोद चंद्र भीवास्तव

प्राचीन इतिहास, यंकुशि पूर्व पुरानस्य विभाग

इन्द्राधावाद विश्वविद्यालय

इन्द्रोलिम्बिका एविनकेशन्स  
इन्द्राधावाद

**प्रकाशक**

इण्डोला जिकल एंड इन्फ्रास्ट्र

४ सी/२ बैंक रोड

इलाहाबाद

प्रथम संस्करण नवम्बर १९७५

मूल्य : ३५ रु०

४ डालर

२ पौण्ड

समस्त अधिकार लेखक के अधीन

**मुद्रक**

अनिल प्रेस

३१ बी, कचेहरी नाका के बीचे

इलाहाबाद

माँ  
जनकनन्दनी  
की  
पुण्य स्मृति  
में  
सावर समर्पित

## FOREWORD

It is well known that the *Samba-purana* is one of the two Puranic works which are the most important records of the origin and development of Sun-worship in images in ancient and mediaeval India. Unfortunately, this work, though printed more than once, had no critical edition, and at present it is even not available in the market. Under these circumstances it is highly gratifying to see that Dr. V. C. Srivastava, who has given a good account of himself to the scholarly world by his highly interesting and informative work entitled *Sun-worship in Ancient India*, has prepared, for the use of interested scholars and others, a good Hindi translation of the *Samba-purana* and enriched it with valuable notes as well as with a copious and learned Introduction in which he has dealt, in his usual scholarly way, with the various problems relating to this work. I am sure, his Introduction and notes will be of immense help for a critical study of this upapurana.

Dr. Srivastava has also undertaken the preparation of a critical edition of this work on the basis of a good number of manuscripts, and I fervently hope that he will be able to bring out this edition at an early date and remove a long-felt want of Indologists in this field of research.

I convey my sincere congratulations to Dr. Srivastava and wish his work a wide publicity.

R. C. Hazra.

## आमुख

भारतीय संस्कृति का एक अमूल्य एवं महत्वपूर्ण स्रोत पौराणिक परम्परा<sup>१</sup> में सन्तिनिहित है। भारतीय धर्म-साधना, दर्शनिक चिन्तन, राजनीतिक इतिहास, साहित्यिक विकास तथा सांस्कृतिक जीवन के विविध पक्षों का उद्घाटन व्यापक एवं इमुद्दिशाली स्तर पर हमारे पौराणिक वाङ्मय के द्वारा होता है। यह तथ्य निविवाद रूप से स्वीकार किया जा सकता है कि पुराण की उत्पत्ति वैदिक परम्परा के साथ-साथ ही परन्तु पुराण साहित्य का वास्तविक स्वरूप तृतीय एवं चतुर्थ शताब्दी ईसबी पूर्व से ही विकसित होता है। भारतीय संस्कृति की विकास-यात्रा के समानान्तर पुराणों का जो स्वरूप विकसित हुआ है उसमें परम्परा के संरक्षण के साथ नव्य उपकरणों को भी प्रश्रय मिला है। पुराण भारतीय संस्कृति के विकसनशील कोश हैं। पुराण के विकास को अविरल धारा तीसरी चौथी शताब्दी ईसापूर्व से प्रारम्भ होकर १४ वी-१५ वी शताब्दी ई० तक अविरल गति से बढ़ती रही जिसमें विभिन्न परम्पराओं, सम्रादायों तथा व्यवस्थाओं ने अपनी-अपनी पुष्पाजलि अपित की है। परिणामतः भारत के इतिहास, राजनीति और संस्कृति की विभिन्न प्रवृत्तियों और परम्पराओं का दर्शन इस विशालकाय पुराण साहित्य में देखा जा सकता है<sup>२</sup>।

पुराणों की संख्या सामान्यतः अठारह स्वीकार की जाती है। परन्तु वास्तविक स्थिति यह है कि पुराणों की संख्या इससे कही अधिक है। १८ पुराणों की श्रेणी में आने वाले पुराणों को महा-पुराण की संज्ञा दी गई है। द्रष्टव्य है कि पौराणिक वाङ्मय में महापुराणों के अतिरिक्त उपपुराणों का भी एक वर्ग है जो परम्परानुसार १८ हैं परन्तु वास्तविक दृष्टि-

१. प्रस्तुत आमुख में प्रयुक्त सन्दर्भों के लिए इस ग्रन्थ के अन्त में उल्लिखित विशिष्ट ग्रन्थ-सूची की सहायता ले।

कोण से इससे कहीं अधिक हैं। उपपुराण साहित्य भारतीय संस्कृति के लिये उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितने की महापुराण। कुछ अर्थों में तो उपपुराणों की महत्ता महापुराणों से भी अधिकतर है। सामान्यतः यह स्वीकार किया जा सकता है कि महापुराणों में समय-समय पर सम्बर्थन अधिक हुआ है परिणामतः उनमें प्रक्रियत अंश अधिक मिलते हैं। इसके विपरीत समाज में कम लोकप्रिय होने के कारण उपपुराणों में सम्बर्थन की प्रक्रिया कम हुई है। फलतः उनमें प्रथित अंश भी कम मिलते हैं। इस प्रकार उपपुराणों का मूल रूप महापुराणों की अपेक्षा अधिकतर सुरक्षित रहा है। यह एक ऐसा ऐतिहासिक तथ्य है जो उपपुराणों की महत्ता की भारतीय संस्कृति के साधन के रूप में द्विगुणित कर देता है। इतिहास की एक विडम्बना पड़ी है कि ऐसे मूल्यवान एवं उपयोगी स्रोत की महत्ता की ओर विद्वानों ने अधिक ध्यान नहीं दिया है। इसके दो मुख्य कारण प्रतीत होते हैं। एक तो परम्परागत समाज में उपपुराणों के प्रति हीनता की भावना दिखाई पड़ती है क्योंकि इन पुराणों को महापुराणों का उपभाग बताया गया है यद्यपि इन उपपुराणों में अपने को पुराण ही कहा गया है। महापुराणों की तुलना में 'महा' और 'उप' दोनों उपाधियों के कारण तथाकथित उपपुराण साहित्य को हीनता की दृष्टि से देखा गया है। दूसरे अधिकांश उपपुराण साहित्य सामान्यतः अप्राप्य रहा है। इस श्रेणी के बहुत से ग्रन्थ अभी भी अप्रकाशित अवस्था में हैं। इस कारण भी विद्वानों में इस वर्ग के साहित्य के प्रति अधिक जागहकता देखने को नहीं मिलती है। अस्तु, अज्ञानवश भी इस मूल्यवान साहित्य के प्रति अवहेलना की भावना दृष्टिभूत होती है।

विद्वानों का मत है कि उपपुराण में 'उप' शब्द 'हीनता' अथवा 'निम्नता' के दृष्टिकोण से प्रयुक्त किया जाता था। इष्टव्य है कि 'उप' शब्द का अर्थ 'समीपता' अथवा 'निकटता' के अर्थ में भी प्रयुक्त होता रहा है जैसा कि उपनिषद में 'उप' का प्रयोग इसी अर्थ में किया गया है। पुराण के पाँच लक्षण बताये गये हैं जो सामान्यतया महापुराणों में पाये जाते हैं। परन्तु कालान्तर में इन लक्षणों की संस्था पाँच से बढ़ाकर दस कर दी गई

## आमुख

धार्मिक सम्प्रदायों के विषय में विचार-विभासा भी एक प्रमुख लक्षण हो गया। "सम्प्रदायिक विवरण पुराण की रचना के पौछे एक महत्वपूर्ण उद्देश्य बन गया। लागे चलकर यह प्रवृत्ति इतनी अधिक बलवती हो गई कि अनेक पुराणों में अन्य लक्षणों को त्याग दिया गया केवल धार्मिक सम्प्रदायों का इतिहास प्रस्तुत करना ही इनका एक मात्र उद्देश्य हो गया। उपपुराण साहित्य से यह प्रवृत्ति अधिक प्रख्यर हो उठी है। परिणामतः अधिकांश उपपुराण साम्प्रदायिक ग्रन्थों के रूप में प्रतिष्ठित हो गए। यद्यपि पुराणों के पंच-लक्षण सिद्धान्त पर आधारित न होने के कारण शास्त्रसम्मत समाज ने इन्हें उस प्रकार की प्रतिष्ठा नहीं दी जैसा कि महापुराणों को दी गई थी तथापि परम्परागत समाज इनकी अवहेलना भी नहीं कर सका क्योंकि ये उपपुराण समाज में विभिन्न साम्प्रदायों के विचार और विकास के महत्वपूर्ण साधन थे। अस्तु इन्हें उपपुराण की संज्ञा दी गई जिसका अर्थ हीता है एक विशिष्ट प्रकार के पुराण जो परम्परागत पुराणों के समीप हैं।

सौरोपासना भारतीय धर्म-साधना की एक अति प्राचीन परम्परा है जिसे नवीन पाषाण काल से लेकर हिन्दू काल की समाप्ति तक अनेक प्रजातियों, भाषाभाषियों एवं परम्पराओं ने समय-समय पर स्मृद्धिशाली बनाया है। भारत के आदिकालीन समाज में सूर्य की पूजा अनेक प्रतीकों के माध्यम से होती थी। वैदिक धर्म में सूर्य देवताओं का महत्वपूर्ण स्थान था जबकि सूर्य के नैसर्गिक रूप की उपासना ऋचाओं और यज्ञ के माध्यम से होती थी। उसके विभिन्न रूपों की उपासना सूर्य, सवित्र, विष्णु, पूषन, अश्विन, आदित्य आदि नामों के अन्तर्गत होती थी। सूर्य की प्रतीकात्मक पूजा की परम्परा वैदिक धर्म में अक्षरण रही परन्तु सौरोपासना का वलासिकल रूप वेदोत्तर काल में ही हमारे ममुख व्याया जबकि दो नवीन प्रवृत्तियों के वशीभूत होकर सूर्यपूजा का साम्प्रदायिक रूप प्रख्यर हुआ। इनमें प्रथम कारण देशीय था जबकि दूसरा प्रभाव विदेशीय। वेदोत्तर काल की विचारधारा में जो क्रान्तिकारी प्रवृत्तियों उपजीं उनमें भक्तिवाद का उदय एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है। फलतः अनेक आस्तिक साम्प्रदायों का विकास हुआ जैसे शैव, वैष्णव, सौर

## साम्बपुराण

भविष्य पुराण १०४२ से साम्ब-पुराण के श्लोक प्राप्त होने लगते हैं १०४२ वस्तुतः १०४१ का विकास है। इसके कथाकार वासुदेव हैं जिन्हे सर्व प्रथम १०४८ में प्रस्तुत किया गया है। भविष्य पुराण के १०४८, ४९ पर तांत्रिक प्रभाव देखा जा सकता है। साम्बपुराण के अध्याय ३-३३, ३५-२१, २४-३८ एवं ४६ तांत्रिक प्रभाव से मुक्त हैं अस्तु निकाला जा सकता है कि भविष्यपुराण के ये अंश (१०४१, ४२) साम्ब-पुराण के मूल भाग के बाद लिखे गये होंगे। साम्ब-पुराण के अध्याय ८ के अनेक श्लोक भविष्यपुराण में तीन भिन्न स्थानों में संग्रहीत हैं जो यह प्रकट करता है कि भविष्यपुराण साम्ब-पुराण का क्रृणी है। साम्ब-पुराण अध्याय ८ में सूर्य के विभिन्न नामों की व्युत्पत्ति दी है। भविष्यपुराण ने इस अध्याय की अन्य सामग्री तो ग्रहण की है किन्तु सूर्य के नामों के व्युत्पत्ति सम्बन्धी विवरण की स्थान नहीं दिया। साम्ब-पुराण और भविष्यपुराण के संज्ञाअस्त्वान भी भिन्न हैं। साम्ब-पुराण के अध्याय १० और ११ में अधिकांश श्लोक भविष्यपुराण १०७९ में संग्रहीत हैं परन्तु भविष्यपुराण में साम्ब-पुराण को ११२-१२ अ के श्लोक नहीं मिलते। अन्य साक्षयों के आधार पर भी कहा जा सकता है कि भविष्यपुराण ने साम्बपुराण से सामग्री ग्रहण की है। भविष्यपुराण ने वृहत्-संहिता से अनेक श्लोकों को ग्रहण किया है परन्तु साम्ब-पुराण की एक भी पक्ति को समानान्तर पंक्ति वृहत्-संहिता में नहीं मिलती जबकि साम्ब-पुराण के अध्याय ८ और २६-३१ के श्लोक भविष्यपुराण में मिलते हैं जिससे जात होता है कि साम्ब-कथा की भविष्यपुराण ने साम्ब पुराण से ग्रहण किया और वृहत्-संहिता से “सामग्री ग्रहण करके उस अध्याय का विस्तार किया। भविष्यपुराण १०६६ में साम्ब-पुराण की ओर संकेत मिलता है। भविष्यपुराण १०१ ३६ में भगों के आगमन का आस्त्वान तीक्ष्ण उपभगों के विभक्त है जिनमें तृतीय भाग प्रथम से सीधा सम्बन्धित है परन्तु द्वितीय भाग बिलकुल अलग है। द्वितीय भाग साम्ब-पुराण में नहीं पाया जाता है जबकि प्रथम और तृतीय भाग साम्ब पुराण में उपनिषद है।

## आमुख

भविष्यपुराण के समान ब्रह्मपुराण और साम्ब-पुराण में भी अनेक श्लोक समान रूप से मिलते हैं। आन्तरिक साध्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ब्रह्मपुराण के ये श्लोक साम्बपुराण से ग्रहण किये गये हैं। उदाहरण के लिये ब्रह्मपुराण २६, साम्बपुराण ३८ और भविष्य १८०-८२ और ८३ को लिया जा सकता है। स्कन्दपुराण प्रभास खण्ड में अनेक श्लोक साम्बपुराण से संग्रहीत लगते हैं। उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि साम्ब-पुराण सौर धर्म का मूल ग्रन्थ था जिससे भविष्य, ब्रह्म और स्कन्द पुराणों ने साथग्री ग्रहण की है। हाजरा के इस मत को काणे ने स्वीकार नहीं किया है परन्तु खेद का दिष्य है कि काणे ने स्वयं कोई तर्क अपने विचार के पक्ष प्रस्तुत नहीं किया है।

हाजरा महोदय ने साम्ब-पुराण का तिथि-क्रम निश्चित किया है जो सामान्यतः मान्य है। उनके अनुसार साम्बपुराण में रचना के दृष्टि-कोण से कई इकाइयाँ हैं और समय-समय पर इसमें प्रक्षेपों के कारण पाठवृद्धि होती रही है। यह न तो एक समय की ही रचना है और न यह एक व्यक्ति द्वारा ही लिखी गई है। इसके मुख्य रूप से दो भाग देखे जा सकते हैं। प्रथम समूह में अध्याय १ (श्लोक १७-२५ को छोड़कर), २-१५, १६, १८-२१, २४-३२, ३४-३८, ४६ और ८४ आते हैं। यह साम्बपुराण का मूल भाग है जिसकी रचना ५०० ई०—८०० ई० के मध्य की गई थी विशेष रूप से इस समय के प्रारम्भ इसी में समूह में अध्याय १७, २०-२३ भी आते हैं परन्तु इनका समय ६५० ई० के उपरान्त माना जा सकता है। अध्याय ३३ की रचना ७००-८५० ई० के मध्य की गई। अध्याय ४४-४५ का रचना-काल ८००-१०५० ई० के मध्य स्थापित किया जा सकता है।

द्वितीय समूह के अध्याय ३६-४३, ४७-८३ आते हैं जिसका समय १२५०-१५०० ई० के मध्य स्थापित किया गया है। द्वितीय समूह में अनेक इकाइयाँ हैं जैसे ३६-४१, ४२-४३, ४७-५२, ५३-५५ (श्लोक १-६७ तक) तथा ५५ (श्लोक ६८ से)–८३। स्टेटिस्टिक्स ने हाजरा के इस तिथि-क्रम

क्रम को स्वीकार किया है यद्यपि उनका विचार है कि साम्ब-पुराण का मूल भाग पाँचवीं शताब्दी ई० के उपरान्त नहीं रखा जा सकता है। हाजरा का यह मत भी तर्क संगत लगता है कि साम्ब-पुराण के मूल रूप में अनेक श्लोक और ये जो अब उसमें नहीं पाये जाते।

साम्ब-पुराण के प्रथम भाग की रचना पंजाब में हई होगी जबकि उत्तर कालीन भाग का सम्बन्ध उड़ीसा से है। इम मिथ्यान्त के पक्ष में निम्ननिखिल तर्क प्रस्तुत किये जा सकते हैं। साम्ब-पुराण का प्रथम भाग भविष्यपुराण में सम्भव है किन्तु द्वितीय भाग का एक भी श्लोक भविष्यपुराण में नहीं मिलता जिससे स्पष्ट हो जाता है कि ये दोनों भाग विभिन्न समयों पर निष्पत्ति गये होंगे। प्रथम समूह के अध्यायों का सम्बन्ध चन्द्रभाग के नट पर स्थित मित्रवन से है जिसकी स्थिति पंजाब में स्थापित की जाती है परन्तु द्वितीय समूह के अध्यायों में समुद्र नट पर स्थापित मित्रवन का उल्लेख है जिससे अभिप्राय कोणार्क से लगाया जा सकता है। प्रथम समूह के अध्यायों में सूर्य-पूजा के स्थान को मित्रवन कहा गया है परन्तु द्वितीय समूह के अध्यायों में इसे तपोवन, सूर्यकानन, रविक्षेत्र, और सूर्यक्षेत्र कहा गया है। ब्रह्म-पुराण में कोणार्क को रविक्षेत्र, सूर्यक्षेत्र आदि कहा गया है। साम्ब-पुराण के प्रथम समूह के अध्यायों में साम्ब द्वारा मित्रवन में सूर्य मूर्ति को स्थापित का उल्लेख है जब कि द्वितीय समूह के अध्यायों में भिन्न विवरण मिलता है और कहा गया है कि समुद्र में सूर्यमूर्ति दिखाई पड़ी जिसे जन समूह ने उठाकर स्थापित किया। यह विवरण कोणार्क के लिए ही उचित लगता है। अन्य साध्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रथम समूह और द्वितीय समूह की रचना भिन्न-भिन्न स्थानों, भिन्न-भिन्न समयों और भिन्न-भिन्न व्यक्तियों द्वारा हुई। उदाहरणातया प्रथम समूह के अध्यायों में वेदों को मान्यता प्रदान की गई है जब कि द्वितीय समूह में तत्त्विक प्रमाण सर्वोपरि है।

## आमुख

साम्ब-पुराण की निम्नलिखित पाण्डुलिपियाँ उल्लिखित हैं। इण्डिया आफिस लन्दन पुस्तकालय में साम्ब-पुराण की दो पाण्डुलिपियाँ (इंग्लिश कैटलॉग संख्या ३६१६६ तथा ३६२०) उल्लिखित हैं। ये दोनों पाण्डुलिपियाँ समान हैं। एशियाटिक सोसायटी कलकत्ता तथा संस्कृत कालेज कलकत्ता की पाण्डुलिपियों से मिलती जुलती हैं। वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई से प्रकाशित साम्ब-पुराण से भी मिलती जुलती हैं केवल अध्यायों में भेद है इसमें केवल ७० अध्याय है जबकि प्रकाशित संस्करण में ८८ अध्याय हैं। इस भेद का कारण यह है कि इस पाण्डुलिपि के एक अध्याय को बहुधा कई अध्यायों में प्रकाशित संस्करण में विभाजित कर दिया गया है उदाहरणार्थ इसके पाण्डुलिपि अध्याय १ को प्रकाशित संस्करण में १ और २ अध्यायों के रूप में विभाजित किया गया है। इसी प्रकार अध्याय ४८ को प्रकाशित संस्करण में ४६-५२ अध्यायों में किया गया है। इस पाण्डुलिपि के विषयवस्तु को ४८ अध्याय के बाद २२ उपभांगों में वर्णित गया जिसे पटल कहा गया है। इन सबको जानोत्तर शीर्षक के अन्तर्गत रखा गया है। इसका अन्तिम भाग प्रकाशित संस्करण का अध्याय ८४ है। अन्तिम इनोक त्रिकालकत्ता संस्कृत कालेज की पाण्डुलिपि के लियाँ हैं।

ऐशियाटिक सोसाइटी बंगाल के पुस्तकालय में साम्ब-पुराण को चार पाण्डुलिपियाँ सुरक्षित हैं जिनमें पं० हर प्रसाद शास्त्री ने ऐशियाटिक सोसाइटी कैटलॉग भाग ५, कलकत्ता, १९२८, में ४०६१, ४०६२, ४०६३, तथा ४०६४ के अन्तर्गत उल्लिखित किया है। ४०६१ संख्या की पाण्डुलिपि में  $11\frac{3}{4} \times 5\frac{3}{4}$  इच्छाकार के १११ फोलियों हैं। प्रत्येक फोलियों के प्रत्येक पृष्ठ पर १३ लाइनें हैं कुल मिलाकर २६८६ इनोक है। लिपि नामर है। यह इण्डिया आफिस की पाण्डुलिपि संख्या ३६१६६ से काफ़ी मिलती है यद्यपि इण्डिया आफिस की पाण्डुलिपि का दूसरा प्रारम्भिक इनोक तिमिर किरकिरातः इस पाण्डुलिपि में नहीं मिलता। प्रकाशित संस्करण के अध्याय ८१ और ८२ के कुछ अंक से यह पाण्डुलिपि समाप्त होती है। प्रवालित संस्करण के

अध्याय द२ के कुछ भाग और द३-द४ का यहाँ अभाव है। उसकी तुलिका के पूर्व निम्नलिखित श्लोक आता है।

‘चतुष्ठं साधयोश्चिर्यं ऐकैकस्य पृथक् पृथक् ।  
क्षुरकादि शलाकान्तर मार्गनितश्चैव साधकः ॥’

इस पाण्डुलिपि में साम्ब-पुराण को निरन्तर साम्ब-पुराण कहा गया है। इसी पुस्तकालय की दूसरी पाण्डुलिपि (मंख्या ४०६२) में  $12\frac{3}{4}'' \times 4\frac{1}{2}''$  के दद फोलियो हैं। प्रत्येक पृष्ठ पर पंक्तियों की संख्या १३ है। श्लोक संख्या ३२०० है। लिपि मैथिल है। तिथि शाक सम्बत १७६४ है। इण्डिया आफिस के ३६१६-२० से मिलती जुलती है। इसमें ७५ अध्याय हैं जिसका अन्तिम अध्याय प्रकाशित संस्करण का अध्याय द४ है। इस भेद के होते हुए भी यह पाण्डुलिपि और प्रकाशित संस्करण विषय बस्तु के दृष्टिकोण से एक ही हैं। इसके लेखक पं० बद्री नारायण मिश्र दौलतगंज छपरा (बिहार) निवासी हैं इसमें अध्याय ४२-७४ को ज्ञानोत्तर शीषक के अन्तर्गत रखा गया है। यह पाण्डुलिपि पूर्ण है। यह निम्नलिखित श्लोक में अन्त होती है।

\* “अष्टादश पुराणानां शब्दणो यत् फलं भवेत् ।  
तत्फलं सम्बोधनोति सत्यं सत्यं बदामित ॥”

यहाँ की ४०६३ संख्या की पाण्डुलिपि में  $12\frac{3}{4}'' \times 6''$  के कुल १०० फोलियो हैं। प्रत्येक पृष्ठ पर १३-१४ लाइनें हैं। लिपि नागर है। तिथि विक्रम सम्बत १६३० है। यह पाण्डुलिपि केवल द३ वें अध्याय तक है। इण्डिया आफिस कैटलाग संख्या ३६१६ से मिलती है। यह तिमिर किरकिरातः से प्रारम्भ होती है और अन्त होती है—“एतत्सर्वं समाह्यात् भास्करेण महात्मना पृच्छत्ते भम शाम्बोहित्वं पुष्टवेत् महीत्वे ।” इसके नामक चित्रसिं मिश्र हैं।

## आमुख

४०६४ संख्या की चतुर्थ पाण्डुलिपि है। यह साम्ब-पुराण का साँचवाँ अध्याय है जिसका नाम शाकद्विपिद्विजराजमहात्म्य है। इसमें ७'' × ४'' के कुल ७ फोलियों हैं जिसके प्रत्येक पृष्ठ पर ८-१० लाइने हैं। लिपि नगर है तिथि विक्रम सम्वत् १८७८ है। यह पूर्ण है। इसका प्रारम्भ निम्नलिखित श्लोक से होता है।

“मधाक्ष्यनोयदा सूर्यः आङ्गादौ यज कर्मणि ।  
शाकद्वीपी द्विजस्तम स्थापनीयः प्रगत्नतः ॥  
शाकद्वीपी द्विजोयत्र सूर्यो न संशयः ।  
सूर्योऽिर्म ब्राह्मणोयत्र तत्र यज्ञादिक किया ॥”

इसका अन्त निम्नलिखित पुष्टिका से होता है।

“इति श्री जाम्बुपुराणे शाकद्विपि द्विजराज  
महात्म्यं नाम सप्तमोऽयायः ।”

तन्जोर महाराजा सरफोजी की सरस्वतो महल लाइब्रेरी में साम्ब-पुराण की (पी० पी० एस० शास्त्री के कैटलाग संख्या १०५८४ की) एक पाण्डुलिपि सुरक्षित है जो वर्त्तम के कैटलाग की संख्या १६३० है। इसमें १६३ पृष्ठ हैं। १३२'' × ६३'' के कुल ७६ फोलियों हैं। प्रत्येक पृष्ठ में १३ पंक्तियाँ हैं। इसकी लिपि देवनागरी है। इसका प्रारम्भ निम्नलिखित श्लोक से होता है :—

“श्री गणेशाय नमः  
नमःस्विन्मे जगदेकचतुर्थे ।  
जगत प्रसूति मिथति नाश हेतवे ॥  
विष्णीमयाय विगुणात्मवारिणी ।  
विरक्तिव नारायणशकुरामने

तिभिरकिरं रातः प्रत्यहं सप्रभातः ।  
कमलविमलवन्धुः पृथ्य कारण्य सिन्धुः ॥  
भूदनभवन द्वीपः कृष्टयामप्रतीपः ।  
मुरमुनिकृतसेवः पातु वो भानु देवा ॥”

इसका अन्तिम श्लोक है :

“करुण विमल मूर्तिः धानु पाप प्रपञ्चः ।  
बन्जितमकल भीगो पाति लोकं च विष्णोः ॥”

कीथ ने भी इण्डिया आफिस लाइब्रेरी में सुरक्षित साम्ब-पुराण की एक पाठ्यलिपि का उल्लेख भर्तुया ६८३६ के अर्थात् किया है जो ग्रन्थलिपि है में है । यह १८ वी शताब्दी में लिखी गई है । प्रत्येक पंक्ति में ६ और ८ चरण हैं । इसे साम्ब-पुराण के सारोद्धार का एक अंश कहा जा सकता है । इसका प्रारम्भ कोलियों ७७ से होता है :

“सांबो [प] पुराणे अगस्त्यं प्रति परमेश्वरः ।  
चतुर्विधं तु सन्थासो विद्वते वृत्ति भेदतः ॥ \*\*\* ”

कोलियों ७७ व इस प्रकार है ;

“इति सांबोपुराण सारीद्वारे द्वितीयव्यायः । \*\*\* ”

इसकी समाप्ति होती है :—

“कारणात् भिन्नं प्रपञ्चस्सत्य इति द्रूमः ।  
षाचारम्भ श्रुत्वा मतघट दृष्टान्तेन निवर्तनीय ”

यह पाण्डुलिपि अशुद्ध है। इसिलिंग की पाण्डुलिपि संख्या ३६१९ से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

कलकत्ता संस्कृत कालेज पुस्तकालय में भी साम्ब-पुराण की एक पाण्डुलिपि सुरक्षित है जिसे शास्त्री एवं गुरु के कैटलाग में संख्या २१४ दी गई। इसे साम्ब-पुराण कहा गया है। १२''×६'' के देशी कामज का प्रयोग हुआ है। ३५०० श्लोक है। यह पाण्डुलिपि पूर्ण है। इसकी तिथि ज्ञात नहीं है। इसका प्रारम्भ इस प्रकार होता है :

“श्री गणेशाय नमः/श्री तरस्वत्वैनमः ओं नमः सूर्याय।  
नमः सवित्रे जगदेक चक्षुषे जगत् प्रसूति नाश हेतवे।  
त्रयीमयाय श्रिगुणात्म धारिणे विरचि नारायण शङ्करात्मने नमः।”

समाप्ति इस प्रकार होती :—

“करुणादिमलमूर्ति वृतपापप्रचण्डो।  
बलित सकल भोगो याति लोकं च विष्णोः॥”

इसकी पुष्टिका इसी प्रकार है इति शाम्ब-पुराण समाप्तति। अन्थ संख्या ३५००।

“विवरणम्—शाम्ब-पुराणेतदुपर्युराणन्तर्गतम्।”

संस्कृत कालिज बनारस में भी साम्ब-पुराण की एक पाण्डुलिपि सुरक्षित है। योवीनाथ कविराज के कैटलाग में इसका विवरण उल्लिखित है।

साम्ब-पुराण का प्रकाशन वैकटेश्वर प्रेस बम्बई से १८६६ में हुआ था। यह सम्पादन सम्भवतः एक पाण्डुलिपि के आधार पर हुआ था। पाण्डु-

लिपियों के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर सम्पादन नहीं हुआ था। इसके अतिरिक्त इस प्रकाशित संस्करण में अनेक अशुद्धियाँ हैं। स्टेटेस्कान ने जर्मन भाषा में साम्ब-पुराण का पाल्डुलिपियों के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर पाठ प्रस्तुत किया है परन्तु भाषा की कठिनाई के कारण सामान्य हिन्दी भाषाभाषी के लिए अप्राप्य है। अन्य कोई प्रकाशित संस्करण नहीं हैं।

साम्ब-पुराण को विषय वस्तु का ज्ञान विषय-सूची देखने से ही सकता है। संक्षेप में यह कहता असंगत न होता कि साम्ब-पुराण का मुख्य विषय मग परम्परा से प्रभावित सौर धर्म है। यह नवेक्तिवित है कि प्राचीन काल में सूर्य-पूजा की एक विश्वव्यापी परम्परा रही है। प्राचीन भारत में प्रागौत्तिहासिक काल में ही प्रतीकात्मक रूप में सूर्य के नैसर्गिक स्वरूप की पूजा होती थी। वैदिक धर्म साधना में गूर्योपासना की अविरल धारा विद्यमान थी। सूर्य के प्राकृतिक रूप की अन्नना सूर्य, सवित्र, मित्र, विष्णु, पूषन्, अश्विन, अदित्य आदि नामों के अन्तर्गत होता थी। वेदोत्तर काल में आर्य तथा अनार्य परम्परा के पारस्परिक आदन प्रदान के कल स्वरूप एक सौर सम्प्रदाय का उद्भव हुआ जिसका सर्वप्रथम विवरण महाभारत में मिलता है। इस समय सूर्य का मानवोकरण हुआ परन्तु सूर्य की पूजा मूर्तियों एवं मन्दिरों के माध्यम से प्रारम्भ करने का देश मग पूरीहितों को हैं जिन्होंने भारतीय सौर परम्परा को मूलतः प्रभावित किया और उसका पुनर्ज्यान भी किया। साम्ब-पुराण में इसी परम्परा के प्रभाव-वश परिवर्तित सौर धर्म का विवरण मिलता है।

**सामान्यतः** यह स्वीकार किया जाता है कि मग इटान के पूरोहित थे जो सूर्य एवं अग्नि की संयुक्त उपासना मूर्ति रूप में करते थे। यद्यपि मूलतः ये पूरोहित भीडिया के निवासी थे। उनके ईरानेयन होने तक उनके दिशवास पर कैलिङ्ग और बैबीलीनियन तत्त्वों का प्रभाव पड़ चुका था। जाकहीप जहाँ से मगों के आगमन का उल्लेख पुराणों में किया गया है, सम्भवतः पूर्वी ईरान में था। मगों की प्राचीनता का प्रश्न अत्यधिक जटिल एवं विवाद

ग्रस्त है। सामान्यतः यह विश्वास किया जाता है कि मगों का भारत में आगमन ग्रीक शकप्रथम शताब्दी ई० पू०—प्रथम द्वितीय (शताब्दी ईसवी) पहलव कुषाण काल में हुआ परन्तु ऐसा अतीत होता है कि मगों का आगमन कई धाराओं में हुआ। मुख्यतः तीन धाराओं का संकेत मिलता है। प्रथम लहर शाखामनीसी प्राक्रमणकारियों के साथ उत्तर पश्चिम भारत में पाँचवीं शताब्दी ई० पू० में आयी। मगों की दूसरी लहर शककुषाणकाल (१ शताब्दी ई० पू०-१-२ शताब्दी ई०) में आई जबकि अन्तिम लहर पारसियों के साथ ७ वीं शताब्दी ई० में आई।

भारतीय सूर्यपूजा पर मगों का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा यद्यपि यह मानना कि भारतीय सौर परम्परा मगों के प्रभाव के कारण समाप्त हो गई उचित नहीं है। मूलि एवं मन्दिर इन दोनों पर आधारित सूर्य-पूजा पर मग परम्परा का विशेष प्रभाव पड़ा। इसी प्रभाव के कारण सूर्य-मूलियों ईरानियन विशेषताओं से परिपूर्ण होकर प्रचुर मात्रा में शक-कुषाण काल में बनने लगी और समस्त उत्तर भारत में इन्हीं का प्रचार हुआ यद्यपि दक्षिण भारत में भारतीय परम्परा पर आधारित सूर्य मूलियों का ही प्रचलन रहा।

भारतीय संस्कृति सम्बन्धबादिता के लिए प्रसिद्ध रही है। भारतीय एवं मग परम्परा में सामन्जस्य स्थापित किया गया। चतुर्थ पाँचवीं शताब्दी ई० तक मगों को भारतीय समाज में नात्यता प्रदान की गई। साम्ब-पुराण की रचना द्वाका ब्रह्म से प्रबल प्रमाण है। मगों की लोकप्रियता के मुख्य कारण थे उनकी प्रचारात्मक परम्परा, राजकीय संरक्षण, सूर्य पूजा के फलों का प्रचार, और विशेष रूप से सूर्य की मूलियों एवं मन्दिरों के बाध्यम से पूजा।

सूर्यपूजक पुरोहितों को मगों एवं भौजकों-इन दो श्रेणियों में विभाजित किया गया है। साम्ब-पुराण के आन्तरिक साक्ष्य के आधार पर यह कहा

जाता है कि मग और भोजक एक थे अन्तर के बीच इतना था कि मग 'म' अद्वा<sup>१</sup> की पूजा करते थे जबकि भोजक अथवा याजक सूर्य की पूजा दूष दोष के आध्यम से करता था। यह भी सम्भव है कि भोजक भारतीय आदि परम्परा के पुरोहित रहे हों कालान्तर में आपलिजतक कृत्यों के करने के कारण इन्हें भोजक कहा जाने लगा। स्टेटेन्टकान ने हाल में यह विचार प्रकट किया है कि भोजक और याजक दो भिन्न प्रकार के पुरोहित थे क्योंकि उनके अनुसार साम्ब-पुराण अपने प्रथम समूह के अध्यायों में भोजक का उल्लेख नहीं करता। प्रकाशित स्वस्करण में केवल दो बार भोजक का उल्लेख हुआ जिस स्टेटेन्टकान अशुद्ध मानते हैं क्योंकि यह पाठ पाण्डुलिपि में नहीं मिलता। इन दोनों के भिन्न व्यक्तित्व के पक्ष में यह भी मत प्रतिपादित किया गया है कि इन दोनों की उत्पत्ति, धार्मिक दृष्टिकोण एवं सामाजिक स्थिति में बड़ा भेद है। स्टेटेन्टकान का यह सिद्धान्त आन्तिकारी है, अस्तु इसके ओर्जित्य का विश्लेषण भविष्य में बाँछनीय है क्योंकि सौर धर्म की समस्या को इस मत ने और अधिक जटिल बना दिया है।

साम्ब-पुराण के उत्तरकालीन अध्यायों में तन्त्रिक प्रभाव से अभिभृत सूर्यपूजा का उल्लेख किया गया है। तन्त्रिक प्रभाव वाह्य कियादो एवं अनुशूठानों पर पूर्ण रूप से छा गया था क्योंकि तन्त्रिक कियायों जैसे मार्ण, उच्चाटन, विद्वेषण, वशीकरण आदि का उल्लेख किया गया है। तन्त्रिक मन्त्रों-वीजों आदि का भी उल्लेख हुआ है। तान्त्रिक परम्परा के मूल सिद्धान्त एवं शक्तित्व का भी प्रतिपादन देखन को मिलता है।

साम्ब-पुराण के उत्तरकालीन अध्यायों में सौर एवं शैव परम्पराओं का सामन्जस्य स्थापित किया गया है। सूर्य एवं शिव की अन्यता का सिद्धान्त पूर्व मध्यकालीन भारतीय धर्म साधना की एक महत्वपूर्ण विशेषता है, जिसका समुचित प्रतिपादन साम्ब-पुराण के उत्तर कालीन अध्यायों में मिलता है।

साम्ब-पुराण में सूर्य-पूजा के तीन प्रसिद्ध केन्द्रों का उल्लेख किया गया है जिसमें प्रथम स्थान को मूल स्थान, मैत्रवन आदि कहा गया है जो आधुनिक मुल्तान ही माना जाता है। यद्यपि स्टेटेन्कान ने इस भूत को स्वीकार नहीं किया है। साम्ब-पुराण का प्रथम भाग मुख्यतः इसी से सम्बन्धित है। सूर्य पूजा का द्वितीय स्थान कालप्रिय कहा गया है जो उत्तर प्रदेश में कालपी बताया जाता है। इस कालप्रिय की पहचान कुछ विद्वानों के अनुसार उज्जयनी के महाकाल से को जा सकती है जबकि अन्य विद्वानों के अनुसार कालपी की पहचान कालप्रिय नाथ से की जाती है जहाँ भवभूति ने तोनो नाटकों की रचना की थी। तृतीय स्थान शुतीर, मुन्डीर, उदयाचल, सूर्य-कानन, रविक्षेत्र, सूर्यक्षेत्र अथवा मित्रवन कहा गया है जो कोणक के विभिन्न नाम है। इस पुराण के द्वितीय भाग का सम्बन्ध इसी स्थान से है।

उपर्युक्त विवरण से प्रकट होता है कि साम्ब-पुराण भारतीय सौरोपासना के लिये एक मात्र महत्त्वपूर्ण प्राप्ति ग्रन्थ है जिसके अध्ययन से भारतीय सौरवर्म साधना के अनेक अन्वकारमय पक्ष आलोकित होते हैं साथ ही साथ भारतीय समाज में भगों के आगमन और समाविष्ट होने के तत्त्व ढारा सामाजिक गतिशीलता पर भी प्रकाश पड़ता है। इस आदि एवं पवित्र ग्रन्थ का हिन्दी भाषा में अनुवाद अभी तक उपलब्ध नहीं था अस्तु विकटेश्वर संस्करण का यह हिन्दी रूपान्तर एक अभाव की पूर्ति के दृष्टि कोण से प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रणयन में मुझे अनेक विद्वानों का सहयोग प्राप्त हुआ है जिसके लिए मैं उनका आभारी है। डा० राजेन्द्र चन्द्र हाजरा ने प्रावक्षण लिखकर मुझे विशेष रूप से अनुग्रहीत किया है। गुरुवर प्रो० गोवर्धन राय शर्मा ने ग्रेन्डा एवं मुझे जो प्रोत्साहन दिया है उसके लिये मैं उनका अत्यधिक आभारी है। मेरे गुरु जनो—प्रो० जसवन्त सिंह नेगी, डा० उदय नारायण राय और डा० ब्रजताथ सिंह यादव ने इस ग्रन्थ के संयोजन में जो प्रेरणा प्रदान की है उसके लिए मैं उनकी क्रृणी है।

विभाग के सभी मित्रों डा० शिवेशचन्द्र भट्टाचार्य, डा० सन्द्या मुखर्जी डा० राधाकान्त वर्मा, श्री रामकृष्ण द्विवेदी, श्री विद्यावर मिश्र, डा० ओम प्रकाश डा० उदय प्रकाश अरोरा आदि वे जो वहयोग दिया उसके लिए मैं कृतज्ञ हूँ। मैं अपनी शोध छात्रा मृदुला शुक्ला एवं श्री चन्द्रदेव पाण्डेय को भी साधुवाद देता है क्योंकि सास्कृ-पुराण के सांस्कृतिक अध्ययन विषय के निर्देशन हेतु ही मैं वह ऊपरान्तर प्रस्तुत करने के कार्य में प्रवृत्त हुआ। मैं अपने मित्र डा० राजेन्द्र कुमार वर्मा का छूणी हूँ जिन्होंने समय-समय पर भाषा सम्बन्धी सुझाव दिया। गंगा नाथ जा० बोद्धीय मंसुकृत विद्या पीठ के श्री किशोर नाथ जा० का भी आभारी है जिन्होंने अनेक कठिन श्लोकों के अनुवाद में मुझे महायता दी। मुख युष्ट की नाज-मज्जा के लिए मैं श्री एच० एन० कर का आभारी हूँ। मैं अपनी पत्नी श्रीमती माधुरी श्रीवास्तव का भी छूणी हूँ उन्होंने इस कार्य में अनेक प्रकार मेरे महायता दी। अन्त में मैं इनडालाजिकल एडिलकोशन्स एवं अनिल प्रेम का कम्पनी प्रकाश एवं मुद्रण के लिए आभारी हूँ।

२३ नवम्बर १९७५  
इलाहाबाद।

विनोद चन्द्र श्रीवास्तव

# विषय-सूची

प्राक्कथन :

आमुख :

१.	अनुक्रमणिका कथन	१-३
२.	परम ब्रह्म माहात्म्य-सूर्य को श्रेष्ठता	४-५
३.	भास्त्र-शाप	६-११
४.	द्वादश सूत्यु प्रख्यान	१२-१४
५.	सूर्य की नपस्या का रहस्य	१५-१८
६.	भवत्युपस्थान	१९-२१
७.	सर्वव्यापित्व निरूपण	२२-२८
८.	सर्वव्यापकत्ववर्णन	२९-३०
९.	सूर्यनियमन	३१-३३
१०.	राज्ञीनिकृभोत्पत्ति	३४-३८
११.	सूर्यसन्तान विवरण	३९-४४
१२.	सूर्य-रूप सम्प्रदान	४५-४७
१३.	ब्रह्मा द्वारा सूर्य का स्तवन	४८-४९
१४.	ब्रह्माभापितस्तव	५०-५३
१५.	ब्रह्म कृत स्तोत्र	५४-५६
१६.	सूर्य के अनुचर	५७-६०
१७.	माहेश्वर-स्तोत्र	६१-६३

## साम्ब पुराण

१८.	देवताल्प्रयापन	६४-६५
१९.	व्योमस्थिति	३०-३२
२०.	चार लोकपाल की नगरियाँ	७३-७५
२१.	आदित्यरथवर्णन	१९५-१९६
२२.	सोमबृहिंश्चय	५०-५२
२३.	राहुग्रहणविचार	५३-५५
२४.	रोगापनयन	५६ ६०
२५.	स्वतराजवर्णन	८१-८२
२६.	मग्नानदन	८३-८५
२७.	मग्न्याजक सोजकविचार	८९-९०
२८.	ओक्षज्ञान	९०२-९०४
२९.	सूर्य प्रतिमालक्षण	९०५-९०८
३०.	दारुपरीक्षा	९०३-९१३
३१.	प्रतिमालक्षण	९१३-९१५
३२.	प्रतिमाकल्प	९२७-९२९
३३.	छवजारोपण	९२९ ९३०
३४.	देव-यात्रा	९२७-९३४
३५.	देव-यात्राविधि	९३२-९३७
३६.	बर्षिनधूपविधि	९३८-९४८
३७.	अरिन विधान	९४५-९४८
३८.	सूर्यपूजाफल	९५०-९५६
३९.	दीक्षा मण्डल	९५३-९६७
४०.	यज्ञस्थान की विधि	९६८-९७३
४१.	दीक्षा विधान	९७४-९७६
४२.	यात्रा नियम	९७४-९८३
४३.	सूर्य मूर्ति का उदय	९८३-९८६
४४.	सूर्य भक्त के लिए आचार	९८०-९९०

## बिषय-सूची

४५.	छत्र-पादुका दान	२०१-२०५
४६.	सप्तमीकल्प	२०६-२१२
४७.	जपविधि	२१३-२१५
४८.	मुद्रा लक्षण	२१६-२१८
४९.	सूर्यनुष्ठानात्मक योगज्ञान	२१९-२२०
५०.	पूजाविधान	२२१-२२४
५१.	पूजाविधान	२२५-२४४
५२.	सूर्य रहस्य	२४५-२४८
५३.	पूजा विधि निरूपण	२४९-२५०
५४.	अस्ट पुष्पिका	२५१-२५३
५५.	सम्बतसर वर्णन	२५२-२६२
५६.	सूर्यरहस्य	२६३-२६४
५७.	बीजोत्तर	२६५-२६६
५८.	बीजप्रसव	२६७-२६७
५९.	बीजस्वरप्रसव	२६८-२६८
६०.	सौम्यमूत्र	२६९-२७०
६१.	शरीरसाधन	२७१-२७७
६२.	कार्यसिद्धिविधान	२७९-२७९
६३.	साधक के दारण रोग का नाश	२८०-२८१
६४.	अभिचार मन्त्र	२८२-२८५
६५.	अंग प्रत्यग योग भेद ।	२८३-२८७
६६.	नराद्रत	२८८-२८९
६७.	योग का उपदेश	२९०-२९१
६८.	सर्व सामान्य साधन	२९२-२९६
६९.	तत्त्वानुसार पथ वर्णन	२९७-२९८
७०.	ज्ञानदान	३००-३००
७१.	बीजप्रसव	३०१-३०१

## साम्ब-पुराण

७२.	दिविशक्तिस्थ बीजचक्र	३०८-३५८
७३.	बीजप्रसव	३०३-३५३
७४.	बीजप्रसव	३०४-३२५
७५.	बीजप्रसव	३०४-३०५
७६.	बीजप्रसव	३०३-३०५
७७.	विसर्जनविधि	३००-३००
७८.	सन्यासमार्ग	३२२-३२२
७९.	सन्यासमार्ग	३८८-३८८
८०.	सन्यासमार्ग	३२१-३२१
८१.	सम्बत्सरशरीर पूजाविधि	३२८-३१६
८२.	मंत्रतत्त्वरहस्य	३१९-३१९
८३.	ज्ञानमार्ग	३२०-३२०
८४.	सूर्यपूजा ज्ञान	३८५-३८५

— — — — —

# साम्ब-पुराण

## अध्याय ९

श्री गणेश को नमस्कार है । अब साम्बपुराण प्रारम्भ किया जा रहा है । उस सूर्य देवता को प्रणाम है जो संसार का एक मात्र नेत्र है, संसार की उत्पत्ति, स्थिति एवं विनाश का कारण है, जो ( ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद की अथो से युक्त है, जो ( सत्त्व, रज और तम ) तीन गुणों को धारण करने वाला है, जो ब्रह्मा, विष्णु, तथा महेश स्वरूप है ॥ १ ॥ ) समस्त प्राणियों के शरीर को धारण करने वाला, सदैव विशुद्ध बुद्धि से परिपूर्ण वेद-ऋणी से युक्त संसार के एक मात्र साक्षी देवता ( सूर्य ) को प्रणाम है ॥ २ ॥ समाप्तिमह कृष्ण को नमस्कार है जो योगी है, अव्यक्त रूप वाले हैं, भूत, भविष्य और वर्तमान हैं तथा विश्व के निर्माता हैं ॥ ३ ॥ उस मुलीवर ( व्यास ) को नमस्कार है जो विनम्र हैं, तपस्वी हैं, शान्त हैं, बीनराग हैं और ज्ञानरूपी आत्मा स्वरूप हैं ॥ ४ ॥ उन विद्याता ( ब्रह्मा ) को नमस्कार है जो स्वयं जन्मा है, जो किरणों से युक्त है, प्रकाश करने वाले हैं तथा जीवों के संहार करने में प्रचण्ड हैं ॥ ५ ॥ इन्द्र, अग्नि, यमराज, राज्ञि, वह्नि, वायु, कुबेर, शंकर आदि उन समस्त देवों को नमस्कार हैं जो पाताल, आकाश और दिशाओं की व्याप्त कर विद्यमान हैं ॥ ६ ॥ नैमित्तिकरण्य में ग्राचीन काल में महर्षि शौनक<sup>१</sup> ने वारह वर्ष तक चलने वाले अपने प्रसिद्ध यज्ञ की समाप्ति के समय सूत से पूछा ॥ ७ ॥ यज्ञ चलते रहने के बीच में भी उन्होंने इस कथा को पूछा—हे सूत ! आपने अत्यन्त विस्तार वाले पुराण का वर्णन किया ॥ ८ ॥

---

१—एक महर्षि, ऋग्वेद प्रतिशाख्य तथा अन्य अनेक वैदिक रचनाओं के प्रणेता ।

## साम्ब पुराण

प्रारम्भ में षडानन् ( कात्तिरुद्य ) की कथा को और बाद में ब्रह्माण्ड की कथा को आपने कहा, वह कथा भी आपने कही, जो वायु-देवता ने कही थी तथा जो सावणि मनु ने कही थी ॥६॥ जो कथा महेश मार्कण्डेय ने कही, जो वैष्णव्यन ने कही, जो दधीचि ने कही तथा जो शंकर ने कही ॥१०॥ जो विष्णु ने कही, जो ऋषियों ने वर्णित की, जो बालखिल्लयों ने कही और जिने मैंने ऋषियों के साथ सुना ॥११॥ ( परन्तु ) हे मुनीश्वर ! आपने वह कथा नहीं कही जो हरि के पुत्र ( साम्ब ) ने वर्णित की थी, अमृत के समान मेरे कानों का सुख ( अर्थात् उस कथा को सुनने की ललक्षा ) मौन नहीं पसंद कर रही है ॥१२॥ बुद्धिमान साम्ब ने जो भास्कर का पुराण पूछा था वह बारह आकार वाला था न कि पन्द्रह मूर्तियों वाला । इस पुराण में अन्य समस्त पुराण और सारे शास्त्र प्रतिष्ठित है अतएव हे महाभार ! जैसा आपने इसे सुना है वैसा कहिये ॥१३॥ सूरु ने कहा—हे सुव्रत ! जैसा आप कह रहे हैं वह विषय अत्यन्त गम्भीर एवं भारवान है क्योंकि यह महाभारत के अल्यान से और वेदों के विस्तार से भी अधिक अर्थ देने वाला, समस्त पुराणों में सर्वशेष एवं पुराण है, इसमें विविध प्रकार की चित्र विविध कथाएं सञ्चिहित है ॥१४॥

इसमें वेदों के अर्थ, स्मृतियों के तत्त्व, वर्णीश्च मध्यमं के आधार भूत सिद्धान्त तथा भूत वर्तमान और भावी घटनाएँ एवं मन्त्रों के रहस्य सम्मिलित हैं ॥१५॥ भूषिट की उत्पत्ति एवं प्रलय, पूजा का विवान, साङ्घोषाङ्ग समाहार-विधि, पूजा करने का छंग सम्मिलित है ॥१६॥ वशी-करण, आकर्षण, शत्रु-स्तम्भन और उच्चाटन इत्यादि, मूर्तियों के सद्धरण तथा मन्दिरों के विवरण भी सम्मिलित हैं ॥१७॥ मण्डल सिद्धि के लिये किये जाने वाले यज्ञ, सांसारिक सफलता के लिये किये जाने वाली पूजा, यज्ञों की विधियाँ, महामण्डल यज्ञ तथा द्वादशात्मा सूर्य की भक्ति भी सम्मिलित है ॥१८॥ भूमि का तोषण, पुष्प, धूप आदि के ( प्रयोग के ) नियम सत्तमी एवं उपवास करने की विधि भी सम्मिलित है ॥१९॥ दान देने और उसके फल-प्राप्ति

को भी बताया गया है, समय और काल का विधान और वर्म-विधि भी सम्मिलित है ॥२२॥ इस कर्म का ठग एवं जय-प्राप्ति की विधि नियमित अथवा उद्देश्य क्षेत्र को बश में करने की विधि, व्वान्न-फलाफल विचार भी सम्मिलित है ॥२३॥ प्रायशिक्त करने के विधान, आर्य पुरुष के लक्षण, समस्त शिष्यों को दीक्षा देने की विधि, मन्त्र द्वारा निश्चय करने के नियम भी सम्मिलित है ॥२४॥ नाना प्रकार की स्तुतियाँ इस ग्रन्थ में संक्षेप में सम्मिलित हैं। भविष्य में होने वाली अन्य विविध घटनाओं को भी आश्रय दिया गया है ॥२५॥ इस प्रकार और साम्ब-पूराण में उद्देश्य द्वीतक ‘अनुक्रमणिका कथन’ नामक प्रथम अध्याय समाप्त होता है ।

## अध्याय २

सूत ने कहा—रघुवंश में उत्पन्न राजा वृहदबल ने स्वस्थ भाव से वैदेह ऋषिराज वशिष्ठ से श्रेष्ठ कल्याण की बात पूछी ॥१॥ है भगवान् । मैं उस परम्परामय सनातन का माहात्म्य सुनना चाहता हूँ जिसे मुनकर विवेकी लोग मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं ॥२॥ अहम्य, बह्यचारी, बानप्रस्थ अथवा सन्धासी जो मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा करता है वह किस देवता की पूजा करे ? ॥३॥ किससे उसे निश्चल स्वर्ग हो सकता है, किससे सर्वश्रेष्ठ कल्याण मिल सकता है वह क्या करे कि स्वर्ग प्राप्त कर पुनः उससे ब्युत न हो ? ॥४॥ हे महामुनि ! देवताओं के मध्य ऐसा कौन देवता है, पितृगणों का भी कौन ऐसा पिता है जिससे बड़ा और कोई नहीं है ? उसे मुझकी बताएँ ॥५॥ हे ब्रह्मन ! चर और अचरमय यह विश्व कहाँ से निषित हुआ और प्रलय भी किसकी ओर से आती है, आप उसे बताने की कृपा करें ॥६॥ वशिष्ठ ने कहा—हे नराधिप ! उदित होता हुआ प्रकाश करता हुआ सूर्य अपनी किरणों से संसार को अंघकारहीन बना देता है । उसकी अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ देव और कोई नहीं है ॥७॥ यह पुरुष (सूर्य) अदि और अंत से विहीन है । शाश्वत है, कभी नष्ट न होने वाला है तथा परिच्छमण करता हुआ तीक्ष्ण किरणों से यह तीनों लोकों को संतप्त करता है ॥८॥

यह (सूर्य) समस्त देवताओं की आत्मा स्वरूप है, तपः शक्तियों का परिणाम स्वरूप है, समस्त संसार का स्वामी है, कर्मों का साक्षी है और प्रकाश पूँज है ॥९॥ यह (सूर्य) जीवों का संहार करता है और पुनः उनकी मृष्टि करता है, यह सूर्य एकाकी प्रकाश करता है, तपता है, और किरणों से

सबको आकर्षित करता है ॥१०॥ यह (सूर्य) धाता है, विषाता है, जीवों का उद्गम बिन्दु है तथा जीवों पर कृपा करने वाला है। यह क्षय को नहीं प्राप्त होता तथा नित्य अक्षय मण्डल है ॥११॥ यह सूर्य पितृों का भी पिता है, देवों का भी देव है, यह उस ध्रुव स्थान का स्वामी है जिसे प्राप्त कर मनुष्य पुनः च्युत नहीं होता ॥१२॥ सूषिट-बेला में सम्पूर्ण विश्व आदित्य से उत्पन्न होता है और प्रलय-बेला में उसी प्रदीप्त तेज वाले सूर्य में विलीन हो जाता है ॥१३॥ योगीगण तथा साँख्य मतानुयायी अन्त में पुरातन शरीर को छोड़कर, भलीभांति शुद्ध होकर इसी तेजोराशि दिनकर में प्रवेश करते हैं ॥१४॥ इसको सहस्रों किरणों का आश्रय लेकर सिद्धि प्राप्त मुनिगण देवताओं के साथ उसी प्रकार रहते हैं जैसे शाखाओं का आश्रय लेकर पक्षीगण रहते हैं ॥१५॥ जनक इत्यादि ग्रहस्थ, राजपिंगण, ब्रह्मचारीगण ॥१६॥ वानप्रस्थी, भिक्षुकगण तथा पंचशिख<sup>१</sup> (सम्प्रदाय वाले) साधकगण योग का आश्रय लेकर सूर्य-मण्डल में प्रविष्ट हो गये ॥१७॥

लक्ष्मी से सम्पन्न व्यासपुत्र शुकदेव भी योग-धर्म को प्राप्त करके एवं सूर्य की किरणों का पान करके पुर्वजन्म के बन्धन से मुक्त हो गये ॥१८॥ शब्दाकार श्रुति जिनके मुख में है ऐसे ब्रह्मा, विष्णु और शिव इत्यादि देवता शब्द मात्र से सुने जाने वाले हैं परन्तु अधिकार नाशक यह श्रेष्ठ सूर्य देवता प्रत्यक्ष दृष्टि गोचर है ॥१९॥ अतएव कल्याणइच्छुक व्यक्ति द्वारा किसी अन्य में भक्ति नहीं करनी चाहिये क्योंकि अनदेखा (भविष्य) सदैव देखे गये (वर्तमान) से वाधित हो जाता है ॥२०॥ इसलिए हे राजन् ! तुम्हें भी निरन्तर भगवान रवि की अर्चना करनी चाहिये, वही माता है, वही पिता है और वही सम्पूर्ण संसार का गुरु है ॥२१॥ इस प्रकार सम्बपुराण का द्वितीय अध्याय समाप्त होता है ।

१. यह साँख्य का एक सम्प्रदाय है। दृष्टिय भद्राभारत (गीता सस्करण), १२. २११-२१२; कीथ, ए०, बी०, दी साँख्य लिस्टम् पृ० ४७-४६; लारसन, जी० जे०, क्लासिकल साँख्य, पृ० १०६, १५० ।

## अध्याय ३

बृहदबल ने कहा—हे महामुनि ! सूर्य का आदि निवास स्थान कहाँ और किस द्वीप में है ? जहाँ पर शास्त्रीय रीति से की गई पूजा को वह स्वयं ग्रहण करते हैं ॥१॥ वसिष्ठ बोले कि चन्द्रभागा नदी के रमणीक तट पर साम्ब नामक<sup>१</sup> जो नगर पृथ्वीलोक में है वहीं सूर्य का शाश्वत स्थान है, वहीं सूर्य की नित्यता है ॥२॥ साम्ब के प्रति स्नेहभाव होने के कारण साथ ही साथ संसार के कल्याण के लिए, सूर्य बारहवें रूप में (मित्र) मैत्री पूर्ण दृष्टि से वहीं विद्यमान रहता है ॥३॥ वहीं भास्कर समस्त भक्ति सम्पन्न जनों पर अनुग्रह करता है और शास्त्रीय रीति से प्रदत्त पूजा को स्वयं ग्रहण करता है ॥४॥ बृहदबल ने कहा—यह साम्ब कौन है ? किससे पैदा हुआ है ? नाम से सूर्य का प्रिय यह साम्ब किसका पुत्र है ? जिस पूण्यक्षमों के लिये यह सहस्रकिरण वाला सूर्य बरद बन गया है ॥५॥ वशिष्ठ बोले—देव-माता अदिति का बारहवाँ पुत्र विष्णु था जो कि कालांतर में इस पृथिवी पर वासुदेव अर्थात् कृष्ण के ख्य में अवतरित हुआ उसी कृष्ण का पुत्र साम्ब हुआ ॥६॥ वह साम्ब अपने पिता द्वारा वारद्वार अभिशापित होकर कुष्ठ रोग का रोगी हो गया, उसी साम्ब द्वारा यह सूर्य (स्थान) अपने नाम से प्रसिद्ध करके स्थापित किया गया ॥७॥

१. इसे मूल स्थान, मैत्रवन, कश्यपपुर, हंसपुर, भगपुर, प्रह्लादपूर आदि नामों से भी वर्णित किया गया है और साधारणतया यंजाव में स्थित मुलतान से लादात्मय स्थापित किया गया है। दृष्टव्य विनोद चन्द्र श्रीवास्तव, सन वरशिष्य इन ऐन्सियन्ट इण्डिया पृ०, २६७।

बृहद्बल ने कहा अपने औरस पुत्र को पिता कृष्ण ने किस कारण से शाप दिया ? कोई न कोई कारण तो अवश्य होना चाहिए जिससे कि उन्होंने पुत्र को शाप दिया ॥८॥

वशिष्ठ बोले—महाराज ! सावधान होकर उस शाप का कारण सुनिये ! ब्रह्मा के मानसपुत्र नारद नाम वाले जो मुनि हैं ॥९॥ ब्रह्मलोक में, विष्णु-लोक में, सूर्य-लोक में, रुद्र-लोक में ॥१०॥ पितरों, राजसों, नागों के लोक में, यम और वरुण के लोक में या इन्द्र की अमरावती पुरी में तथा कुबेर की अलकापुरी में ॥११॥ और पृथ्वी-लोक में जो जो भूपतिगण हैं और जो पाताल में उत्पन्न जीव हैं उन सब के घरों में निरन्तर उन देवर्षि नारद को अप्रतिहत गति है ॥१२॥ वही क्रोधी मुनिराज ( नारद ) ऋषियों के साथ बायुदेव कृष्ण से मिलने के लिए द्वारकापुरी में आए ॥१३॥ इसके पश्चात आते हुए उन देवर्षि नारद के सम्मान में प्रद्युम्न आदि समस्त यदुवंशी कुमारगण विनय के कारण झुककर खड़े हो गये ॥१४॥ उन कुमारों ने नारद का अभिवादन कर अर्ध्य तथा चरणोदक से यत्नपूर्वक पूजा की । परन्तु दैवयोगवश उन नारद के अवश्यम्भावी शाप से मूढ़ बनकर कुमार साम्ब ॥१५॥ निरन्तर महात्मा नारद की अवज्ञा करने लगे और रूप-यौवन से गवित खेल खेल में निरन्तर उन्हें चिढ़ाने लगे ॥१६॥

पुत्र को दर्विनीति जानकर देवर्षि नारद ने सोन्दवा-इस अविनीत राज-कुमार पर में अत्यधिक नीतिक प्रशिक्षण<sup>१</sup> भाव करूँगा ॥१७॥ इस प्रकार सोचकर नारद ने कृष्ण से कहा—ये जो आपकी ( देव की ) सोलह हजार पत्तियाँ हैं, हे केशव ! साम्ब ने निश्चय ही इन सबके मनों को अपने कमल सदृश नेत्र, रूप, और यौवन सम्पन्न सौन्दर्य से चूरा लिया है । इस बर अचर

१. विनय का अर्थ नीतिक प्रशिक्षण लिया गया है दृष्टव्य रघु० १/२४,  
भा० १०/५ ।

## साम्ब-पुराण

जगत में साम्ब रूप से अनुपम प्रसिद्ध है। इसलिए ये तारियाँ साम्ब को देखने के लिए लालायित रहती हैं ॥१६॥ वशिष्ठ बोले—नारद से यह बात सुन कर तथा भावी घटना के वशीभूत होकर सम्पूर्ण वृत्तान्त को दिना सोचि विचारे ही भगवान (कृष्ण) ने नारद से कहा ॥२०॥ वासुदेव (कृष्ण) बोले—देवयि ! आपने जो बात कही है मैं उस पर विश्वास नहीं करता। इस प्रकार कहते हुये उन कृष्ण से नारद ने पुनः कहा ॥२१॥ मैं कुछ वैसा ही प्रयत्न करूँगा जिससे कि आप इस बात को मान लेंगे ॥२२॥ वशिष्ठ ने कहा कि ऐसा कहकर नारद जैसे आये थे पुनः उसी प्रकार चले गये। इसके पश्चात कुछ दिन बाद पुनः द्वारकापुरी पहुँचे ॥२३॥ इस दिन भगवान कृष्ण भी अन्तःपुर की रमणियों के साथ जलविहार करके एकान्त में झूला झूल रहे थे ॥२४॥

अद्वालिकाओं की पंक्तियों से शोभित, समस्त ऋतुओं में खिलने वाले फूलों से सुगन्धित, चित्र-विचित्र जंगलों वाले रमणीक रैवतक<sup>१</sup> नाम वाले उद्यान में श्रीकृष्ण थे जो कि नाचते हुये मयूरों तथा सैकड़ों मयूरों की बोलियों से झंकृत हो उठा था, जो कि कोयलों की बोली से गूँज उठा था, जो कि चक्रब्रक पंक्तियों से सुशोभित था ॥२६॥ जो कि कोकिला के मधुर आलाप से युक्त था, जो कि जल-कुकुटों से श्रीभायमान था, जो कि अमरों के गीत से मधुर हो उठा था तथा शुकों और चातकों से शब्दायमान था ॥२७॥ अनेक प्रकार के कमल पुष्पों से भरी बालियों से जो अलंकृत था और जो हँसों की बोली से भली भर्ति भर उठा था और सारस पंक्तियों से अलंकृत था ॥२८॥ उसी रैवतक उद्यान में उस समय स्त्रियों से घिरे हुए कृष्ण रमण कर रहे थे। हार, नूपुर, केयूर, करधनी आदि आभूषणों से ॥२९॥ अलंकृत, रमणीय अंगों वाली जो सम्मानित स्त्रियाँ थी, कोड़ा के निमित्त जो कमलपत्रों पर बैठी हुई थी ॥३०॥ उस उद्यान

१. द्वारका के निकट एक पर्वत का नाम, विस्तार के लिये दृष्टव्य शिशु०, ४

में उन स्त्रियों के लिए (कृष्ण द्वारा) मणि कंचन पत्रों में नाना पुष्पों से सुगन्धित भीठी मदिरा दी जा रही थी ॥३१॥ जो आम की पंजरियों और दूटे हुये नीलकमलों से सुगन्धित थी । इसी बीच में यह जान कर कि स्त्रियाँ मदिरा से मतवाली हो गई हैं ॥३२॥ नारद ने साम्ब को अच्छी प्रकार समझा बुझाकर उसे शीघ्रता कराते हुये यह कहा—हे साम्ब ! हे कुमार । जायो रैवतक उद्यान का आश्रय लो ॥३३॥

तुम्हें (कृष्ण) देव बुला रहे हैं । तुम्हारा यहाँ रहना उचित नहीं है । नारद के उस वाक्य के अर्थ को बिना समझे ही तथा भावी घटना से प्रेरित होकर ॥३४॥ शीघ्रता पूर्वक पहुँचकर कुमार साम्ब ने पिता को प्रणाम किया । इसी बीच में उस उद्यान में जो रमणियाँ साधारण सास्त्रिक भाव वाली थीं ॥३५॥ वे सब अचानक कुमार साम्ब को देखकर अस्थिर हो उठी, जिन रमणियों ने कामदेव के समान नवयुवक पहले नहीं देखा था मदिरा के दोष से स्मृति के लोप हो जाने के कारण अल्प सत्त्व वाली उन रमणियों का मन शीघ्र विचलित हो गया और योनि से शीघ्र प्रस्ताव हुआ ॥३६॥ हे राजन ! जैसा कि यह श्लोक सुना जाता है वथा पुराणों में यहा जाता है—भले ही नारी साध्वी हो, व्रह्मचर्य व्रत में हो ॥३७॥ फिर भी पुरुष को देखकर वे विचलित हो जाती हैं, मदिरा के अत्यधिक सेवन से भी संसार में यह आत्म-सुन्नी जाती है ॥३८॥ अच्छे वंश में उत्पन्न और उज्जावन्ती होने पर भी भारियाँ लज्जा छोड़ देती हैं । मासि युक्त भीजन के कारण, जिकनों भी ठी मदिरा के कारण गन्धों से और मनोहर वस्त्रों से स्त्रियों में काम का उदय होता है ॥४०॥ यह जानकर बुद्धिमान (श्रेष्ठ कल्याण वाले) व्यक्ति को पतिग्रता नारियों को अल्पमात्र भी मदिरा नहीं देनी चाहिए ॥४१॥ वशिष्ठ ने कहा—इसके पश्चात हड्डबड़ये हुये नारद भी साम्ब को भेजकर उनके पीछे पीछे वहीं (रैवतक उपवन में) आये ॥४२॥

देवर्षि श्रेष्ठ गुरु तुल्य उन नारद की आया हुआ देखकर मद-विहाल समस्त नारियाँ अचानक उठ खड़ी हुई ॥४३॥ वासुदेव कृष्ण ने उठती

हुई उन नारियों की विकलता देखी। इबेत वस्त्रों को छीर कर मद गिर पड़ा ॥४४॥ उनकी यह विकलता देखकर कुद्ध होकर कृष्ण ने स्त्रियों को यह शाप दिया कि मुझे छोड़कर जिस कारण से तुम लोगों के मन अन्यन्त अपहृत कर लिए गये हैं अतएव मृत्योपरान्त पति द्वारा प्राप्त होने वाले लोकों को तुम लोग नहीं प्राप्त होओगी। मेरे स्वर्ग चले जाने पर पतिलोक से परिघ्रन्थ होकर तुम लोग असहाय बनकर लुटेरों के हाथों में पड़ोगी ॥४६॥ वशिष्ठ बोले—इसके पश्चात उसी शाप के दोष से कृष्ण के स्वर्गगामी हो जाने पर अर्जुन के देखते देखते वह स्त्रियाँ पञ्चनद प्रदेश के लुटेरों द्वारा लूट ली गयी ॥४७॥ केवल तीन पतिव्रताओं—रुद्रिमणी सत्यभामा तथा जाम्बवती के अतिरिक्त वे सभी स्त्रियाँ इसके पश्चात शाप से संदूषित होकर महान पतन को प्राप्त हुईं। इस प्रकार उन स्त्रियों को शाप देकर कृष्ण ने अपने पुत्र साम्ब को शाप दिया। कृष्ण ने कहा—चूंकि तुम्हारे अत्यन्त मनोहर रूप को देखकर समस्त स्त्रियाँ आदध ही गयीं इसलिए तुम भी कुप्ठ रोग को प्राप्त करोगे ॥५०॥ वशिष्ठ बोले—जिस क्षण अपने पिता द्वारा उन्हीं से उत्पन्न कुमार साम्ब अभिशप्त होकर अत्यन्त दुःख कुरुप कुप्ठ रोग को प्राप्त हुआ ॥५१॥

भावी अर्थ का अतिशय स्मरण करते हुये उसी साम्ब द्वारा पूनः मुनि दुर्बासा कुद्ध कर दिये गये ॥५२॥ जिसके कारण नक्ष-श्रेष्ठ साम्ब ने एक और बड़ा शाप प्राप्त किया ॥५३॥ उस शाप के कारण मूसल<sup>२</sup> उत्पन्न हुआ जिससे कि सारा यदुवंश नष्ट हो गया ॥५३॥ अपने कुविन्दीय के कारण इन दोषों को उत्पन्न हुआ देखकर बुद्धिमान, शुहजतों और बाह्यणों के प्रति सदा विनीत होना चाहिए ॥५४॥ उस साम्ब ने शाप से मुक्ती होकर भगवान् सूर्य की उपासना करके तथा पुनः अपने मनोहर रूप को प्राप्त

२. मूसल-आख्यान के लिये दृष्टव्य महाभारत, मीसल पर्व ।

३. दृष्टव्य महाभारत, मीसल पर्व । ७

करके अपने नाम के सूर्य (के मन्दिर) की स्थापना की ॥५४॥ तारद  
स्त्रियों का भाव परिवर्तन दिखाकर और कुमार साम्ब को अभिषाप से युक्त  
करके वहीं अन्तर्घटन हो गये ॥५५॥ इस प्रकार साम्ब पुराण में साम्ब-शाप-  
नामक तृतीय अध्याय समाप्त होता है।

## अध्याय ४

राजा वृहद्बल ने कहा—साम्ब द्वारा चन्द्रभागा नदी के तट पर यदि सूर्य स्थापित किये गये इसलिए यह स्थान सूर्य का मूल स्थान नहीं हुआ जैसा कि आपने कहा है ॥१॥ वशिष्ठ ने कहा—यह स्थान सूर्य का मूल स्थान है, साम्ब ने तो बाद में वहीं अपने नाम में सूर्य मन्दिर बनवाया विस्तारपूर्वक मैं इस स्थान की भौलिकता बता रहा हूँ तुम मुझसे मुनो ॥२॥ हे राजन् ! जिसका आदि नहीं है, जो लोकनाथ है, उन विश्वमाली जगत्पति देव सूर्य ने मित्रभाव में अवस्थित होकर तपश्चर्या की ॥३॥ जन्म और मृत्यु से परे नित्य रहने वाले तथा कभी नष्ट न होने वाले ऐसे उन सहस्र किरणों वाले अव्यक्त पुरुष ( ब्रह्मा ) ने समस्त प्रजापतियों और दिविध प्रकार की प्रजाओं को निर्मित करने के पश्चात ॥४॥ अपने आपको बारह रूपों में विभक्त करके देवमाता अदिति के गर्भ से जन्म लिया ॥५॥ इन्द्र, धाता, पर्जन्य, पूषा, त्वष्टा, अर्यमा, भग, विवस्थान, विष्णु, अंशु, वरुण मित्र (ये इनके नाम हैं) ॥६॥ हन्हीं बारह रूपों वाले उन परमात्मा सूर्य द्वारा अपनी मूर्तियों में हैं राजन् ! यह सारा संसार व्याप्त किया गया है ॥७॥ अदिति-पुत्र उस सूर्य-की जो प्रथम मूर्ति इन्द्र नाम से जानी जाती है तेवों के ऊपर शासन करने वाली वह देवराज के रूप में विख्यात है ॥८॥

१. द्वादशदित्यों का विवरण वैदिक एवं प्रारम्भिक पुराणों में प्राप्त होता है दृष्टव्य सिद्धेऽवरी नारायण राय, पौराणिक धर्म एवं समाज, पृ० ४८; सन वरशिष्ठ इन ऐतिहासिक इतिहास, पृ० ११६, २१३

सूर्य की जो द्वितीय मूर्ति धाता के नाम से प्रसिद्ध है वह प्रजापति के रूप में स्थित है और अनेक प्रकार के प्राणियों की सृष्टि करती है ॥६॥ सूर्य की जो तृतीय मूर्ति पर्जन्य नाम से विश्रुत है वह बादलों में अवस्थित है और वहीं किरणों से वर्षा करती है ॥७॥ सूर्य की चौथी मूर्ति जो पूषा के नाम से प्रसिद्ध है वह अन्नों में व्याप्त है और वही निरन्तर प्राणियों का पोषण करती है ॥८॥ सूर्य की पांचवीं मूर्ति जो त्वष्टा के नाम से विख्यात है वह बनस्पतियों में व्याप्त है और हर प्रकार की औषधियों में भी विद्यमान है ॥९॥ सूर्य की छठी मूर्ति जो अर्यमा के नाम से प्रसिद्ध है वह वायु संचार के लिए उपादेय है और प्राणियों की देह में ही उसका आश्रय है ॥१०॥ सूर्य की जो सातवीं मूर्ति भग नाम से सुनी जाती है वह पृथ्वी में और प्राणियों के शरीरों में व्यवस्थित है ॥११॥ उनकी जो आठवीं मूर्ति विवस्वान नाम से प्रसिद्ध है वह अग्नि में विलीन है और वही प्राणियों का अन्न पचाती है ॥१२॥ सूर्य की जो नवी मूर्ति विष्णु नाम से प्रसिद्ध है वह निरन्तर देवताओं के शत्रुओं अर्थात् दैत्यों का विनाश करने के लिए उत्पन्न होती है ॥१३॥

उनकी जो दसवीं मूर्ति अंशुमान नाम से विख्यात है वह वायु में प्रतिष्ठित है और जीवों को आहलादित करती है ॥१४॥ सूर्य की जो ग्यारहवीं मूर्ति वरुण नाम से पुकारी जाती है वह जलराशियों में प्रतिष्ठित है वही समस्त जीवों को संबरितक रती है ॥१५॥ यह वरुण जल के निधान समुद्र में प्रतिष्ठित है इसलिये समुद्र को वरुणालय नाम से पुकारते हैं ॥१६॥ सूर्य की बारहवीं मूर्ति जो मित्र नाम से पुकारी जाती है वह संसार का कल्याण करने के लिए चन्द्रभागा नदी<sup>१</sup> के तट पर विद्यमान

है ॥२०॥ वायु का भक्षण करते हुए कल्याणमय नेत्रों से (सूर्य ने) तपस्या की थी ॥२१॥ नाना प्रकार के वरों द्वारा अपने भक्तों को अनुग्रहीत करते हुए उन सूर्य ने यहाँ तपस्या की थी इस प्रकार यह उनका मूल स्थान है और साम्ब ने बाद में इसे बनवाया ॥२२॥ इस स्थान पर चूंकि मित्र निवास करते थे इसलिये उसे मित्रवन भी कहते थे । इस प्रकार उन बारह रूपों से मुक्त परमात्मा सूर्य यहाँ रहते थे ॥२३॥ इस प्रकार मनुष्य बारह सूर्यों वाले संसार का रहस्य जानकर उनका महात्म्य खुल और पढ़कर अनन्त में सूर्यलोक में आदर प्राप्त करता है ॥२४॥

इस प्रकार साम्बपुराण का 'द्वादश सूर्युपाल्यान' नामक चतुर्थ अध्याय समाप्त हुआ ।

## अध्याय ५

बुहद्बल ने कहा—गुरुदेव ! यदि सूर्य सनातन आदि देवता हैं तो उन्होंने साधारण मनुष्यों की भाँति किस बात के लिए तपश्चर्षा की ॥१॥ बगिछु ने कहा—राजन ! मैं आपको सूर्य देवता का अत्यन्त गोपनीय रूपस्थ बता रहा हूँ जिसे मित्र ने प्राचीन काल में देवर्षि नारद को स्वर्ण बताया था ॥२॥ मैंने तुम्हें सूर्य की जिन बारह मूर्तियों का वर्णन बताया है उनमें से मित्र और वरुण ये दोनों तपस्या करने में लग गये । इन दोनों में से जल का भक्षण करने वाले वरुण पछिकमी समुद्र में स्थित हुए और वायु का भक्षण करने वाले मित्र देवता इसी मित्रवन में तपस्या करने जागे ॥४॥ उसके पश्चात सुमेरु पर्वत के गन्धमादन शिखर से नीचे उत्तर कर देवर्षि नारद समस्त लोकों में संचरण कर रहे थे ॥५॥ इसी प्रसंग में देवर्षि नारद वहाँ आये जहाँ मित्रदेवता तपस्या कर रहे थे । उन्हें तपस्या करते देखकर नारद को कौतूहल हुआ ॥६॥ जो अक्षय, अव्यय है, अ्यक्त और अव्यक्त और सनातन द्वे और एकात्मक सूर्य के द्वारा यह विलोकी स्वर्ण धारण की गई है ॥७॥ जो समस्त देवताओं का पिता है—जो सर्वश्रेष्ठ देवता है, भला वह सूर्य, किस देवता वर्णवा किन पितृ के लिए यज्ञ कर रहा है ॥८॥

मन में यह बात सोचकर नारद ने सूर्यदेव से कहा । नारद बोले—वैदों में और सामोपांगं पुराणों में जिवका गुणगात होता है ॥९॥ ऐसे आप अजन्मा, शाश्वत, धाता, महाभूत और सर्वश्रेष्ठ हैं । भूत, वर्तमान और भविष्य सब कुछ आपही में प्रतिष्ठित है ॥१०॥ हे देव ! गृहस्थ इत्यादि त्राय ही

आश्रम हैं, वे गृहस्थ लोग भी रात दिन नाना रूपों में अवस्थित आपकी उपासना करते हैं ॥११॥ आपके सबके माता पिता हैं, आप शाश्वत देव हैं (तो फिर) मैं नहीं समझ पाता कि किस अन्य देवता अथवा पितृ की उपासना आप कर रहे हैं ? ॥१२॥ मित्र ने कहा—हे नारद ! यह सनातन थेठ रहस्य वाला वक्तव्य कहने योग्य नहीं है तथापि है अत्यन्त ! भक्तिसम्पन्न आपको यह रहस्य यथातथ्य बता द्वैगा ॥१३॥ क्योंकि यह रहस्य सूक्ष्म, अविज्ञेय, अव्यक्त, अचल और ध्रुव है । तथा इन्द्रियों, इन्द्रिय-विषयों और समस्त प्राणियों द्वारा वजित है ॥१४॥ यह रहस्य है जीवों का अन्तर्गतमा<sup>१</sup> जो कि कहा जाता है वह आत्मा सत्त्व, रजस, और तमस गृणों से सर्वदा पृथक पुरुष के नाम से प्रसिद्ध है ॥१५॥ वह हिरण्यगर्भ और भगवान है, वही बुद्धि के नाम से स्मरण किया जाता है उसी एकात्मा द्वारा वह त्रैलोक्य उपने समस्त देहों में निवास करता है ॥१६॥

स्वयं अशरीर होकर भी सभी देहों में निवास करता है और देहों में रहता हुआ भी कर्मों द्वारा कभी लिप्त नहीं होता है ॥१७॥ हमारी दुःहारी और भी जो अन्य प्राणधारी जीव है, उन सबका साक्षी भूत वह अन्तर्गतमा किसी द्वारा कहीं भी पकड़ में नहीं आता है ॥१८॥ सगुण निर्गुण विश्व रूप ज्ञान से जाना जा सकने वाला वह है ॥१९॥ वह अन्तर्गतमा हर तरफ से हस्थ और पैर वाला है, हर तरफ से आँख, सिर और मुँह वाला है, हर तरफ से सुनने वाला है, संसार में सब कुछ व्याप्त करके विद्यमान रहता है ॥२०॥ अकेले वही अन्तर्गतमा समस्त इन्द्रिय गुणों को और इन्द्रियों को उसी प्रकार उत्पन्न करता है जैसे कोई व्यक्ति हजारों दीपक जला देता है ॥२१॥ जब वह अन्तर्गतमा किसी व्यक्ति को ज्ञात हो जाता है तो वह मनुष्य मुक्त हो जाता है । प्रलय बेला में वह एक रूप वाला और सृष्टि-बेला में बहुसंख्यक

१. यह विचार वारा वैदिक काल से चली आ रही थी दृष्टव्य विनोद चन्द्र श्रीवास्तव, आन दी कृष्णवेद १-११५-१ क्षेत्रेश चन्द्र चट्टोपाध्याय फिल्मीसीटेशन बाल्यम, भाग २ पृ० ६५७—६६२

हो जाता है ॥२२॥ उस अकेले ईश्वर को छोड़कर स्थावर जंगम जीव के संसार में चर और अचर जीवों की नित्यता नहीं होती ॥२३॥ वह आत्मा अक्षय, न नापने योग्य, और सर्वगमी कहा जाता है ॥ हे ब्राह्मण—  
श्रेष्ठ ! उसी आत्मा से वह श्रिगुणात्मक सृष्टि उत्पन्न हुई है ॥२४॥

अव्यक्त और अपत्ति भावों में रहने वाली वह जो प्रकृति<sup>१</sup> है उसी को ब्रह्म की योनि समझो जो ब्रह्म मत्स्वरूप नथा नित्य है ॥२५॥ संसार में देवों और पितरों सर्वांश्ची धर्मकार्यों में उसी आत्मा की पूजा की जाती है । उससे अधिक सात्त्विक पिता अथवा देव अन्य कोई नहीं है ॥२६॥ वह हम लोगों की आत्मा कहा जाता है इसलिए मैं उसी आत्म-तत्त्व की पूजा करता हूँ जो प्राणी स्वर्गलोक में हैं वे भी उसी की अर्चना करते हैं ॥२७॥ उस आत्मा की कृपा से ही वे जीव बनाये हुए फल के अनुसार गतिप्राप्त करते हैं । देवता, आश्रमों में रहने वाले नपस्त्री, नाना रूपों वाले प्राणी ॥२८॥ उसी आत्मा की पूजा भवितपूर्वक करते हैं और वह आत्मा उन्हें प्रथम गति प्रदान करता है । वह समस्त जीवों में व्याप्त और निर्गुण कहा जाता है ॥२९॥ हे नारद ! उस आत्मा का यह माहात्म्य जानकर ही मैं उस सतात्त्व की पूजा करता हूँ जो लोग उसके द्वारा अनुग्रहीत है और एकमात्र उसीं पर आधारित है ॥३०॥ वे प्राणी उसी अक्षय और अव्यक्त आत्मा में विलीन हो जाते हैं उन प्राणियों के लिए वही वहुत लड़ी बात है जो कि वे उसमें प्रविष्ट हो जाते हैं ॥३१॥ हे नारद ! इस प्रकार वह गोपनीय रहस्य मैंने तुम्हें बताया । हे देवर्षि ! मेरे प्रति भक्ति होने के कारण तुमने भी उस श्रेष्ठ रहस्य को मुना ॥३२॥

१. सूर्य के इस दार्शनिक विवरण पर सौख्य दर्शन की स्पष्ट छाप है । दृष्टव्य आर० सौ० हजिरा, स्टडीज इन दी उपपुराण, भाग १, पृ० ५६-५७

जिन देवताओं और मुनियों द्वारा ही यह पुराण स्मरण किया जाता है वे सब परमात्मा सूर्य की पूजा करते हैं ॥३३॥ ऋषियों द्वारा कहा हुआ यह आख्यान जो मैंने तुमसे कहा इसे किसी भी रूप में सूर्य के भक्त के अतिरिक्त और किसी को नहीं बताना चाहिए ॥३४॥ जो मनुष्य इस तथ्य को निरन्तर मुनाता है अथवा जो मुनना है वह (मृत्यु के बाद) सहज किरणों वाले सूर्य में विलीन हो जाता है इसमें कोई संशय नहीं ॥३५॥ हे मुनिवर ! इस कथा को सुनकर आर्तजन रोग से मुक्त हो जाता है और जिज्ञासु भवित ज्ञान तथा यन्त्रचाही गति को प्राप्त करता है ॥३६॥ कल्याण मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति के लिये जो इसका पाठ करता है, वह जो भी कामना करता है उसे निश्चय ही प्राप्त करता है ॥३७॥ वशिष्ठ ने कहा—राजन् ! इस प्रकार महात्मा नारद द्वारा यह रहस्य मुझे बताया गया और मैंने भी सूर्य के प्रति भक्ति होने के कारण तुम्हे बताया ॥३८॥ इसलिए हे राजन् ! तुम्हें निरन्तर भगवान् सूर्य की अर्चना करनी चाहिए क्योंकि वही धाता है, विधाता है, और सारे संसार का गुरु है ॥३९॥ यह साम्ब-पुराण का पंचम<sup>१</sup> अध्याय समाप्त हुआ ॥

---

१. तुलना कीजिए भविष्य, १.६७

## अध्याय ६

बृहद्बल ने कहा—हे गुरुवर ! साम्ब की सूर्य की प्राप्ति कैसे हुई अथवा किसके द्वारा उन्हें सूर्य की प्राप्ति कराई गयी ? कठोर आप पाकर पिता कृष्ण ने क्या कहा ? ॥१॥ वशिष्ठ बोले—इसके पश्चात् शापाभिभृत होकर साम्ब ने पिता कृष्ण से कहा—हे देव ! मैंने कौन दुर्कर्म किया जिसके बारण आपने मुझे शाप दिया ॥२॥ हे देव ! मैं तो आप की आज्ञा से शीघ्रता पूर्वक इस उपवन में आया, तब फिर अपकार न करने वाले मेरे ऊपर आपने शाप भार क्यों डाला ॥३॥ हे जगत्पति ! आप प्रसन्न हो, मैं आपका कुछ भी अपकार नहीं करता । हे देवेश ! अपना शाप लौटा ले, मेरे ऊपर कृपा करें ॥४॥ इसके बाद कृष्ण ने साम्ब को निष्पाप समझकर उनसे कहा ॥५॥ कृष्ण थ्रेष्ठ नारद को प्रसन्न करके तुम्हों पूछो वह देवर्षि तुम्हें वह उपाय बतायेंगे जिससे तुम्हारा शाप दूर हो जायेगा ॥६॥ इसके बाद पिता के बचन को सुनकर जाम्बवती पुत्र साम्ब ने दीन और शाप से घिरे हुए अंगों वाला होकर और वारम्बार मन में विचार करके ॥७॥ द्वाराकापुरी में विद्यमान कृष्ण को देखने के लिए कभी आये हुये देवर्षि नारद के पास पहुँचकर विनीत भाव से पूछा ॥८॥

\*

साम्ब ने कहा—हे ब्रह्मा के पुत्र ! हे निष्पाप ! सर्वज्ञ और सर्वलोक गमी ! आप मुझ विनीत के ऊपर कृपा कीजिए ॥९॥ मैं आपसे सुनना चाहता हूँ, निष्वय ही आप मुझे बताएं समस्त देवताओं के बीच कौन स्तवन करने योग्य है और कौन श्रेष्ठ अव्यय पुरुष है ॥१०॥ दरिद्रों के कष्ट को हरने वाला कौन है, मैं किसकी शरण में जाऊँ । हे महामुनि ! पिता के शाप से

बढ़े हुए कलंक से ॥११॥ अभिभूत मेरे मोक्ष का क्या साधन होगा? विश्विष्ठ ने कहा इस प्रकार पूछते हुए साम्ब से नारद ने कहा ॥१२॥ कभी पर्यटन करता हुआ मैं सूर्यलोक पहुँच गया। वहाँ मैंने समस्त देवगणों से घिरे हुए सूर्य की देखा ॥१३॥ वह गन्धवों, अप्सराओं, नागों, दक्षों और राक्षसों में घिरे थे। वहाँ गन्धर्व गा रहे थे और अप्सराएँ नृत्य कर रही थी ॥१४॥ शस्त्रों और अस्त्रों को उठाए हुए यश, राक्षस, और नाग रक्षा कर रहे थे और वहाँ ऋग्वेद, यजुन्वेद तथा सामवेद मशीर विद्यमान थे ॥१५॥ कृष्णिगण उन वदों द्वारा कही गयी विविध स्तुतियों से सूर्य की प्रशस्ति कर रहे थे। वहाँ पवित्र मुख दाली (निष्पाप) तीनों संघार्ण सशीर विद्यमान थीं ॥१६॥

वहाँ आदित्य, आठों वसु, व्यारह रुद्र, मरुत् तथा दोनों अश्विनी कुमार वज्र और लौहब्राण लिए हुए सूर्य के चारों ओर विद्यमान थे ॥१७॥ अन्यान्य देवगण वहाँ तीनों संघार्णों में सूर्य की पूजा कर रहे थे और इन्द्र की जय-जयकार करते हुए वहाँ पर खड़े थे ॥१८॥ ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र पवित्र आर्शीवाद दे रहे थे और सूर्य का रथ अरुण नाम वाला सारिथि हाँक रहा था ॥१९॥ घोड़े का रूप धारण करने वाले हरे रंग के सात छदों से वह रथ युक्त था और उन सूर्यों के पास उनकी दो पत्नियाँ थीं जो रानी जैसी थीं ॥२०॥ और भी अन्य नामवाले देवगण परिचर्या करने में लगे थे। पिंगल वहाँ देवक के रूप में था और अन्य देवता दण्डनायक था ॥२१॥ उन सूर्य देवता के द्वार पर दो कलमाष पक्षी थे और इसके बाद आकाश के चार शृंग सुमेह के समान<sup>१</sup> लक्षण वाले विद्यमान थे ॥२२॥ उन सूर्य देवता के समक्ष नरन वेप वाले दिष्टिङ<sup>१</sup> थे और दिशाओं में अन्य देवगण

१. अविष्य, १.७६.१३-१४, स्कन्द, ७.१.११, विष्णुधर्मोत्तर ३.६७.२-१ आदि में सूर्य के परिवार के सदस्यों एवं सेवकों का उल्लेख आया है। दिष्टिङ को दिष्टिन भी कहा गया है।

थे इस प्रकार समस्त प्राणियों से व्याप्त, नित्य प्रदीप्त, जगत्, कल्याणकारी ब्रह्मा आदि देवताओं द्वारा गृणना ल किये गये सूर्य देवता की शरण में, हे साम्ब ! तुम आओ ॥२३॥ इस प्रकार साम्बपुराण का भक्त्युपस्थान नामक छठाँ<sup>१</sup> अध्याय समाप्त हुआ ।

## अध्याय ७

साम्ब ने कहा—हे देवर्षि ! मैं मूलतः यह सुनना चाहता हूँ कि सूर्य किस प्रकार सर्वगत है ? उनकी किरणें कितनी प्रकार की हैं और उनके कितने रूप हैं ? यह राज्ञी और निकुञ्जा कौन है ? और दण्डनायक कौन है ? किसे पिगल कहा गया है और वह सहेव क्या लिखने में (लीन) रहता है ॥२॥ उस राजा सूर्य के द्वार पर कौन दो द्वारपाल राज्ञ और स्तोष हैं और कौन कलमाप और पक्षी हैं और सुमेरु के समान लक्षण वाला वह आकाश कौन देवता है ? ॥३॥ नगन वेष वाला वह दिग्भिरु कौन है और दिशाओं में खड़े वे देवता कौन हैं ? हे देवर्षि ! विस्तारपूर्वक मूलतः मुझे वह तथ्य<sup>१</sup> बताए ॥४॥ नारद बोले—विस्तार पूर्वक क्रमशः वर्णित किये गये सूर्य को तुम सुनो, इसके बाद सूर्य को नमस्कार करके औरों को भी बताऊँगा ॥५॥ तत्त्व की चिन्ता करने वाले ज्ञानी लोग उस तत्त्व को अव्यक्त कारण, नित्य, सत् और असत् रूप वाला प्रधान तथा प्रकृति इस रूप से जानते हैं ॥६॥ परम ब्रह्म गन्ध, रूप, रस, शब्द और स्फर्ष से हीन है वह समातन संसार के मूल कारण के रूप में प्रकट हुआ है ॥७॥ प्राचीन काल में वही अव्यक्त समस्त वस्तुओं को रूप देने वाला बना । वह अनादि, अनन्त, अजन्मा, सूक्ष्म त्रिगुणात्माक तथा उससे जगत उत्पन्न तथा उसी में लीन होते हैं ॥८॥

उसे प्राचीन श्वेष सम्पत्ति और बड़ी कठिनाई से ज्ञात होने वाला परम पद बताया गया है, उस आत्मतत्त्व द्वारा सम्पूर्ण संसार व्याप्त है ॥

१. तुलना कीजिए भविष्य, १. ७६-७८.

उस ईश्वर की प्रतिभा, ज्ञान एवं वैराग्य लक्षण दाली है और धर्म तथा ऐश्चर्य से युक्त इसकी कुद्धि ब्रह्मी नाम से प्रसिद्ध है ॥१०॥ उस आत्मा के अव्यक्त से वह उत्पन्न होता है जो वह मन से सोचता है । चतुर्मुख के ब्रह्मा पद प्राप्त करने में और यमराज के काल रूप बनने में वह सहायक होता है ॥११॥ उस पुरुष के हजार मस्तक हैं और उस स्वयंभुव आत्मा की तीन अवस्थाएँ हैं—ब्रह्मा रूप धारण करने पर सत्त्व और रजस तथा कालरूप धारण करने पर रजस और तमस गुण होते हैं ॥१२॥ विष्णु रूप धारण करने पर उस स्वयंभुव आत्मा का सात्त्विक गुण होता है । ब्रह्मा रूप से वह लोकों की सृष्टि करता है और काल रूप से संहार करता है ॥१३॥ पुरुष रूप धारण करने पर वह पालन करता है । इस प्रकार उस स्वयंभुव आत्मा की तीन अवस्थाएँ हैं । अपने को तीन रूपों में विभक्त, करके वह भूत भविष्य एवं वर्तमान को प्रवत्तित करता है ॥१४॥ अपने आप इन्हीं तीन रूपों से वह सूजन करता है, ग्रस्ता है और पालन करता है । उस स्वयंभुव आत्मा से सर्वप्रथम हिरण्यगर्भ उत्पन्न होता है ॥१५॥ प्रथम देवता होने के कारण और अजन्मा होने के कारण वह आदित्य अज कहा जाता है । देवों के मध्य महान् देवता होने के कारण वह महादेव के रूप में स्मृत होता है ॥१६॥

संसार का मूल होने के कारण और किसी के वर्ण में न होने के कारण वह ईश्वर कहा जाता है, विशाल द्वोने के कारण ब्रह्मा और भूत होने के कारण भव कहा जाता है ॥१७॥ चूंकि समस्त प्रजाएँ इसी सूर्य से उत्पन्न होती हैं इसलिए यह प्रजापति कहा गया है और चूंकि यह पुरी अर्थात् शरीर रूपी नगरी में सोता है इसलिए पुरुष कहा जाता है ॥१८॥ किसी से उत्पन्न न होने के कारण और सर्वप्रथम होने के कारण वह स्वयंभुव के रूप में स्मृत होता है और चूंकि यह स्वर्ण के गर्भ में रहता है और उसी से घिरा रहता है इसलिए यह सूर्य देवता हिरण्यगर्भ कहा जाता है । तत्त्वदर्शी कृष्णियो

ने जलसमूह को ही “नार” की संज्ञा दी है ॥२०॥ उसी जलसमूह का आश्रय हीने के कारण वह नारायण कहा जाता है । कवियों द्वारा सिद्ध होने के अर्थ में ‘अर’ शब्द एक अव्यय के रूप में प्रयुक्त किया जाता है ॥२१॥ प्राचीन काल में चराचर जगत के नष्ट हो जाने पर एक मात्र नारायण नाम वाले उस पुरुष ने जल में शयन किया ॥२२॥ सहस्र मस्तकों वाला, विशाल आकार वाला सहस्र चरणों वाला, सहस्र नेत्रों और मुखों वाला, सहस्र भौजन करने वाला, सहस्र भूजाओं वाला वही प्रथम प्रजापति बाद में सूर्य नाम से पुकारा जाने लगा ॥२३॥ वह सूर्य आदित्य वर्ण संसार का रक्षक, अपूर्व, अकेला पुरुष, प्राचीन हिरण्यगर्भ और महात्मा है । मृत्यु के पश्चात् उसी का अन्वेषण होता है ॥२४॥

वह सूर्य एक हजार युगों के बगबर निशाकाल में शयन करता है और प्रलय काल के पश्चात् जीवों की सृष्टि के लक्ष्य से ब्रह्मा का रूप धारण करता है ॥२५॥ सृष्टि कार्य को सोचकर पृथ्वी को जल से ढूबी हुई देखकर उस प्रभु ने वराह का रूप धारण करके जल के भौतर प्रवेश किया ॥२६॥ इस प्रकार सोचकर पृथ्वी का उद्धार करने में समर्थ उस देवता ने महा समुद्र में ढूबी हुई पृथ्वी को ऊपर निकालने का प्रयास किया ॥२७॥ उस समुद्र के जल के बीच में से उठते हुए महावराह द्वारा पृथ्वी को लेकर ऊपर निकलते समय उसके रीमों के बीच विश्वमान मुनियों ने उसके वेदमय शरीर की स्तुति की ॥२८॥ जल से पृथ्वी को ऊपर निकालकर उस देवता ने प्रजाओं की सृष्टि का संकल्प किया और अपने ही तेज के समान तेज वाले मानस पुत्रों को उत्पन्न किया थे पुत्र थे ॥२९॥ भृगु, अंगिरा, अश्वि, पुलस्त्य, पुलह, कतु, मारीचि, दक्ष और नवें बस्तिष्ठ ॥३०॥ नौ प्रजापतियों को उत्पन्न करने के पश्चात् वह पुरुषोत्तम जीवों के कल्याण की कामना से देवमाता अदिति के पुत्र रूप में उत्पन्न हुए ॥३१॥ मारीचि ने कश्यप नाम वाले पुत्र को जल में नाव पर उत्पन्न किया जो कि प्रजापतियों में दग्धम था और ब्रह्मा के समान तेजस्वी था ॥३२॥

दक्ष प्रज्ञापति की कन्या अदिति उस कश्यप की पत्नी हुई और उसने पृथ्वी और आकाश के समान विस्तार शुक्त एक अष्टे को जन्म दिया ॥३३॥ उसी अष्टे से सहस्रों किरणों वाले आत्मा वाले दिवाकर उत्पन्न हुए जिनका विस्तार नौ हजार योजन बताया गया है और उनके मण्डल का विस्तार इसका तिगुना अर्थात् सत्ताइस हजार योजन कहा गया है ॥३४॥ जैसे कदम्ब का फूल चारों ओर केसरों से घिरा रहता है उसी प्रकार यह प्रकाश गोलक चारों ओर किरणों से घिरा रहता है ॥ हजार मस्तकों वाला पुरुष जिसे मैं पहले बता चुका हूँ वह इसी प्रकाश गोलक के बीच में व्यवस्थित है ॥३६॥ वही यह सूर्य आकाश में अपनी किरणों से जल का शीघ्रण करता है, अग्नि से विरे हुए धड़े के समान सहस्र किरणों वाला यह सूर्य है ॥३७॥ अपनी हजार किरणों से वह सूर्य चारों ओर नदो, समुद्र, सरोवर और कुर्दे से जल प्रहण करता है ॥३८॥ सूर्य के अस्त हो जाने पर सूर्य की वह प्रभा अग्नि में प्रवैश कर जाती है इसीलिए रात दूर से ही प्रकाशित होती है ॥३९॥ पुनः सूर्य के उदय होने पर वह प्रभा अग्नि सदृश उषणता के रूप में बदल जाती है और दिन में अग्नि के तेज के ही समान वह तपती है ॥४०॥

इस प्रकार सूर्य और अग्नि के जो दो तेज प्रकाश और उषणत्व हैं वे एक दूसरे में प्रवैश करने के कारण रात और दिन कहे जाते हैं ॥४१॥ नारद बोले—अब आप मुझसे सूर्य किरणों के नाम और उनकी व्यापकता बताइये (वशिष्ठ बोले) उन्हें हेति, किरण, गङ्गा, राधिम, गभस्ति ॥४२॥ अमौणु, वन, उत्तर, घृणि, मारिचि, नाड़ी, दीधिति, साध्या, मयूख, भानु वर्ष्णु ॥४३॥ सप्तर्षि, सुपर्ण, कर, पाद इस प्रकार सूर्य की किरणों के नामों के बीच पर्याय बताए गये हैं ॥४४॥ बन्दना करने वैय जिनके अलग अलग

वन्दना आदि नाम हैं ॥ वे सूर्य की सहस्र किरणें शीत, वर्षा और ग्रीष्म क्रहुओं के माध्यम से विद्यमान हैं ॥४५॥ अचिन्त्य स्वरूप वाली चार सौ नाडियाँ जलवृष्टि करती हैं, इन्होंने मेघाएँ, कान्तनाएँ और केतनाएँ हैं ॥४६॥ नाम से जो अमृता कही जाती है वे समस्त सूर्य किरणें जल वर्षा करने वाली हैं ॥ इनसे पृथक तीस किरणें शीत उत्पन्न करने वाली बताई गयी हैं ॥४७॥ जिनका नाम चन्द्रा है ऐसी पीले रंग वाली समस्त किरणें प्रेष्ठ को पुष्ट करने वाली, आनन्द देने वाली और हिम सृष्टि करने वाली हैं ॥४८॥

वे समस्त किरणें मनुष्यों, देवताओं और पितरों को भली भौति धारण करती हैं ॥ मनुष्यों को औपधियों से, पितरों को स्वधा से, ॥४९॥ समस्त देवताओं को अमृत से वे किरणें संतुष्ट करती हैं वह सूर्य वसन्त और ग्रीष्म में तीन सौ किरणों से तपता है ॥५०॥ और शरद और वर्षा में चार सौ किरणों से जलवृष्टि करता है ॥ हेमन्त और शिखिर क्रहु में तीन सौ किरणों से तुषार की सृष्टि करता है ॥५१॥ औपधियों में शक्ति भरता है, स्वधाओं में स्वधा भरता है । इस प्रकार सूर्य सबका भरण-पोषण करता है ॥५२॥ यह द्वादशात्मा प्रजापति सुरथ्रेष्ठ सूर्य चराचर युक्त तीनों लोकों की प्रकाश देता है ॥५३॥ यह ब्रह्मा है, विष्णु है और शंकर है, यह ऋक् है, यजुष् और यही विसंदेह साम है ॥५४॥ उदित होता हुआ यह सूर्य ऋचाओं से, मध्यान्ह में यजुओं से, और संघ्याकाल में सामों से क्रमशः सदीप्त किया जाता है ॥५५॥ वही यह तेजोराशि दीप्तिमान सार्वलोकिक सूर्य अपने करवटों से ऊपर नीचे चारों ओर प्रकाश करता है ॥५६॥

जैसे प्रकाश करने वाला दीपक घर के बीच रखे जाने पर अपनी करवटों से ऊपर नीचे चराचर अंधकार का नाश करता है ॥५७॥ ठीक उसी प्रकार सहस्र-किरण ग्रहराज जगत्पति यह सूर्य अपनी तीन सौ किरणों से भूलौक

को प्रकाशित करता है ॥५८॥ इसकी चार सौ किरणें पितृलोक को तिरछे होकर और तीन सौ ही किरणें ऊपर देवलोक को प्रकाशित करती हैं। इस प्रकार यही शुक्ल वर्ण वाला मण्डल सूर्य-लोक कहा जाता है ॥५९॥ यही सूर्य नक्षत्रों, द्रहों और चन्द्रमा आदि को प्रतिष्ठा का कारण है। चन्द्रादि समस्त ग्रह सूर्य से ही उत्पन्न हुए हैं ॥६०॥ सूर्य की जिन हजार किरणों का मैने पहले उल्लेख किया है उनमें से ग्रहों को उत्पन्न करने वाली सात किरणें पवित्र और अष्टठ हैं ॥६१॥ (उनके नाम हैं) सुषुम्न, हरिकेश, विश्वकर्मा, विश्वव्यच्, सौभ्यसुरत ॥६२॥ उद-वसु तथा सुरादत्य ॥६३॥ जो सुषुम्न नाम वाली सूर्य की किरण है वह निस्तेज चन्द्रमा को बड़ाती है। हई एक किरण से उसमें अमृत भरकर ॥६४॥

देवताओं को आप्यायित कर देने के कारण उसे आदित्य कहते हैं और शुक्लत्व अमृतसय शैत्य प्रकाश और आहूलादन में ॥६५॥ तथा ब्रह्मा की दीप्ति में इस प्रकार अनेक अर्थ होने के कारण उसे चंद्र कहते हैं। सूर्य की जो रफिम संयद्वसु कही जाती है वह अंगार को उत्पन्न करने वाली है ॥६६॥ विश्वकर्मा नाम वाली सूर्य की किरण दक्षिण में बृथ को आप्यायित करती है। सूर्य की जो किरण उदावसु नाम की है वह वृहस्पति की योनि है ॥६७॥ जो किरण विश्वव्यचा कही जाती है वही शुक की योनि बताई गई है और 'स्वराद्' नाम वाली सूर्य की किरण शनिश्चर को आप्यायित करती है ॥६८॥ जो हरिवेश नाम की किरण है वही नक्षत्रों को तेज श्रदान करती है ॥६९॥ चूंकि वह कभी क्षीण नहीं होती यही उनकी नक्षत्रता है ॥७०॥ क्षत्र, वीर्य, बल और तेज – ये शब्द शुकार्थवाचक हैं चूंकि सूर्य उनके क्षेत्र को ग्रहण करता है, अतः उनकी नक्षत्रता बताई गयी है ॥७०॥ अपने गुणों के कारण इस लोक तक पहुंचने वाले व्यक्तियों का तारण करने के कारण उन्हें तारक कहा जाता है अथवा अपनी शुक्लता के कारण ही ये तारक हैं ॥७१॥ सूर्य की एक द्विसारी किरण नाम से वष्टि-पति कही गयी

लै समता गुण से युक्त होने के कारण वही संसार को जीवन प्रदान करती है ॥७२॥

इस प्रकार साम्ब-पुराण में सर्वव्यापित्व निरूपण नामक सतिवाँ अव्याय समाप्त हुआ ॥



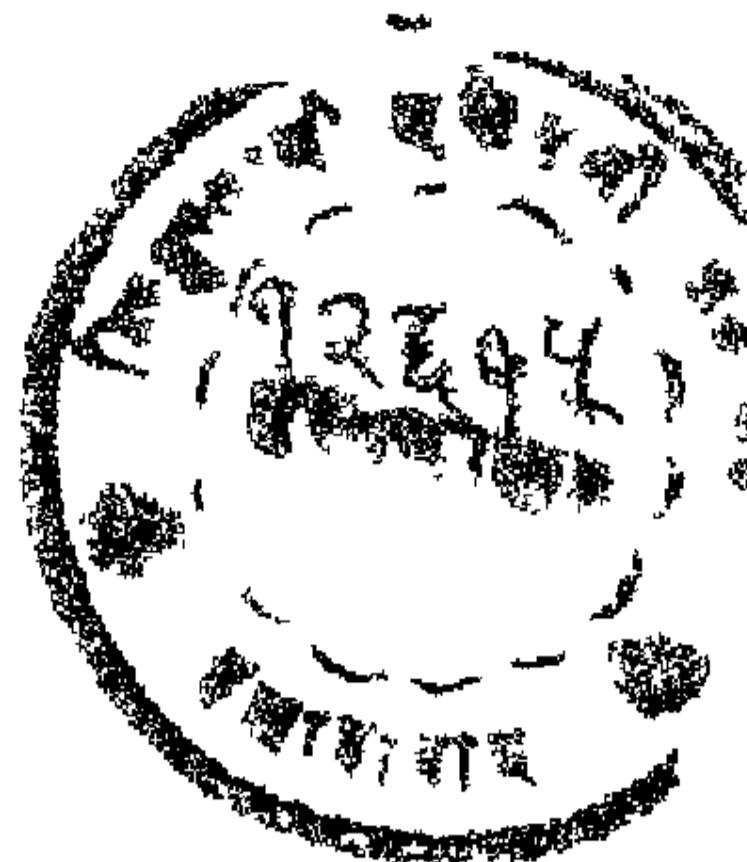
## अध्याय ६

नारद ने कहा - सूर्य के साधारण रूप से बारह नाम<sup>१</sup> हैं अब मैं अलग अलग आदि से अन्त तक उन बारह नामों को बताऊँगा ॥६॥ आदित्य, सवित्रा, सूर्य, मिहिर, अक्ष, प्रभाकर, मत्तेष्ठ, भास्कर, भासु, चित्रभासु, दिवाकर ॥७॥ और बारहवाँ नाम रथि इस प्रकार समझना चाहिए । इसी प्रकार विष्णु, वाता, भग, पूषा, मित्र, इन्द्र, वरुण, यम, विवस्वान, अंशुमान त्वष्टा और बारहवें पर्जन्य इस प्रकार अलग अलग यह बारह आदित्य बताये गये हैं ॥८॥ यह बारहों बारह महीनों के क्रम से उठते हैं । चैत्र में विष्णु तपता है और बैशाख में अर्यमा ॥९॥ ज्येष्ठ मास में विवस्वान, आषाढ़ में अंशुमान, थावण में पर्जन्य, भाद्रों में वरुण ॥१०॥ क्लार में इन्द्र, कातिक में वाता, अगहन में मित्र, पौष में पूषा ॥११॥ माघ में भग और फागुन में त्वष्टा प्रकाश करता है । इन्हीं बारह प्रकार की रश्मियों द्वारा विष्णु सदैच तपता है ॥१२॥

अर्यमा तेरह सौ किरणों से प्रकाशित होता है और विवस्वान चौदह सौ किरणों से और अंशुमान पन्द्रह सौ किरणों से प्रकाश करता है ॥१३॥ पर्जन्य भी विवस्वान की भाँति और वरुण अर्यमी की भाँति उतनी ही किरणों से प्रकाश करता है । इसी प्रकार इन्द्र बारह सौ किरणों से और पूषा एक

१. बारह आदित्यों की परम्परा के लिये देखिये शतपथब्राह्मण, ६-१-२८, विष्णु पु०, १.१५-१२६-१३१, वायु पु०, ६६-६६-६७, ब्रह्मा०७ पु०, ३.२-६७-६८, मत्स्य पु० ६.३-५.

सूर्य के संसार को संतुष्ट न करने पर स्वर्ग अथवा पृथ्वी लोक पर ग्राणियों और व्यक्तियों का अभाव हो जाता है ॥१०॥ विना वृष्टि के सूर्य तपता नहीं है और न ही विना वृष्टि के परिस्तुष्ट होता है विना वृष्टि के परिषेष नहीं होता है ॥११॥ वसन्त कृतु में सूर्य कपिल वर्ण का होता है, श्रीम ऋतु में स्वर्णिम वर्ण का होता है, वर्षा कृतु में श्वेत और शरद कृतु में पाण्डु वर्ण का होता है ॥१२॥ हेमन्त कृतु में ताम्र वर्ण, शिशir में लोहितवर्ण इस प्रकार विभिन्न कृतुओं में होने वाले सूर्य के रंग बताए गए । कृतुओं के सूर्यभाव के उत्पन्न होने वाले वर्णों के द्वारा सूर्य अनायास कल्याण उत्पन्न करने वाला होता है ॥ इस प्रकार श्री साम्ब-पुराण में सर्वविषयकत्ववाच् नामक आठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।



## अध्याय ८

नारद बोले—हे यदुतन्दन ! सारा त्रैलोक्य सूर्य से ही उत्पन्न हुआ है ॥  
देवों, अमुरों और मनुष्यों सहित कम्पूण् संसार उन्हीं से उत्पन्न हुआ है ॥१॥  
रुद्र, विष्णु, इन्द्र, श्रेष्ठ द्राह्यगा और स्वर्गवासी देवगण इस प्रकार महान्  
प्रकाश से शुक्त समस्त प्राणियों का सार्वलौकिक तेज वही सूर्य है ॥२॥ वह  
सबकी आत्मा है,<sup>१</sup> समस्त लोकों का स्वामी है, देवों का भी देव है और  
प्रजापति है ॥३॥ सूर्य ही त्रैलोक्य का मूलभूत श्रेष्ठ देवता है आग में भली-  
भांति छोड़ी गई आहुति सूर्य को प्राप्त होती है, सूर्य से वृष्टि वृष्टि से अन्न  
और अन्न से प्रजायें ॥४॥ सूर्य से सब कुछ उत्पन्न होता है और सूर्य में ही  
विलीन हो जाता है। प्राचीन काल में लोगों का भाव अभाव दोनों ही सूर्य  
से निकले थे ॥५॥ ध्यानी योगियों का जो ध्यान है वह सूर्य हैं, मोक्ष चाहने  
वालों का जो मोक्ष है वह यही सूर्य हैं इसी में लोग निर्बाण प्राप्त करते हैं  
और इसी से प्रजाएँ पुनः उत्पन्न होती हैं ॥६॥ क्षण, मुहर्ता, दिन रात,  
पश्चिम, महीना, वर्ष, क्रतुये और युग ॥७॥ उस सूर्य को छोड़कर इन-  
सबकी काल संख्या नहीं होती और काल के बिना न तो कोई नियंत्रण  
होता है और न ही अग्नि का यज्ञ-कर्म ॥८॥

क्रतुओं का विभाजन न होने से फलमूल और फल भला कहाँ से उत्पन्न  
हो सकते हैं ॥ कहाँ से हरी भरी फसलें पैदा हो सकती हैं और कहाँ से दूराँ  
और वीपविदों का समूह हो सकता है ॥९॥ जल का शोषण करने वाले

करने का अर्थ देती हुई सूर्य को प्रभाकर बनाती है ॥२३॥ विद्वान् लोग अव्यय के रूप में दिवा शब्द का प्रयोग करते हैं और चूंकि सूर्य दिवा अर्थात् दिन करता है इसलिए इसे दिवाकर कहते हैं ॥२४॥

चूंकि गर्यटन करता हुआ यह सूर्य तीनों लोकों को रक्षित करता है, अब धातु रक्षण के अर्थ में प्रयुक्त होती है इस प्रकार अवन कर्म के कारण उसे सविता कहा गया है ॥२५॥ चूंकि यह सूर्य देवताओं द्वारा अचित् किया गया है इसीलिए इसे अकं कहते हैं। अण्डे को दो भागों में विभक्त कर देने पर उसे आर्ति देखकर स्नेहपूर्वक पिता ने कहा था—हे देवेश ! 'आर्त मत हो' इसलिये मात्तैष्ठ कहा गया है ॥२६॥ चूंकि यह समस्त लोकों को धारण करता है, उन्हें भूमि प्रदान करता है इस प्रकार धारण करने के अर्थ में प्रयुक्त होने वाली डुधाब् धातु से निष्पत्त होने के कारण इसे धाता कहते हैं ॥२७॥ गनि प्रत्यय पूर्वक शृं धातु से निष्पत्त होने से अर्थमा बनाया गया है क्योंकि गति में इससे परे कोई नहीं है ॥२८॥ चूंकि यह सूर्य दया गाव से समस्त जीवों का त्राण करता है इस प्रकार स्नेह के अर्थ में प्रयुक्त होने वाली श्रिमित् धातु से निष्पत्त होने के कारण उसे मित्र कहते हैं ॥२९॥ वर की याचना करते हुए याचक देवताओं के लिए चूंकि यह वरद था इस प्रकार वरण के अर्थ में प्रयुक्त होने वाली वृंज् धातु से निष्पत्त होने के कारण इसे वरण कहते हैं ॥३०॥ नारों, असुरों, देवताओं के रूप में जिसका श्रेष्ठ ऐश्वर्य है इस प्रकार श्रेष्ठ ऐश्वर्य के अर्थ में प्रयुक्त होने वाली इदि धातु से निष्पत्त होने के कारण इसे इन्द्र कहते हैं ॥३१॥ चूंकि यह मंसार की सुषिटि, पालन और उसका संहार करने में समर्थ है इस प्रकार शक्ति के अर्थ में प्रयुक्त होने वाली शब्द धातु से निष्पत्त होने के कारण इसे शक कहते हैं ॥३२॥

चूंकि सूर्य समस्त जीवों में अन्तर्हित होकर अनदेखा ही निवास करता है इस प्रकार निवास के अर्थ में प्रयुक्त होने वाली वस् धातु से सम्बद्ध होने

के कारण इसे विवस्वान कहते हैं ॥३३॥ गर्ज शब्द में 'प्र' उपसर्ग जोड़ देने के निपातन से पर्जन शब्द बनता है चूंकि यह (मेघ के रूप में) अत्यधिक गरजता है इसलिए इसे पर्जन्य कहते हैं ॥३४॥ चूंकि यह अमृत इत्यादि से भूलोक, भूवलोक और व्वलोक को सीचता है इसलिए पुष्टि के अर्थ में प्रयुक्त होने वाली पुष्टि धातु से सम्बद्ध होने के कारण इसे पूरा कहते हैं ॥३५॥ अशू धातु व्याप्ति के अर्थ में और इसके साथ प्रिय 'अनु' शब्द जुड़ गया है, इस प्रकार चूंकि सूर्य मारंसार को व्याप्त करता है इसलिए इसे अंशु भी कहते हैं ॥३६॥ चूंकि वह समस्त देवताओं द्वारा सेवित होता है और किरणों को प्राप्त करता है इस प्रकार सेवा के अर्थ में प्रयुक्त होने वाली भज धातु से निष्पत्ति होने के कारण इसे भग कहते हैं ॥३७॥ तुष्टि के अर्थ में प्रयुक्त होने वाली तुष्टि धातु से कथोंकि यह तुष्टि होकर समस्त प्रजार्थों की उत्पत्ति करता है अतः इसे त्विष्टा कहते हैं ॥३८॥ चूंकि वह सम्पूर्ण ससार सूर्य की किरणों से व्याप्त है इस प्रकार व्याप्ति के अर्थ में प्रयुक्त विष्ट धातु से निष्पत्ति होने के कारण इसे विष्ण कहते हैं ॥३९॥ चूंकि इस सूर्य का शरीर बृहत् है और नापने योग्य नहीं है इसलिए बृहत् शब्द विस्तीर्ण का पर्याय होने के कारण इसे अह्या कहते हैं ॥४०॥

\* जो समस्त देवताओं द्वारा पूजित होता है और जो प्रगाण की दृष्टि में महान् है इस प्रकार पूजा के अर्थ में प्रयुक्त मह धातु से सम्बद्ध होने के कारण इसे महादेव कहते हैं ॥४१॥ इस सूर्य को जो निर्वाहि करता है प्रतापवान और उष्ण बनकर जो विष्व के मांस, रक्त और मज्जा आदि को खाने आता है इसलिए रुद्र कहते हैं ॥४२॥ जिससे मृष्टि कृपान्वित होती है और जिससे द्वारा पुनः बटोर ली जाती है इसलिए त्रैकालिक होने के कारण वह दंव कहा जाता है ॥४३॥ भिन्न भिन्न दर्शन वाले कहते हैं यह सर्वश्रोठ है अथवा ऐसा नहीं है, तभी भाव के कारण अथवा मूर्खता के कारण वे ऐसा कहते हैं ॥४४॥ कुछ लोग सूर्य को ब्रह्म का भी कारण मानते हैं और कुछ लोग

भवित भावना के कारण उसे विष्णु कहते हैं ॥४५॥ श्रेष्ठ देवताओं ने विभिन्न अर्थों में सूर्य को कारण माना है इस प्रकार अकेला वह स्वयम्भुव सूर्य पृथक पृथक रूपों में विश्रृत है ॥४६॥ जैसे स्फटिक मणि चित्र विचित्र रंगों में रंग दी जाती है उसी प्रकार अपने विभिन्न गुणों के कारण स्वयम्भुव का अनुरंजन करने से ॥४७॥ वह सूर्य एक ही महामेघ बनकर वर्णरूप और गुणों से भिन्न-भिन्न रूप में रहता है ॥४८॥

जैसे आकाश से गिरा हुआ जल दूसरे जलों में मिल जाता है और भूमि के वैशिष्ट्य से भिन्न रूप धारण कर लेता है उसी प्रकार गुणों के कारण वह सूर्य भी पृथक हो जाता है जैसे एक ही वायु दिशाओं के भेद से दुर्गन्ध अथवा सुर्गन्ध बन जाती है उसी प्रकार वह सूर्य भी बदल जाता है ॥५०॥ जैसे एक ही गाहूपत्य अग्नि अन्य नामों से पुकारी जाती है दक्षिणा और आहवनीय आदि उसी प्रकार वह सूर्य भी ॥५१॥ इस प्रकार सूर्य के एकत्व और बहुत्व के द्विषय में यह प्रमाण बताया गया इसलिए इस देवता दिवाकर में श्रेष्ठ भवित करनी चाहिए ॥५२॥ यही सूर्य ब्रह्मा है, विष्णु है, महेश्वर है, यही वेद है, यज्ञ है, स्वर्ग है, इसमें संशय नहीं ॥५३॥ स्थावर जंगम युक्त यह संसार सूर्य से व्याप्त है अन्न और पान के रूप में यह रवि खाया जाता तथा पिथा जाता है ॥५४॥ विभिन्न नामों और मूर्तियों द्वारा वही सूर्य देवता सर्वश मनुष्यों, अतिथियों, वायु, आकाश, अग्नि में व्याप्त है ॥५५॥ इस प्रकार का यह सूर्य जानी व्यक्ति द्वारा सर्वे पूजा योग्य है जो व्यक्ति इस आदित्य को जानता है वह उसी में विलीन होता है ॥५६॥

जो व्यक्ति सूर्य के एक भी नाम की धातु के अर्थ ज्ञान सहित जानता है वह समस्त रोगों से छुटकारा पाकर तत्काल पाप से मुक्त हो जाता है ॥५७॥ हे सम्ब ! पापों व्यक्ति को कभी भी सूर्य में भवित नहीं हो सकती

इसलिए तुम्हें उत्कृष्ट भवित भावना सहित सूर्य की शरण में जाना चाहिए ॥५८॥ इस प्रकार श्री साम्ब-पुराण में सूर्य-निगमनोत्तम का नवाँ अध्याय<sup>१</sup> समाप्त होता है ।

१. तुलना कीजिए भवित्य-पुराण, १.७८. इस अध्याय के १-३ अंत तथा १४ श्लोकों की पुनरांवृति ब्रह्म-पुराण, ३।.१४ व-२७ में की गई है ।

## अद्याय १०

कशिष्ठ ने कहा—इस प्रकार तिस्तारपूर्वक सुनकर कुतूहल उत्पन्न हो जाने से प्रसन्नचित्त जाम्बवती पुत्र साम्ब ने नारद से पुनः पूछा ॥१॥ साम्ब ने कहा—हर्ष की बात है हं देवर्षि! आपने सूर्य का हर्षवर्धन माहात्म्य वर्णित किया जिसमें श्रेष्ठ देवता सूर्य में मेरी भक्ति उत्पन्न हुई ॥२॥ अब इसके बाद भार्यशालिनी राज्ञी, निक्षुभा, दण्डी और पिगल आदि को भी हैं महामुनि! मुझे बताएँ ॥३॥ नारद बोले—मैंने पहले ही बताया है कि सूर्य की दो पत्नियाँ हैं राज्ञी और निक्षुभा। उन दोनों से राज्ञी को ही द्वी और निक्षुभा को पृथ्वी कहते हैं ॥४॥ पूर्स महीने की कृष्णपक्षीय सप्तमी के दिन सूर्य के साथ द्वी की पूजा होती है और माघ कृष्ण सप्तमी के दिन सूर्य, पृथ्वी और भगवान् आदित्य का संगम होता है और ऋतुसनान किए हुई पृथ्वी सूर्य से गर्भ ग्रहण करती है ॥५॥ द्वी वर्षा ऋतुओं में जलरूपों गर्भ को सूर्य से धारण करती है और पृथ्वी लोक रक्षा के लिए हरी भरी फसलें उत्पन्न करती हैं ॥६॥ हरी भरी फसलों के उत्पन्न होने से प्रमुदित ब्रह्मण लोग आहुतियाँ प्रदान करते हैं और स्वाहा और वषट्कारों से पितरों और देवताओं के लिये यज्ञ करते हैं ॥७॥

चूंकि अौपधियों और स्वधामूतों से मनुष्यों, पितरों और देवताओं को पृथ्वी की भरहित कर देती है इसलिए उसे निक्षुभा कहते हैं ॥८॥ जिस प्रकार सूर्य की पहली पत्नी दो रूपों में बदली और जिसकी यह बेटी हुई और इसकी जो सत्तानें हुईं अब वह सब मुझसे सुनो ॥९॥ ब्रह्म के पुत्र

मारीचि और मारीचि के पुत्र कश्यप हुए ॥ कश्यप के हिरण्यकशिषु और उससे प्रह्लाद नामक पुत्र हुआ ॥ ११ ॥ प्रह्लाद का पुत्र विरोचन नाम से प्रसिद्ध हुआ और विरोचन की वहिन नाम से जननी कही गई ॥ १२ ॥ इस प्रकार वह दिति के पुत्र हिरण्यकशिषु की पौत्री हई, वही कन्या जननी विश्वकर्मा की पत्नी और प्रह्लादी भी कही जाती है ॥ १३ ॥ इसके बाद महर्षि मारीचि की सुन्दरी कन्या जिसका नाम सुरुजा था महर्षि अंगिरा की पत्नी हुई और बृहस्पति की माँ बनी ॥ १४ ॥ बृहस्पति की वद्विन ब्रह्मवादिनी 'भूवती' था और वह वसुओं में से आठवें अयति प्रभास की पत्नी हुई ॥ १५ ॥ उसी ने समस्त शिलिष्यों के अगुआ विश्वकर्मा को ऐडा किया और वही विश्वकर्मा देवताओं के बढ़ई नाम से त्वरित हुये ॥ १६ ॥

देवताओं के आचार्य उन्हीं विश्वकर्मा की वह कन्या तीनों लोकों में सरेणु के नाम से विख्यात हुई ॥ १७ ॥ राज्ञी संज्ञा सास्त्री प्रभासा और पृथ्वी के रूप में विद्यमान उसी की पुत्री निक्षुभा ॥ १८ ॥ महात्मा भगवान् मर्त्तण्ड की पत्नी हुई जो कि साध्वी पतिव्रता देवी और रूपयौवन सम्पन्ना थी ; जिससे रमण करने के लिए सूर्य प्राचीन काल में पुनरुपरूप में अवस्थित हुये ॥ १९ ॥ अपने महान् नेज के कारण सूर्य का जो रूप था वह अंगों के प्रतिरूप हो जाने पर कान्तिविहीन हो गया ॥ २० ॥ उन्हें गांगों में भंग देखकर पिता ने कहा—हे मात्तण्ड दुखी मत होओ । इसीलिए सूर्य मात्तण्ड कहे गये हैं ॥ २१ ॥ इति प्रकार श्री साम्ब-पुराण में राज्ञी-निक्षुभो त्पत्ति नामक दसवाँ अध्याय<sup>१</sup> समाप्त होता है ।

१. तुलना कीजिए भविष्य-पुराण, १.७६.१०-२२ अ इस अध्याय के ४ व-१७ प्रलोकों तथा १८-२० प्रलोकों को स्कन्द-पुराण, (प्रभास खण्ड), ७.६२-७५ तथा ७७-८८ अ में क्रमशः ग्रहण किया गया है ।

## अध्याय ११

अब इसके बाद उस महात्मा सूर्य की सन्तानों के विषयों में बताऊँगा।  
“सूर्य” ने ‘संज्ञा’ की कोख से तीन संतानें उत्पन्न की ॥१॥ दो भार्याओं ली  
पुत्र और एक कन्या कालिन्दी। इन तीनों में श्राद्धदेव नाम वाले प्रजापति  
वैवस्वत मनु ज्येष्ठ थे ॥२॥ इसके बाद यम और यमी दोनों जूड़वा पैदा  
हुए, उन सूर्य का तेज निरन्तर उत्तरोत्तर बढ़ रहा था जिसके कारण वह  
चराचर युक्त तीनों लोकों को अत्यधिक संतप्त कर रहे थे विवस्वान के  
उस गोलाकार रूप को देखकर ॥३॥ उस तेज को न सह पाती हुई अतएव  
अपनी छाया को भेजकर संज्ञा ने कहा। तुम लक्षणों से मेरे समान नारी  
स्वरूप वाली हो जाओ ॥४॥ संज्ञा के ऐसा कहने पर समान लक्षणों वाली  
वह छाया उठ खड़ी हुई। संज्ञा भहीमधी थी अब उसकी छाया उत्पन्न हुई  
॥५॥ हाथ जोड़कर और प्रणत होकर छाया ने सज्जा से कहा ॥६॥ हे  
शोभने ! जिस लिए मुझे पैदा किया है उसकी आज्ञा दो, मैं तो ही वह दुष्कर  
कार्य हो मैं सब कुछ करूँगी तब।

संज्ञा ने कहा—तुम्हारा कल्याण हो। मैं अपने आप पिता के घर आँऊँगी  
इस मेरे घर में निविकार यात्र से तुम रहना ॥७॥ इन दोनों बच्चों और  
थेष्ठ बर्ण वाली इस कन्या को गोदी में लिए रहना और म्बादी से यह बात  
कभी न बताना ॥८॥ छाया ने कहा—हे देवि ! सुखपूर्वक जाओ। तुम्हारी  
कही गई बात कभी न बताऊँगी छाया द्वारा इस प्रकार ढाका बधाने पर  
संज्ञा पिता के घर गई ॥९॥ वह तपस्विनी संज्ञा लजाती हुई पिता के  
पास पहुँचकर एक हृजार कर्य तक उन्होंके घर में रही ॥१०॥ पिता के

## साम्ब युराण

द्वारा बार बार यह कहने पर कि पति के पास जाओ वह यशस्विनी संज्ञा वास्तविक रूप छोड़कर घोड़ी का रूप धारण करके गई ॥१३॥ उत्तर कुरु प्रदेश पहुँचकर वह घास चरने लगी। इसके पश्चात् संज्ञा के चले जाने पर संज्ञा के ही कथनानुसार ॥१४॥ संज्ञा का रूप धारण करके छाया सूर्य के पास उपस्थित हुई। दूसरी संज्ञा होने पर भी सूर्य ने उसे भी संज्ञा ही समझा ॥१५॥ सूर्य ने छाया से दो पुत्र और एक रूपवती कन्या पैदा की अपने पहले उत्पन्न हुए भाई मनु के समान और उन्हीं की तरह रूप वाले दोनों भी हुए ॥१६॥

उनमें से एक अपने धर्म को जानने वाला श्रुतश्रवा था और दूसरा श्रुतकर्मी। इन भावयों में श्रुतश्रवा ही भविष्य में सावर्णि मनु होगा ॥१७॥ और जो शत्रुघ्नि ग्रह हैं श्रुतकर्मी को वही समझना चाहिए। कन्या का नाम तपनी था जो कि पृथ्वी लोक में अप्रगिम रूपवती थी ॥१८॥ पृथ्वी रूप धारिणी उस छाया संज्ञा ने जैसे अपने पुत्रों का पालन किया उसी प्रकार मनेहपूर्वक संज्ञा से उत्पन्न हुए बच्चों का भी पालन किया ॥१९॥ मनु तो उसकी बातें सहते थे किन्तु यम नहीं सहते थे इस प्रकार अपने पिता की पत्नी द्वारा अनेकशः प्रार्थना करने पर भी सूर्य पुत्र यम ने एक बार क्रोधवश बचपने के कारण अथवा भावी दुर्योग के कारण पैर से छाया पर प्रहार किया ॥२०॥ इसके बाद पृथ्वी रूप धारिणी उस संज्ञा ने कुद्ध होकर यम को शाप दिया—अपने पिता की गौरकशलिनी पत्नी मुझको जो तुम पैर से मार रहे हो ॥२१॥ इसलिए तुम्हारा यह चरण गिर जायेगा इसमें संशय नहीं। यमराज ने उस शोष में अत्यंत पीड़ित मन वाले होकर ॥२२॥ अपने बडे भाई मनु के साथ सब कुछ अपने पिता सूर्य को बता दिया और कहा है देव। यह माँ अधिक स्नेह देने वाली नहीं है ॥२३॥

यह प्रायः हम लोगों को छोड़कर अपने छोटे बच्चों को ही सम्मालती है। मैंने उसे मारने के लिए पैर उठाया भर था किन्तु शरीर पर गिराया

नहीं था ॥२५॥ यह चाहे मेरे बचपने के कारण, चाहे मेरे अज्ञान के कारण हुआ आप कुछ भी कह सकते हैं लेकिन हे देवेश ! हे तपस्त्रियों में श्रेष्ठ ! तब भी माँ ने मुझे शाप दिया मुझे इस महान् संकट से उबारिये । आपकी कृपा से मुझे चरण प्राप्त हों ॥ २६॥ सूर्य बोले—निश्चय ही इस प्रसग में मरुत् पुत्र कारण होगा जिससे कि तुम जैसे भी धर्मज्ञ और धर्मपालक व्यक्ति के क्रोध प्रविष्ट हो गया ॥२७॥ बेटे समस्त शापों का प्रतिकार तो सम्भव है लेकिन मौं द्वारा शापित व्यक्ति के लिए तो कोई मोक्ष का साधन नहीं ॥२८॥ यहाँ तक कि तुम्हारी माँ भी स्वयं उस शाप को नहीं मिटा सकती । पुत्र स्नेहबश मैं तुम्हारे ऊपर कुछ न कुछ कृपा अवश्य करूँगा ॥२९॥ कीड़े मकोड़े माँस लेकर पृथ्वी पर गिरेंगे, तुम्हारी माँ की बात सत्य होगी, तुम उनके रक्षक बनो ॥३०॥ नारद बोले । इसके बाद सूर्य ने छाया से पूछा—पुत्रों के एक जैसा होने पर भी तुम किसी एक के प्रति अधिक स्नेह क्यों करती हो ॥३१॥ छाया उस बात पर न ध्यान देती हुई सूर्य से कुछ भी नहीं बोली तब सूर्य ने अपने तेज को समाहित करके सारे रहस्य को जान लिया ॥३२॥

तब भगवान् सूर्य कुछ होकर उसे शाप देने के लिए उद्यत हो गये ॥ तब छाया ने सूर्य से सब कुछ बता दिया जैसे घटना घटी थी ॥३३॥ इसके पश्चात् छाया से सारी बीतें जानकार सूर्य कुछ होकर श्वसुर के पास पहुँचे उन्होंने भी यथोचित रूप में उन्हें प्रसन्न करके और क्रोध के कारण जला देने की इच्छा बाले सूर्य को धीरे धीरे ब्यान्त किया ॥३४॥ विश्वकर्मा ने कहा—तुम्हारे अत्यन्त तेज से भरे हुए इस सुदुःसङ्ग रूप को न सह पाती हुई वह सज्जा धासों के बन में रह रही है ॥३५॥ हे सूर्य ! आज आप शुभ आचरण बाली अपनी भार्या को देखेंगे जो कि आपके सहा रूप के लिए बन में महान् तपस्था कर रही है ॥३६॥ हे देव ! यदि मुझ वड़े का वाक्य आपको अच्छा लगता है तो हे शत्रुनाशक सूर्य ! मैं तुम्हारा रूप रमणीय बना देता

है ॥३८॥ सूर्य का रूप ऊपर नीचे और तिरछे एक जैसा था उस रूप से देवराज इन्द्र भी पीड़ित होते थे ॥३९॥ संतुष्ट हुए महातपस्की सूर्य ने अपने श्वसुर की बात को बहुत महत्व दिया। इस प्रकार रूप मन्पादन के लिए आज्ञा पाकर ॥४०॥

विश्वकर्मा ने शाकदीप में सूर्य को खराद पर चढ़ाकर उनके तेज को शान्त कर दिया ॥४१॥ इस प्रकार जामाता की आज्ञा से विश्वकर्मा द्वारा वह सूर्य भी भाँति काट छाट दिये गये परन्तु अपनी उस काट छाट की सूर्य ने पसन्द नहीं किया इसलिए उत्तार दिये गये ॥४२॥ इसके पश्चात् अपहृण किये गये तेज से निष्पन्न हुआ सूर्य का वह रूप पहले से अधिक कान्त हो गया और वे और भी अधिक शोभायमान हो गये ॥४३॥ तब उन्होंने योगवृत्ति का आश्रय लेकर अपनी भार्या बड़वा को देखा जो कि अपने तेज से निरोहित होने के कारण समस्त जीवों के लिए अहृष्ट थी ॥४४॥ अउव का रूप वारण कर सूर्य उसके सामने संगम के लिए गये परन्तु पर पुरुष की शंका से उसने प्रतिकूले चेष्टा की ॥४५॥ उस संज्ञा ने सूर्य के वीय<sup>१</sup> को नासिका मार्ग से बाहर निकाल दिया उसी से वैद्यों में श्रेष्ठ दोनों अश्विनी कुमार देवता पैदा हुए ॥४६॥ वे दोनों अश्विनी कुमार नास्त्य और दस्त्र नाम से पुकारे गये तब सूर्य ने अपने मनोहर रूप का दर्शन दिया ॥४७॥ उन्हें देखकर वह संज्ञा भी अधिक संतुष्ट और प्रसन्न हुई उस वीय<sup>१</sup> के संग्रीग से और भूमि के गुण से ॥४८॥

अश्व के समान रूप वाले शरीरन्वरी कुमार उत्पन्न हुए। चैकिं वे उन सूर्य देवता की कृपा से रैतस् से उत्पन्न हुए ॥४९॥ इसलिए वे संसार में

१. संज्ञा-छाया आख्यान अन्य पुराणों में भी आता है—विष्णु प० ३.२, मारकपद्मेय प० ७७ १-४२.

रैवत के नाम से ख्याति प्राप्त करेंगे ॥५०॥ इसके पश्चात् मनु, यम, यमी, सावर्णी और शनैश्चर ॥५१॥ तपती, दीनों अश्विनी कुभार और रैवत ये सूर्य की संतानें पृथ्वी में जहाँ तहाँ पर्यटन करने लगी ॥५२॥ इस प्रकार प्राचीन काल में उनकी पहली माँ संजा दूसरी, पृथ्वी कही गयी ॥ तंजा को ही राजी और छाया को निकुंभा कहा गया ॥५३॥ राज धातु शीति के अर्थ में प्रयुक्त होती है ॥ राजा सदैव प्रकाशित करता है और सूर्य तो समस्त जीवों की अपेक्षा अधिक प्रकाश देता है ॥५४॥ चूँकि वह अधिक प्रकाश देता है इसलिए वह राजा कहा जाता है चूँकि संजा राजा की पत्नी भी इसलिए उसे राजी कहा गया ॥५५॥ वही सूर्य पत्नी संजा किस प्रकार पति द्वारा संचालित (भयभीत) कर दी गई उसका वर्णन किया जा चुका है । कुभ धातु संचालन के अर्थ में प्रयुक्त होती है इसलिए उसका नाम निकुंभा है ॥५६॥

स्वर्गलोक में भी कुधा से विहीन चूँकि लोग हो जाते हैं स्वर्ग की दिव्य छाया में प्रवेश करते हैं इसलिए वह निकुंभा कही गयी ॥५७॥ यमराज भी मा के शाप से पीड़ित मन वाले होकर धर्म से अपनी रक्षा की इसलिए वे धर्मराज हुए ॥५८॥ अपने पवित्र कर्म के कारण श्रेष्ठ धुति को उन्होंने प्राप्त किया, पितॄलोक का अधिपत्य और लोकपाल पद प्राप्त किया ॥५९॥ उन बच्चों में जो सबसे बड़े आङ्गदेव मनु थे उन्होंकी सृष्टि इस समय चल रही है ॥ उन्होंका यह इक्षवाकुवंश है जिसके अंत में राजा वृहद्बल हुए ॥६०॥ मनु और यम मेरी छोटी जो यशस्विनी कन्या क्षमी भी वही लोकपाली श्रेष्ठ नहीं यमुना हुई ॥६१॥ महान् तपस्वी प्रजापति जो दूसरे सावर्णि मनु है वे आगे आने वाले मन्त्रवत्तर में मनु होंगे ॥६२॥ वे महाप्रभु आज भी सुमेरु पर्वत के ऊपर दिव्य तपस्या में लीन हैं । उनके भाई शनैश्चर ने ग्रह की पदवी भी प्राप्त किया ॥६३॥ सावर्णि और शनैश्चर से छोटी जो सूर्य की तपती नामवाली कन्या थी वह शोभना राजा संवरण की पत्नी हुई ॥६४॥

इस प्रकार उसी से विन्ध्याचल के शिखरों से तपती नाम वाली नदी निकली। वह पवित्र सूर्य-पुत्री नित्य पृथ्य जलवाली है ॥६५॥ यशस्वी दोनों अशिवनी कुमारों ने देवताओं का वैद्यत्व प्राप्त किया उन्हीं दोनों के बगों का आश्रय लेकर आज भी इस संसार में वैद्य लोग जी रहे हैं ॥६६॥ अप्रतिष्ठित रूप वाला सत्त्वशाली पवित्र जो सूर्य का रेवत नाम वाला पुत्र है वह श्री ग्रीष्म प्रसन्न होता है ॥६७॥ जो उसको मार्ग में पूजित करता है वह कुशल पूर्वक मार्ग पार करता है वह मनुष्यों को अपनी कृपा से सुख देता है ॥६८॥ जो देवताओं के इस जन्मवृत्तात् को सुनता अथवा पढ़ता है उसके समस्त पुत्रों का लेज बढ़ता है ॥६९॥ आपसि आमं पर भी वह मुक्त हो जाता है और महान् फल प्राप्त करता है ॥७०॥ इस प्रकार श्री साम्बपुराण में भ्यारहवाँ अध्याद्य समाप्त होता है ।

१. तुलना कीजिए भविष्य-पुराण, १.७६., सकन्द-पुराण ७.११.  
भ्यारहवाँ-पुराण, ३२

## अध्याय १२

साम्ब ने कहा—हे देवपि ! आपने सूर्य के शरीर की काट छाँट का वृत्तांत संक्षेप में बताया हे मुझन ! मैं उसे विस्तार से सुनना चाहता हूँ मुझे बनाए ॥१॥ नारद बोले—हे यदुनन्दन ! संज्ञा के मैके चले जाने पर सूर्यदेव ने अपने रूप को चाहने वाली भंजा की चिन्ता की ॥२॥ उन्होंने मोचा-संज्ञा पिता के घर चली गयी और इस यशस्विनी ने जो इतना बड़ा तप किया इसलिए इसका मनचाहा मनोरथ मैं पूरा करूँगा ॥३॥ इसी बीच में ब्रह्मा सूर्यदेवता के पास पहुँचकर मीठी वाणी से सूर्य को प्रसन्न करने वाली बातें बोले ॥४॥ हे सूर्य ! देवताओं के बीच तुम आदि देव हो यह मैंने समझा है तुम्हारे श्वलुर तुम्हें रूप सम्पन्न कर देंगे ॥५॥ सूर्य से इस प्रकार कहकर ब्रह्मा ने विश्वकर्मा से कहा—तुम मात्तौण के रूप को मनोहर बना दो ॥६॥ तब ब्रह्मा के आदेशवश सूर्य को थंच पर चढ़ाकर विश्वकर्मा ने धीरे धीरे उनका रूप सम्पादित किया ॥७॥ तब समस्त देवगणों के साथ ब्रह्मा ने वेद सम्मत नाना प्रकार की रहस्यात्मक स्तुतियों से सूर्य को प्रसन्न किया ॥८॥

हे जगन्नाथ ! वर्षी, घाम और शीत देने वाले ! हे देव देव ! हे दिवाकर ! तुम्हारा कल्याण, हो लोकों को शान्त प्रदान करो ॥९॥ इसके बाद रुद्र और विष्णु ने भक्तपूर्वक सूर्य की वन्दना की है ॥ हे दिवस्पते ! हे देव ! तुम्हारा काटा छाँटा गया तेज वृद्धि को प्राप्ति हो ॥१०॥ इसके बाद खरादे जाते हुए उन सूर्य देवता की स्तुति इन्द्र ने आकर की हे देव ! हे जगत्पते ! तुम्हारी निरन्तर जय हो ! जय हो ॥११॥ इसके पश्चात् सातों ऋषि विश्वामित्र को आगे करके ‘स्वस्ति स्वस्ति’ इस प्रकार कहते हुए

विविध स्तुतियों में वन्दना करने लगे ॥१२॥ बालखिल्यों ने वेदों से कही गयी ऋचाओं से और आशीर्विचनों से सूर्य को प्रसन्न किया—हे नाथ ! मोक्ष चाहने वालों के तुम मोक्ष हो, ध्यान चाहने वालों के तुम सदैव ध्यान-विन्दु हो ॥१३॥ तुम्ही समस्त प्राणियों के स्वर्गलोक हो । तुम्हाँ में सब कुछ प्रतिष्ठित है । हे देवेश ! हे जगत्पते ! आप प्रसन्न हों । प्रजाओं का कल्याण हो ॥१४॥ इसी प्रकार विद्याधर, नाग, राक्षस, सर्प सब हाथ जोड़कर सिर झुकाकर सूर्य से ॥१५॥ मन और कानों को अच्छे लगने वाली विविध प्रकार की वाणी बोले । हे भूत भावन ! प्राणियों के लिए तुम्हारा तेज सहने योग्य हो ॥ १६ ।

इसके बाद हा हा और हू हू नामक गन्धवों ने तथा नारद ने सूर्य को नंगुट किया और कुशल गन्धवों ने सूर्य का गुण गान करना प्रारंभ किया ॥१७॥ पड़ज, मध्यम और गन्धार घाटों में प्रदीण मूर्च्छनाओं तालों आदि के द्वारा ॥१८॥ विश्वाची, वृत्ताची, उर्वशी, तिलोत्तमा, मेनका, सुजन्या और रम्भा अप्सराओं में श्रेष्ठ ये ॥१९॥ खरादे जाते हुए सूर्य को प्रसन्न करने के लिए नाचने लगी ॥ हावभाव और लिलासो से अनेक प्रकार का अभिनय करने लगी ॥२०॥ इसके पश्चात् समस्त देवताओं के मन और कानों को सुख देने वाली अत्यंत मधुर और मादक गीत व्वनि उठने लगी ॥२१॥ इसके पश्चात् एकतारा, वीणा, वेणु, हुड़ै, नगाड़ा, डोरी, मृदंग, तासा ॥ २२ ॥ देव, दुन्दभी, शंख सैकड़ो और हजारों की संख्याओं में बजने लगे ॥ याते हुए गन्धवों और नाचती हुए अप्सराओं के समूह द्वारा सूर्य और बाजों के द्वीष से सारा वानवरण कोलाहल से भर गया ॥२४॥

इसके पश्चात् समस्त पुष्पों के परागों से युक्त अन्जलियों को सतक पर स्थापित करके भमस्त देवताओं ने प्रणाम किया ॥२५॥ इसके पश्चात् देवताओं की गमनागमन से युक्त उस कोलाहल के बीच विश्वकर्मा ने धीरे-

धीरे सूर्य के तेज की काट छाँट की ॥२६॥ इस प्रकार शीत, वर्षा और ग्रीष्म ऋतु के कारण बनने वाले रुद्र, ब्रह्मा और विष्णु द्वारा स्तुत किये गये सूर्य देवता के स्वरूप की काट छाँट का वृत्तान्त पढ़ता हुआ व्यक्ति आयु के समाप्त होने पर सूर्य-लोक जाता है ॥२७॥ इस प्रकार श्री सम्बुराण में बारहवाँ अध्याय<sup>१</sup> समाप्त होता है ।

१. तुलना कीजिए भविष्य-पुराण, १.१२१., ब्रह्म-पुराण, ३२.५६,  
८०,८३, स्कन्द-पुराण, ७-११.

## अध्याय १३

साम्ब ने कहा—हे देवर्षि ! उस समय यंत्र के ऊपर रूप का कर्तन किये जाने पर दिवस्पति सूर्यदेव जिस प्रकार ब्रह्मा आदि देवताओं के द्वारा स्तवन किये गये उसे मुझे बताइये ॥?॥ नारद वोले इसके पश्चात् विष्वकर्मी प्रसन्न अन्तरात्मा से इस स्तोत्र के द्वारा स्तुति करते हुए कर्तन करने के लिए उद्दत हुए ॥२॥ विष्वकर्मी ने कहा—प्रथम पूर्वक शरणागतों के द्विती पर अनुकर्मा करने वाले, पवन के समान स्फृति वाले, सात अङ्गों वाले कमलसमूहों को प्रफुल्लित करने वाले, अंधकार समूह के पर्दे को फाँट देने वाले ऐसे सूर्य को नमस्कार है ॥३॥ पवित्र, निष्पाप, पुण्यकर्मी करने वाले अनेक इच्छाओं की परिपूर्ण करने वाले, कान्ति युक्त निर्मल किरणों की माला वाले तथा समस्त लोकों का हित करने वाले सूर्य को नमस्कार है । अजल्मा, त्रैलोक्य के कारणभूत, जीवों के आत्मस्वरूप, किरणों के स्वामी ‘वृष’ करुणा करने वालों में अत्यंत श्रेष्ठ, सबके जन्मदाता सूर्य को नमस्कार है । ज्ञानियों के अन्तरात्मा स्वरूप, संसार की प्रतिष्ठा स्वरूप, संसार के हितैषी स्वर्य समग्र लोकों के नेत्रस्वरूप, अपरिमेय तेज वाले श्रेष्ठ देवता विवस्वात् को नमस्कार है । हे देव ! उदयाचल ने मौलिमणि देव समूह द्वारा वन्दनीय, संसार के कल्याणकर्ता विशाल हजारों किरणों से युक्त गरीब वाले आप अंधकार का भेदन करते हुए सुशोभित होते हैं । अंधकार रुषी मंदिरा पान के मद से तुम्हारे शरीर में लाली छा जाती है । हे सूर्य ! इसी कारण से त्रैलोक्य पर कृपा करने वाली लीखी किरणों से तुम अत्यधिक सुशोभित होते हो ॥८॥

## अध्याय १४

साम्ब ने कहा कि हे देवपि ! सूर्य ने मवंधिन कथा आप मुझे किर बताएँ, इस पवित्र कथा को मुनते हुए मैं तृष्णि नहीं प्राप्त कर पा रहा हूँ ॥१॥ नारद बोले— हे साम्ब ! अमस्त पापों को विनष्ट करने वाले सूर्य की दिव्य कथा को तृप्ति कर्हेगा जो लोकों को उत्पन्न करने वाले ब्रह्मा द्वारा पहले कभी कही गई थी ॥२॥ सूर्य की किरणों से संतप्त होकर अजान के करण मूढ़ बनकर कृषियों ने ब्रह्म-लोक में पितामह ब्रह्मा से पूछा ॥३॥ कृषियों ने कहा—हे प्रभो ! दीप्तिभन महानिजम्बवि अग्नि-ज्वाला के समान प्रभावाला यह कौन है और इसका जन्म किसने हुआ हे हम यह जानना चाहते हैं ॥४॥ ब्रह्मा बोले—हे कृषिगण ! (प्रलय काल में) बराचरमय समस्त जीवों के विनष्ट हो जाने पर गुणों का वैषम्य होने पर सर्वप्रथम बृद्धि तत्त्व उत्पन्न हुआ ॥५॥ उस बृद्धि में पंचमहाभूतों को प्रवर्तित करने वाला अहंकार तत्त्व पैदा हुआ । वे पांच तत्त्व थे वायु, अग्नि, जल, आकाश और पृथ्वी । इन पंचमहाभूतों से अड़ा पैदा हुआ, उसी अंडे में यह सातो लोक सम्प्रतिष्ठित है, सातो द्वीपों से और सातो समुद्रों से युक्त पृथ्वी उसी में विद्यमान थी ॥६॥ उसी अण्डे में मैं, विष्णु और शंकर मवके सब अंधकार राशि से विसूढ़ बनकर परमेश्वर का ध्यान करते हुए अवस्थित थे ॥७॥

इसके पश्चात् अंधकार को फाड़ देने वाला एक अचिन्तनीय महान् तेज प्रादुर्भूत हुआ । हम लोगों ने तब ध्यान-योग से समझा कि यही सविता देवता

१. यहाँ सृष्टि की उत्पत्ति साँख्य सिद्धान्त के आधार पर बतलाई गई हे दृष्टव्य चटर्जी एवं दत्त, भारतीय दर्शन, पृ० २६.

ह ॥६॥ हम सबने उन्हें परमात्मा जानकर दिव्य स्तुतियों से अलग अलग दन्दनाएँ की । हे सूर्यदेव ! आप देवताओं में प्रब्रह्म देवता हैं, ऐश्वर्य के कारण आप ईश्वर हैं । प्राणियों के आदि कर्ता हैं, देवताओं के देव और दिन उत्पन्न करने वाले हैं ॥७॥ आप देव, गन्धर्व, राक्षस, मुनि, किञ्चन, सिद्ध, सर्प, पक्षी, समस्त प्राणियों के जीवन हैं ॥८॥ हे प्रभो ! आप ब्रह्म है, शंकर हू, जगत्पति विष्णु हैं । आप वायु, इन्द्र, सोम, विवर्मान और अरुण हैं ॥९॥ हे प्रभो ! आप काल है, सृष्टि के विनाशक हैं, सृष्टि कर्ता हैं, सृष्टि के पालक तथा उसके स्वामी हैं । नदियाँ, समुद्र, पर्वत विद्युत, इन्द्रधनुष ॥१०॥ प्रलय, सृष्टि व्यक्त, अव्यक्त, सनातन और ईश्वर से भी श्रेष्ठ विद्या और विद्या स भी श्रेष्ठ शिव ॥११॥ शिव से भी अधिक श्रेष्ठ देवता परमेश्वर आप ही हैं ॥१२॥

हे नाथ ! आप चतुर्दिक हाथ पैर से युक्त हैं, चतुर्दिक आँख, शिर और मुख से युक्त हैं, चतुर्दिक कानों से युक्त हैं और सब कुछ समेटकर इस लोक में आप विद्यमान है ॥१३॥ आप सहस्र किरणों वाले, मुखों वाले, सहस्र चरणों जार नेत्रों वाले, जीवों के उद्गम-विन्दु, भूलोक, भूवलोक, स्वलोक, महालोक, स्त्यलोक, तपोलोक और जनलोक सब कुछ हैं ॥१४॥ हे नाथ ! प्रदीप्त प्रकाशित करने वाला, समस्त लोकों को उद्भासित करने वाला, श्रेष्ठ देवताओं द्वारा भी नैदेखा जा सकने योग्य अथवा आपका जो दिव्य रूप ह उस रूप वाले आपको नमस्कार है ॥१५॥ हे प्रभो ! देवताओं और सिद्धगणों द्वारा प्रसन्न किया गया भूगू अत्रि और पुलह आदि ऋषियों द्वारा स्तवन किया हुआ आपका जो श्रेष्ठ अव्यक्त रूप है उस रूप को नमस्कार है ॥१६॥ हे प्रभो ! जो निरन्तर देवज्ञानियों द्वारा जानने योग्य है, समस्त ज्ञानों से समन्वित है, ऐसे समस्त देवता आपको नमस्कार है ॥१७॥ हे सूर्य ! विश्व की सृष्टि करने वाला, विश्व का वैभव स्वरूप, अग्नि और देवताओं द्वारा समचित ऐसा जो अचिन्तनीय आपका विष्वरूप है उस रूप वाले आपको नमस्कार है ॥१८॥ जो वेदों से श्रेष्ठ है, जो यज्ञों से श्रेष्ठ है,

जो व्युलोक से श्रेष्ठ है जो परमात्मा के नाम से विस्थात है, ऐसे रूप वाले आपको नमस्कार है ॥२३॥ जो जानने योग्य नहीं है जो दिक्षाई पड़ने योग्य नहीं है, जो आत्मा द्वारा ही प्राप्त करने योग्य है, जो अविनश्वर है और आदि-अन्त से विहीन है ऐसे रूप वाले आपको नमस्कार है ॥२४॥

कारणों के भी कारण, पापनाशक, वन्दना किये गये व्यक्तियों द्वारा भी वन्दित, दुखनाशक आपको नमस्कार है ॥२५॥ समस्त अभीष्ट वन्न-सम्पत्ति को प्रदान करने वाले, सप्तसन् सुखों और समस्त वृद्धियों को प्रदान करने वाले, आपको वारम्बार नमस्कार है ॥२६॥ इस प्रकार तेजस्वी रूप में अवस्थित भगवान् सूर्य इन स्तुतियों को सुनकर कल्याणमयी वात बोले—  
आप लोगों को कौन बउ दूँ ॥२७॥ ब्रह्मा बोले—हे प्रभो ! आपका अत्यन्त तेजस्वी रूप कोई व्यक्ति नहीं मह पाता है ॥ अतएव भगवार के कल्याणार्थ यह तेज सहने योग्य हो जाये ॥२८॥ भगवान् भास्कार भी ‘ऐसा ही हो’ इस प्रकार कहकर संसार की कार्य तिद्वि के लिए ग्रीष्म, वर्षा और जीव दाता बन गये ॥२९॥ इसीलिए सौख्य के ज्ञानी, प्रीणी और अन्य मोक्ष की आकांक्षा करने वाले ध्यानी लोग निरन्तर हृदय में त्रिद्विमान सूर्य का ध्यान करते हैं ॥३०॥ समस्त लक्षणों से हीन होने पर भी समस्त पापों से युक्त होने पर भी सूर्य देवता का आश्रय लेकर सभी आप पार कर लेते हैं ॥३१॥ यज्ञ, याग, चारी वेद और प्रभूत दक्षिणा वाले यज्ञ सूर्य की भक्ति से और उन्हें नमस्कार करने मात्र से उसके सौलहबों भाग की भी बराबरी नहीं कर पाते ॥३२॥

जो तीर्थों से भी सर्वश्रेष्ठ तीर्थ है, जो मंगलों का भी मंगल है, जो पवित्रों का भी पवित्र है, ऐसे सूर्य की शरण में जाता है ॥३३॥ इस प्रकार ब्रह्मा आदि देवताओं द्वारा स्तवन किये गये सूर्य को जो नमस्कार

करते हैं वे समस्त पापों से मुक्त होकर सूर्यलोक को जाते हैं ॥३४॥ इस कार श्री साम्ब-पुराण में ब्रह्मभाषितस्तवनामक चौदहवाँ अध्याय<sup>१</sup> समाप्त हो गया ।

१. तुलना कीजिए अद्विष्ट-पुराण, १.१२३. १-१६, २१ ब, २२, २३ ब-३४.

## अध्याय १५

साम्ब ने कहा—हे देवपि ! देवताओं अथवा ऋषियों द्वारा सूर्य के शरीर को काट छाँट की क्रिया कैसे प्रस्तावित की गई यह आमुझे बताये ॥१॥ नारद बोले —ब्रह्मलोक में सुखपूर्वक बैठे हए ब्रह्मा से देवताओं और राक्षसों को साथ लिए हुये ऋषियों ने मावधान होकर कहा ॥२॥ हे भगवन ! यह जो अदिति का पुत्र महान् तपस्वी, तीव्र तेज वाला, मार्त्तिङ्ग नाम से विख्यात अन्तरिक्ष लोक में विद्यमान है ॥३॥ इसके तेज से चरचरमय सम्पूर्ण संसार क्लेश पा रहा है, आक्रमन कर रहा है, हे प्रभो ! इसकी उपेक्षा आप कैसे कर रहे हैं ? ॥४॥ हम लोग भी उम सूर्य के तेज से सम्प्रमोहित होकर शंकाग्रस्त बनकर द्युलोक, पृथ्वी और अन्तरिक्ष में शान्ति नहीं प्राप्त कर पा रहे हैं ॥५॥ ऐसा कहे जाने पर भगवान् ब्रह्मा ने कहा—हम सब एक साथ मिलकर उसी देवता की शरण में चले ॥६॥ इसके पश्चात् उदयविन्दु बनते वाले पर्वतराज (सुमेरु) के अलंकारहवरु उन सूर्य की प्रजापतियों के साथ सब देवता स्तुति करने लगे ॥७॥ ब्रह्मा<sup>१</sup> बोले—मुरों में श्रेष्ठ, तीक्ष्ण तेज वाले, भक्तों के कल्पगार्थ कृपा करनी वाले, सूर्य को नमस्कार है । त्रैलोक्य के प्राणियों पर कृपा करने वाले, यज्ञ-कर्मों के शुभ फलों को प्रदान करने वाले, सूर्य को बारम्बार नमस्कार है ॥८॥

शुभ और अशुभ समस्त करणीय कार्यों के साक्षीभूत, सहस्र किरणों वाले सूर्य देवता को नमस्कार है । श्रेष्ठ सात अश्वों से युक्त पक्षिस्त्रम्

<sup>१</sup> ब्रह्मा द्वारा सूर्य के स्तुति की कथा अन्य पुण्याणों में भी आती है दृष्टिव्य मारकण्डेय पुराण, १०३.६ तुलना कीजिए भविष्य पृ० १.१२३.

और अटल रशिमयों से सम्बद्ध ऐसे तुम्हें नमस्कार है ॥१९॥ बालखिल्यों अप्सराओं, किन्नरों, सर्पों, सिद्धों, गंधर्वों, पिशाचों, गुह्यको, यज्ञों, राक्षसों और श्रेष्ठ चारणों से संबालित सत्कारपूर्वक वन्दित ऐसे तुम सूर्य देवता को नमस्कार है ॥२०॥ हे प्रभो ! जो आप लाप, शीत और जल की सृष्टि द्वारा प्राणियों के शरीर में रसों की सृष्टि करते हैं और जो आप समुद्रो सहित समूचे समार का शोषण करते हैं ऐसे श्रेष्ठ वेदों के द्वारा नमन किए गए आप भास्कर को नमस्कार है ॥२१॥ अंधों, गूँगों, बहरों, दाढ़, कोढ़ से युक्त और कीड़ों से ब्रिलिलाते हुए घाव वाले मनुष्यों को जो आप पुनः नवीन बना देते हैं ऐसे न दी हुई वस्तु को देने वाले महाकारुणिक आपको नमस्कार है ॥२२॥ हे प्रभो ! जो उदर में आपकी कोमल जयोति विद्यमान है जो जलराशियों में तेज है और जो नेत्रों में जयोति के अस्ति में तथा आकाश में जी गर्मी है यह सब आपका ही एक रूप अनेक रूपों से विद्यमान है ॥२३॥ हे नाथ ! सागर जल में निवास करते वाले भयकर पशु, तलबार, परशु आदि आयुधो वाले तथा पापमय चित्त वाले जो सुर-द्रोही उठ खड़े होते हैं आपके दर्शन मात्र से विनष्ट हो जाते हैं ॥२४॥ इस प्रकार ब्रह्मा आदि देवताओं द्वारा अन्दित होने पर और उनके मन की बात जान बूझकर भगवान् सूर्य ने यह बात कही ॥२५॥ हे देवगणों ! जो कल्याण करने वाली है, जो रहस्यमय हो, और जो श्रेष्ठ गायत्री वचन के समान हो, ऐसी बात मुझे बताओ मैं अपने आप शीघ्रतापूर्वक क्या करूँ ? ॥२६॥

इसके पछात वे देवगण आज्ञा प्राप्त करके प्रसन्न मन होकर मन, वचन और कर्म से त्वष्टा की पूजा करने लगे ॥२७॥ इसके पछात् समस्त लोकविधान को जानने वाले विश्वकर्मा<sup>१</sup> ने तेजोराशि विभावसु सूर्य को खराद यन्त्र के ऊपर स्थापित किया ॥२८॥ विश्वकर्मा ने धीरे धीरे अमृत

१. अन्य पुराणों में भी यह आख्यान आता है देखिए मरकण्डेय-पुराण, ७७, विष्णु-पुराण, ३.२.

से नहलाए जाते हुए वैतालिकों द्वारा स्तुति किये जाते हुए सूर्य के तेज का कर्तन किया ॥१६॥ देवताओं, राक्षसों और महासपों द्वारा घुटने पर्यन्त खरादे जाने पर सूर्य ने उस कर्तन-कर्म को प्रसन्न नहीं किया। इसलिए यन्त्र से नीचे उत्तर आये ॥१७॥ उसी समय से सूर्य देवता के दोनों चरण<sup>१</sup> निरन्तर संबृत हो गए और उनका हृदय तेज से खुक्त हो गया ॥२१॥ उन सूर्य देवता के काटे गए तेज से ही चक्र का निर्माण किया गया। उसी चक्र से विष्णु ने अत्यन्त तेजस्वी आततायी दानवों को मारा ॥२२॥ सूर्य के उसी काटे गए तेज से शूल, शवित, गदा, चक्र, धनु और फावड़ा इत्यादि बनाकर महामति विश्वकर्मा ने देवताओं को दिया ॥२३॥ ब्रह्मा के मुख में उत्पन्न हुए स्तोत्र को दोनों संध्याओं में अथवा हुआ व्यक्ति अपने वंश को पवित्र करता है और रोगों से प्रीडित नहीं होता ॥२४॥

ऐसा व्यक्ति संततियुक्त, सिद्धकर्मी, पुण्यवान्, बनवान् और सर्वत्र अपराजित बनकर १०० वर्ष से भी आगे जीवित रहता है ॥२५॥ और प्राण-संघात नष्ट होने पर पवित्रलोक प्राप्त करता है। इस प्रकार श्री साम्बपुराण में ब्रह्मकृत स्तोत्र नामक पञ्चरहवाँ अध्याय समाप्त होता है।

१. इरानियन प्रभाव के कारण सूर्य देवता के चरणों को उपानत-युक्त बनाया जाता था। इसी ऐतिहासिक तथ्य को राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान करने के दृष्टिकोण से यह आख्यान बनाया गया था। देखिए बनजीं जे० एन०, मिथ्स एक्सप्लेनिंग सम एलियन ट्रेट्स आफ दो नार्थ इण्डिन सन आइकन्स, इण्डियन हिस्टारिक्स क्वाटरली, भाग २८.

## अध्याय १६

नारद बोले—अब इसके बाद मैं दण्डनायक, पिगल, दोनों द्वारपाल और दिष्ठि-सहित अन्यत्य पास रहने वाले अनुचरों<sup>१</sup> की बात बनाऊँगा ॥१॥ प्राचीन काल में ब्रह्मा के साथ मिलकर देवताओं ने विचार किया कि करुण स्वभाव वाले सूर्य अकेले ही दैत्यों को वर प्रदान कर देते हैं ॥२॥ वे दैत्य वर प्राप्त करके स्वर्गवासी देवों को कषट देते हैं अस्तु उनके विनाशार्थ हम सूर्य से प्रार्थना करेंगे ॥३॥ हम लोगों द्वारा रीके जाने पर वे राक्षस सूर्य को नहीं देख पाएंगे । इस प्रकार परामर्श करके इन्द्र सूर्य की बाई और स्थित हो गया ॥४॥ उसका नाम दण्डनायक हुआ, वह समस्त लोकों का स्वामी हुआ और सूर्य ने उससे कहा—तुम प्रजाओं के दण्डनायक हो ॥५॥ चूंकि तुम दण्डनीति का निर्माण करने वाले हो इसलिए तुम दण्डनायक हो । वही दण्डनायक प्राणियों के पुण्य और पाप का लेखा-जोखा रखता है ॥६॥ सूर्य के दक्षिण भाग में अग्नि खड़े हो गए और पीतवर्ण होने के कारण उनका नाम पिगल हुआ । दोनों अश्विनीकुमार भी सूर्य के दोनों बग्ल खड़े हो गए चूंकि वे अश्व के रूप में उत्पन्न हुए थे इसलिए उन्हें अश्विन कहा गया ॥७॥ उन राजा गूर्य के पूर्वो द्वार पर दो महाबलशाली तथा राजा को प्रसन्न करते वाले द्वारपाल खड़े हुए<sup>२</sup> । एक तो कात्तिकेय थे और दूसरे शश ॥८॥

१. सूर्य के अनुचरों के विवरण के लिए देखिए ब्रिंजुधर्मोत्तर-पुराण, ३.६७.२-६. भविष्य-पुराण, १.१२४ ।



‘राज्’ धातु दीप्ति के अर्थ में प्रयुक्त होती है और नकार इसका प्रत्यय है चूंकि यह देवताओं का सेनापति है और प्रकाश करता है इसलिए वह कात्तिकेय नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥१॥ ‘तुम्’ गमन के अर्थ में प्रयुक्त होती है और स उसका प्रत्यय है चूंकि यह गमन करता है, दौड़ता रहता है इसलिए इसे ‘तोष’ कहा गया ॥१०॥ ये दोनों द्वारपाल द्वार को जटिल और अनुललघुनीय बनाकर खड़े रहते हैं। पक्षियों के प्रेताधिप नाम से कलमाप पक्षी कहे गए ॥११॥ रंग चितकबरा होने के कारण वह कलमाष कहा जाता है चूंकि उसके और पाँख है इसलिए वह पक्षी है गहड़ नाम से विख्यात है ॥१२॥ सूर्य की दाहिनी दिशा में माठर सहित जान्दकार अवस्थित रहता है। जान्दकार ही चित्रगृप्त है और माठर को ही काल कहा जाता है ॥१३॥ महामति चित्र-गृत निरन्तर यम देवता का कार्य करने वाला है अर्थ को ही ‘जान्द’ कहा गया है इसीलिए चित्रगृप्त का दूसरा नाम जान्दकार है ॥१४॥ चूंकि इसका निवास निरन्तर दक्षिण दिशा में ही होता है और ‘मठ्’ धातु का प्रयोग निवास के अर्थ में होता है इसीलिए काल को ‘माठर’ कहते हैं ॥१५॥ सूर्य के पश्चिम और ‘प्राप्नुयान’ और ‘क्षुताप् विद्यमान रहते हैं। क्षुताप को ही बहुण समझना चाहिए और प्राप्नुयान को सामर ॥१६॥

सूर्य के उत्तर और विनायक सहित कुबेर रहते हैं। कुबेर को धन समझना चाहिए और हाथी के आकार वाले विनायक है ॥१७॥ सूर्य की पूर्व और रेवन्त और दिष्ट दोनों रहते हैं। उन दोनों में से दिष्ट को ही रुद्र मानना चाहिए और रेवन्त सूर्य के पुत्र है ॥१८॥ इस प्रकार ये सूर्य के मेवक बर्णित किए गए। अब इनकी संख्या मुझसे समझ लो माठर, जान्दकार धनद, विनायक ॥१९॥ प्राप्नुयान्, क्षुताप्, दो कलमाप पक्षी, दो अश्विनी कुमार, दण्डनायक, पिंगल ॥२०॥ दो द्वारपाल, रेवन्त, दिष्ट इस प्रकार कुल इतने सूर्य के अनुचर बताए गए हैं ॥२१॥ संक्षेप में इनकी संख्या १८ बताई गई है। इस प्रकार वे स्तवन करने योग्य नामों से युक्त दानवों के विनाशार्थी नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से युक्त होकर सूर्य को घेर कर खड़े

रहते हैं॥२२॥ इसी प्रकार सुन्दर रूप वाले, अन्य रूप वाले, बिगड़े हुए रूप वाले, मनचाहा रूप धारण करने वाले और सूर्य के रूप वाले देवगण सूर्य को घेरकर स्थित रहते हैं ॥२३॥ ऋचाएं यजुष्, और साम जो बाड़मय में कही गई हैं वे सबकी सब नाना रूपों से सूर्य के चारों ओर छड़ी रहती हैं ॥२४॥

नारद बोले, “अब इसके बाद मैं एक बार फिर सूर्य के समस्त अनुचरों में प्रधान दिण्डि के विषय में बताऊँगा जो कि नग्नरूप में ही आकाश में रहता है। यहाँ पर रुद्र ही दिण्डी कहे जाते हैं ॥२५॥ प्राचीन काल में ब्रह्मा के शिर को काटकर शंकर उस शिरः कपाल को लेकर नग्न रूप में ही प्रभूत जल वाले फूलों और फलों से भरे ऋषियों के दारुवन में पहुँचे ॥२६॥ भगवान शंकर को उस भिक्षुक के रूप में देखकर क्षुब्ध हुई स्त्रियों विकल होकर भाग गई और अपनी उन स्त्रियों के क्षुब्ध हो जाने पर अत्यधिक कूद्ध होकर मुनियों ने शंकर पर प्रहार करना प्रारम्भ किया ॥२७॥ हाथ में हेला और डन्डा लिए हुये उन समस्त ऋषियों द्वारा मारे जाते हुए भगवान शंकर उस देश को छोड़कर सूर्यलोक में चले आए ॥२८॥ उन्हें आता हुआ देखकर सूर्यलोक के प्रवर्तों ने कहा—स्वामी। आप किस लिए निरन्तर भ्रमण कर रहे हैं? शंकर ने कहा—मारे गए लोगों के द्वारा प्राप्त पाप मिटाने के लिए तीर्थों और देवताओं के लोकों में पर्यटन कर रहा हूँ ॥२९॥ सूर्य के उन सेवकों ने पुनः शंकर से कहा—आप यहीं सूर्य के समक्ष खड़े ही जाय। भगवान सूर्य आपकी यहाँ शुद्धि कर देंगे और तब निष्पाप होकर आप रुद्रलोक चले जाइयेगा। सूर्य के सेवकों द्वारा इस प्रकार समझाए जाने पर नग्न, जटायुक्त हाथ में थिट्ठ और कपाल लिये हुए इस प्रकार त्रिलोक में अद्वितीय रूप वाले रुद्र<sup>१</sup> वहाँ लोकनाथ सूर्य के समेक्ष खड़े हो गए ॥३१॥ उन्होंने

१. यहाँ पर कापालिक रूप में शिव का उल्लेख किया गया है। दृष्टव्य डैविड एन० लोरेन्जन, दो कापालिकाज ऐड कालामुखाज १८७२, पृ० ७७-८०, मत्स्य-पुराण, १८३.८३-१०८ में यह पौराणिक कथा पाई जाती है तथा अन्य पुराणों में भी यह कथा सुरक्षित है।

सूर्य देवता को प्रसन्न किया । तब सूर्य देव ने कहा—तुम्हारे वचनामृत से मैं प्रसन्न हूँ । मेरे दर्शनभाव से आप विशुद्ध हैं और अब संसार में आप दिष्टि नाम से प्रतिष्ठ होंगे ॥३२॥

अब आप अत्यन्त पवित्र पापनाशक लौकिक नाम बाले अपने स्थान को जाएं । कपाल का त्याग करके वहाँ आप निरन्तर विशुद्ध मूर्त्ति होकर मेरे साथ रहेंगे ॥३३॥ इस प्रकार दो सूर्य के १८ भुखियाँ हैं और अन्य १४ सेवक अधोलोक में हैं उनमें से दो देवता हैं, दो मुख्य कृपि हैं, दो अनन्त प्रभाव बाले गन्धर्व और सर्प हैं, दो यज्ञ हैं, दो राक्षस हैं और दो वरिष्ठ अप्सराएं हैं जो कि इस लोक में, आकाश में, जल में और सूर्य में निवास करते हैं । इनका समूह १४ का है । इस प्रकार श्री साम्बपुराण में सौलहवीं अध्याय<sup>१</sup> समाप्त होता है ।

<sup>१</sup>. प्रथम अध्याय से लेकर इस अध्याय तक की तिथि ५००-८०० ई० के मध्य मानी जाती है देखिए हाजरा, जार० सी०, दी साम्ब-पुराण शू. दी एजेस्. जर्नल आफ एशियाटिक सोसाइटी, लेटर्स, भाग १८ (२)

## अध्याय ७७

नारद बोले—हे सम्ब ! उदयाचलवासी भगवान् सूर्य को शिर से प्रणाम करके अब तुम दिग्डि द्वारा प्रस्तुत किये गये सूर्य के इस महास्तव को सुनो ॥१॥ (दिग्डि ने सूर्य की स्तुति की) मैं भक्तिपूर्वक समस्त पापों का नाश करने वाले भगवान् सूर्य की शरण में जाता हूँ, मैं देवताओं, दानवों, यक्षों, ऋणों और नक्षत्रों ॥२॥ के तेज से भी अधिक तेज वाले सूर्य की शरण में जाता हूँ । इस प्रकार कहकर भगवान् शकर ध्यान-प्रण त्र हो गये ॥३॥ ध्यान के सहारे नन ही मन अपनी वास्तविक मूर्त्ति का स्मरण करके शंखर ने अंधकार नाश करने वाले रश्मिमाली भगवान् सूर्य को वचनों से संतुष्ट किया ॥४॥ (मैं इन भगवान् प्रभाकर की शरण में जाता हूँ) जो छुलोक में स्थित है । किरणों के अग्रभाग से दसों दिशाओं को प्रकाशित कर रहे हैं, जो अपनी मरीचियों से पृथक्षी और अंतरिक्ष को व्याप्त कर रहे हैं, जो आदित्य, भास्कर, सूर्य, लविता, दिवाकर, पूषा, अर्यमा स्वरभानु, और प्रदीप तेज वाले हैं ॥५॥ जो चारों युगों का अंत करने वाले कालामिन हैं दुप्रेक्ष्य हैं, प्रलय मचाने वाले हैं, योगेश्वर, अनन्त, लाल पीले वर्ण वाले और इवत कृष्ण वर्ण वाले हैं ॥६॥ जो ऋषिओं के अग्निहोत्रों में, यज्ञों में, और वेदों में संरक्षित है, जो अविनाशी है, परम गोपनीय है, मोक्षद्वार और शैष्ठ देवता है ॥७॥

१. यह अध्याय ६५० ई० के उपरान्त प्रक्षिप्त किया गया, हजारा, वही

जो अश्व रूप धारण करने वाले आकाशचारी छन्दों द्वारा एक ही वार जुड़कर उदय और अस्त्र क्रिया में युक्त हैं और सदैव सुमेरु की प्रदक्षिणा में रहते हैं ॥६॥ जो अमृत तुल्य मत्त्य है, पवित्र नीर्थ हैं, अपने हृंग के अकेले हैं, विष्व की स्थिति और अचिन्तनीय है ॥७॥ हे सूर्य देव ! तुम ब्रह्मा हो, तुम महादेव हो तुम विष्णु हो, तुम प्रजापति हो, तुम्हीं वायु आकाश, जल, पृथ्वी, पर्वत और समस्त समुद्र हो ॥८॥ हे देव ! तुम्हीं नवप्रह, नक्षत्र, चन्द्रमा, सूर्य और महौपवि हो, व्यक्त जीवों में तुम्हीं धर्म के प्रबोचक हो ॥९॥ हे देव ! तुम्हारे दर्शन मात्र से मैं ब्रह्म-हत्या में मुक्त हो गया और अब अपनी ज्ञान-चक्र से तुम्हारे प्रकाशमय दिव्यरूप का देख रहा हूँ ॥१०॥ बदली हुई सी प्रदीप्ति किरणों से लोगों को प्रकाशित करते हुए और ईश्वरीय विभूति को धारण करते तुम दिखाइ पड़ रहे हो ॥११॥ इस प्रकाश बन्दना किये जाने पर देवपि देव सूर्य ने मंतुष्ट होकर उन शंकर से कहा—ज्ञान ऐश्वर्यं मौह न इव र्जार अनश्वर कल्पनार्थ ॥१२॥ महात्मत्व, सूक्ष्मतत्व समस्त प्राणियों में निवास ये सबके सब तत्व मुझम और आप में बनावर हैं जो मैं हूँ वही आप भी हैं ॥१३॥

ब्रह्मा, शंकर और विष्णु की जो मूर्ति है वह एक ही पुरुष के रूप में पुनिवित्ति होकर जगत कल्याण करती है ॥१४॥ इस महाज्ञान को जान कर और मुझको अपना ही शरीर समझकर है देव ! आप अब पहीं रहे ब्रह्म हत्या से आप मुक्त हो गये हैं ॥१५॥ अविमुक्त होकर यहाँ पहुँचकर जो आप पाप में मुक्त हो गये हैं इसलिये यह क्षेत्र अविमुक्त क्षेत्र के नाम से पुकारा जायेगा ॥१६॥ इस क्षेत्र में एक कोस के इर्द गिर्द जो मनुष्य है उनमें जो हम दोनों को प्रणाम करेंगे वे निष्पाप हों जायेगे ॥१७॥ हमारे और आपके

१. अविमुक्त ( वाराणसी ) की महत्ता के लिए देखिए मत्स्य०  
पृ० १८३-१८४.

इस पवित्र वार्तालाप को पढ़ते और मुनते हुए व्यक्ति पाप से और महान् मकट से मुक्त हो जायेंगे ॥२१॥ उतकी आँख की पीड़ा, मन की पीड़ा, ग्रहों की पीड़ा एक ही जप करने से शान्त हो जायेगी और दुःस्वपनों का शमन होगा ॥२२॥ इस प्रकार श्री साम्ब-पुराण में महेश्वर-स्तोत्र<sup>१</sup> नामक पत्रहवाँ अध्याय समाप्त होता है ।

● ● ●

१. यहाँ पर सूर्य और शिव की एकात्मकता प्रकट की गई है ।  
दृष्टव्य श्रीवास्तव, विनोद चन्द्र, सन-वरशिष्ठ इन बालि-ए हाइपोथीसिस,  
पुराणम्, (जनवरी १९७५) भाग १७-१, पृ० ६७-६८.

## अध्याय १८

नारद बोले अब मैं तुम्हें आकाश के विद्यम में बनाऊँगा जहाँ और जैसे यह उत्पन्न हुआ, हिरण्यगर्भ के अष्टे में जो छोटा भागमें नाम वाला स्थान था ॥१॥ उसी में यह दिव्य आकाश उत्पन्न हुआ इसके पश्चात् विशाल स्वर्णस्त्र ऋतुमृत्र विशाल आकाश वाला ॥२॥ चार शुभ्रों वाला और देवताओं का आथवभूत वह सुनेत्र पर्वत उत्पन्न हुआ ॥ (दिवाकपी वासनपत्र) के समान पूर्वी उत्पन्न हुरी और उसका अवतारम् यह चार लीयों (अधिव वाला प्रेम पर्वत हुआ ॥३॥ उसी पर लीयों शुभ्रों के अवभाग की रथकर सूर्य ने रथ अभिमुख किया और समस्त देवताओं से लिया हुआ उस पर्वत की परिक्रमा करने लगा ॥४॥ उस में पर्वत पर यज्ञ करने वाले तैनीस देवता रहने हैं उनमें से यारह रुद्र समझना चाहिए और बारह आदित्य उसी प्रकार आठ शुभ्र हैं और दो अधिवनीकुपार्ष, बशुओं को ही पिता कहते हैं, रुद्रों को ही पितानह कहते हैं ॥५॥ और आदित्यों को प्रपितामह और अधिवनीकुपार्षों को ही सूर्य का जनीण कहते हैं । ऋतुओं, संवत्सरी और ऋतुओं के अनुकूल उत्पन्न होने वाले पितरों को पुनः मैं आगे बनाऊँगा ॥६॥ अब इसके उपरान्त हृत्य खाने वाले इन देवताओं के नाम मुक्तमें अलग अलग सुनों । अजएकपाद, अहिरवृद्धि, अष्टा, वीर्यवान् रुद्र ॥७॥

हर, सर्व, त्र्यम्बक, अपराजित, वृपाक्षिपि, शम्भु, कपर्दी, रैवत ॥८॥ और ईश्वर ये यारह रुद्र बताए हैं । आदित्यों के नाम दस प्रकार हैं, के विष्णु, वीर्यवान् शक ॥९॥ अर्यमान धाता, मित्र, वरुण विवस्वान् सविता, पूरा,

त्वष्टा, ॥११॥ अंशु, भग और अत्यन्त तेजस्की आदित्य ये बारह हैं ॥ धर, ध्रुव, सोम, आप, अनिल, अनल, ॥१२॥ प्रत्यूप और प्रभात ये आठ वसु बनाए गए हैं । नासत्य और दस्त्र ये दो अशिवनी देवता बताए गए हैं । अब विश्वदेवों को बना रहा है, नाय से उनको मुझसे समझ लो-करु, दक्ष, वसु, सत्य, काल, काम, धुरि, लोचन, आद्र'व और पुरुरव ये दस हैं ॥१४॥ ये देवगण मन्वन्तरों में वर्तमान हैं इसे सुन लो-याम्य, तुषित तथा वशवर्ती ॥१५॥ सत्य, भूत, रजस और तदन्तर साध्य पहले कहे हुए मन्वन्तरों में ही ये बारह बारह देवता होंगे ॥१६॥

पारावत तथा अन्य साध्य और तुषित सहित । साध्य देवों को अब मैं कहूँगा और नाम से उन्हें जान लो ॥१७॥ मनु, अनुमन्ता, प्राण, नर, नारायण, वृत्ति, तपोह्य, हंस, धर्म, ॥१८॥ वीर्यवान, विभू, प्रभु—ये वे रह साध्य<sup>१</sup> देवता कहे जाते हैं ॥ इस प्रकार यज्ञ खाने वाले देवगण निरन्तर यज्ञ में प्रतिष्ठित होते हैं ॥१९॥ अब अनीत और वर्तमान देवों की पुनः मुझल समझ लो । आदित्य, मरुत और रुद्र कश्यप की संताने बताई गई हैं ॥२०॥ विश्व में (आठों) वसु और (बारहों) साध्य देवता ये धर्म के पुत्र बताये गये हैं । इसी प्रकार धर्म का पुत्र सोम तीसरा वसु कहा जाता है ॥२१॥ पुराणों में धर्म को भी ब्रह्मा का पुत्र बताया गया है अब इसके बाद इन्द्रों और मनुओं की जानकारी नामतः मुझसे कर लो ॥२२॥ पहले स्वायम्भूव मनु हुए, इसके बाद स्वारोचिष और इसके बाद उत्तम का पुत्र, तामस, रेवत का पुत्र और चाक्षुष ॥२३॥ इस प्रकार ये छः मनु पहले व्यनीत हो चुके हैं, इस समय सातवें मनु का समय है जिनका कि नाम

१. दिव्य प्राणियों का एक विशेष वर्ग तुलना कीजिए मनुस्मृति, १.२२, ३.१५.

वैवस्वत्<sup>१</sup> है अभी और सात आगे होंगे ॥२४॥

इन सातों में से प्रथम होंगे सूर्यसावर्णि, इसके बाद अह्मसावर्णि, फिर भवसावर्णि और उसके बाद धर्मसावर्णि ॥२५॥ पाँचवे मनु इक्षसावर्णि होंगे। इस प्रकार यह पाँच मनुसावर्णि कहे गये हैं और सबसे अंत में रौत्य नथ भौत्य नाम वाले दो मनु और होंगे ॥२६॥ इन्द्र को विष्णु समझना चाहिए। उसके बाद विपश्चित, अद्भुत, और त्रिदिव इन्द्र कहे जाते हैं ॥२७॥ सुशान्ति, सुकीर्ति, कृतुधामा और दिवस्पति इस प्रकार भूत और भवित्व के क्रीदहृ इन्द्र हैं। कथयप, अक्षि, वशिष्ठ, भरद्वाज, गौतम, विश्वामित्र, जमदग्नि ये सात सप्तपि कहे गए हैं। अब इसके बाद महतों, अग्नियों पितृों और ग्रहों को बताऊँगा। प्रवह, आवह, उद्वह, मुवह ॥३०॥ विवाह, निवह, और परिवाह ये अग्नि भिन्न मार्गों से विचरण करते वाले अन्तर्क्षमामी भूत हैं ॥३१॥ ये सात पवत्ति इन्द्र द्वारा छिन्न, भिन्न अर्गों वलि बना दिये गए ऐसा सुना जाता है ॥३२॥

सूर्य की अग्नि शुचि नाम से, विद्युत की अग्नि, पात्रक के नाम से और मन्थन करने से उत्पन्न अग्नि परम नाम से इस प्रकार ये तीन अग्नि बनाई गई हैं ॥३३॥ अग्नियों के पुत्र-पौत्र चालीस बताए गए हैं और समस्त भूतों की संख्या उन्नचास बताई गई है ॥३४॥ इसी प्रकार संवत्सर भी अग्नि है और उस संवत्सर से कृतुओं के पुत्र आर्तव कहे जाते हैं जो

१. यही जीवधारी प्राणियों की वर्तमान जाति का प्रजापति समझा जाता है। जल-प्रलय के समय महस्योवतार के रूप में विष्णु ने इसी वैवस्वत मनु की रक्षा की थी। अयोध्या के सूर्यवंशी राजाओं का यही प्रवत्तक था। इसकी तिथि ३१०० ई० पू० तिश्वत की गई है। परम्परागत इतिहास के लिए देखिए दी वेदिक एज, १० २७५-३१३. नथा घोषाल, १० एन०, स्टडीज इन्डियन हिन्दू ए०ड कलक्ता, पृ० ३७-४८.

पाँच हैं यही सनातन सृष्टि है, १—संवत्सर २—परिवत्सर ३—इड्वत्सर ४—अनुवत्सर ॥३६॥ ५—वत्सर। इनमें संवत्सर अग्नि परिवत्सर सूर्य है ॥३७॥ इड्वत्सर सोम है, अनुवत्सर वायु है, वत्सर रुद्र है ॥३८॥ क्रतुओं के पुत्र जो आत्मव उत्पन्न हुए वही पितर हैं और सोम के पुत्र 'मास' पितामह हैं ॥३९॥ और क्रतुयों जो कि ब्रह्मा के पुत्र हैं प्रपितामह हैं ॥४०॥

आदित्य, सोम, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनैश्चर, ॥४१॥ राहु और धूम्रकेतु ये नव ग्रह हैं, ये सब वैलोक्य के भाव और अभाव को निरन्तर लिखेदित करते हैं ॥४२॥ सूर्य और चन्द्रमा ये दोनों मण्डल ग्रह कहे गए हैं, राहु को छायाग्रह और श्लेष को ताराग्रह कहा जाता है ॥४३॥ चन्द्रमा नक्षत्रों का अधिपति है और सूर्य ग्रहों का राजा है अथवा अग्नि को ही आदित्य और भव को चन्द्रमा कहा गया है, आदित्य को ग्रहों का ब्रह्मा, चन्द्रमा को विष्णु और मंगल को रुद्र कहा गया है ॥४४॥ सूर्य कश्यप के पुत्र है और सोम धर्म के। देवताओं और अभुरों के दोनों गुरु दो महान् ग्रह हैं ॥४५॥ शुक्र और वृहस्पति—ये दोनों ही ब्रह्मा के पुत्र हैं, बुध चन्द्रमा का पत्र है और शनैश्चर सूर्य का ॥४६॥ मिहिका के पुत्र को ही राहु कहा गया है और ब्रह्मा का पुत्र केतु है, इन समस्त ग्रहों के नीचे सूर्य संचरण करता है ॥४७॥

सूर्य के ऊपर सोम है, सोम के ऊपर नक्षत्र-मण्डल है, नक्षत्रों से ऊपर बुध है और बुध के ऊपर शुक्र है ॥४८॥ शुक्र के ऊपर मंगल है और मंगल के ऊपर वृहस्पति, वृहस्पति से ऊपर शनैश्चर और उसके भी ऊपर सप्तर्षि मण्डल ॥४९॥ सप्तर्षियों के भी ऊपर विद्वानों ने ध्रुव नक्षत्र का स्थान बताया है। कभी कभी आदित्य के स्थान में सोममार्गगामी राहु पहुँचता है ॥५१॥ और सूर्य-मण्डल में विद्यमान केतु निरन्तर आगे बढ़ता है, सूर्य का विस्तार ६००० योजन है ॥५२॥ इस विस्तार का तिगुना उसके मण्डल का घेरा है। सूर्य के विस्तार में दुगना विस्तार चन्द्रमा<sup>१</sup> का है और उसका भी

१. ज्योतिप सम्बन्धी अज्ञान का यह प्रमाण प्रस्तुत करता है।

तिशुना अधिक विस्तार चन्द्रमा के मण्डल का है। चन्द्रमा के विस्तार का सोलहवां भाग शुक्र का विस्तार है और शुक्र के विस्तार से एक चौथाई कम वृहस्पति का विस्तार है, वृहस्पति के विस्तार से एक चौथाई कम मंगल और बुध का विस्तार बताया गया है ॥५५॥ इन दोनों के भी विस्तार-मण्डल से एक चौथाई कम बुध है और बुध के ही समान अन्य छोट नक्षत्र है ॥५६॥

ये आधे योजन विस्तार के हैं, इनसे छोटा और कोई नहीं है। कभी कभी राहु भी सूर्य के बराबर हो जाता है और इसी प्रकार केतु का भी प्रमाण नियन्त्रित नहीं है ॥५७॥ भूलोक, भूवलोक, स्वलोक, महलोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक ये सात लोक प्रसिद्ध हैं ॥५८॥ पृथ्वी की ही पाञ्चिंव लोक कहते हैं और अन्तरिक्ष को ही भूवलोक कहा गया है, स्वर्ग की ही स्वलोक कहते हैं इसी प्रकार से अन्य क्रमशः उनके ऊपर हैं। यीवों का अधिपति अग्नि है इसीलिए उसे भूतपति कहते हैं। आकाश का स्वामी होने के कारण वायु को नभस्पति कहते हैं। अन्तरिक्ष का अधिपति होने के कारण सूर्य को दिवस्पति कहते हैं। गत्वर्द, अप्सराएँ, गृह्यक और राक्षस ये भूलोकवासी हैं, अब अन्तरिक्षवारों को सुनो ॥६१॥ ४८ मरुत, ११ रुद्र, २ अश्विनीकुमार, १२ आदित्य और आठ वसु ये सब अन्तरिक्षवासी हैं ॥६२॥ चौथे महलोक में कल्प भर निवास करने वाले जीव रहते हैं और पांचवा जनलोक समस्त प्रजापतियों द्वारा सेवित होता है ॥६३॥ मनु और सनत्कुमारादि तपोलोक में हैं और उन्हां सत्यलोक हैं जो इनसे ऊपर है ॥६४॥

प्रतिष्ठात लक्षण से विहीन ब्रह्मलोक है और महोनल से लाखों योजन ऊपर सूर्य है ॥६५॥ भूमि से १० करोड़ योजन ध्रुव बताया गया है ॥६६॥ त्रैलोक्य का विस्तार २३ लाख योजन बताया गया है ॥६७॥ ईव, दानव, गत्वर्द, यक्ष, राक्षस, सर्प, भूत, विद्याधर ये आठ देवयोनियाँ हैं ॥६८॥ इसी व्योम में ये सात तो संप्रतिष्ठित हैं, मरुत के पितर संवत्सर है जिसमें कि अग्नि-

ग्रह हैं ॥६६॥ अभी जो आठ देवयोनियाँ मैने बताई हैं जो सूर्त् या अमूर्त् हैं वे सब आकाश में ही अवस्थित हैं ॥७०॥ इस प्रकार आकाश को सर्वदेवमय बताया गया है, सर्वभूतमय बताया गया है और सर्वश्रुतिमय बताया गया है, इसलिये जो आकाश की अर्चना करता है वह समस्त देवताओं की अर्चना कर लेता है । अतः कल्याण चाहने वाले व्यक्ति को सारे प्रयत्नों से आकाश की पूजा करनी चाहिए । इस प्रकार श्री साम्बपुराण में देवताख्यापन नामक १८वाँ अध्याय<sup>१</sup> समाप्त होता है ।

१. तुलना कीजिये भविष्य-पुराण, १.१२५. । इस अध्याय का रचना काल ५००-६०० ई० के मध्य निश्चित किया गया है देलिए हाजरा, आर० सी०, दो साम्ब-पुराण श्रू दी एजेस, जर्नल आफ ऐशियाटिक सोसाइटी, लेटर्स, भाग १८ (२), पृ० ८१ आदि ।

## अध्याय १६

नारद बोले—आकाश, रव, विष्ट् व्योम, अन्तरिक्ष, नभ, अम्बर, पुष्कर और गगन ये आकाश के नाम हैं ॥१॥ पृथ्वी के मध्य में मेर<sup>१</sup> पर्वत है उसके चारों ओर पृथ्वी है। अब मैं पृथ्वी के द्वीप-विभाजनों को बताऊँगा ॥२॥ जम्बू, शाक, कुश, कौच, गोमेदक, शालमली, पुष्कर ये क्रमशः सात द्वीप हैं ॥३॥ लवण, खीर, दधि, जल, धूत, इक्षु, रसोदक और स्वादूदक ये सात समुद्र बताए गए हैं। हिमवान्, हेमकृट, निपध, नील, श्वेत और गुणवान् ये छ. पर्वत<sup>२</sup> हैं ॥४॥ मानस सातवाँ पर्वत है जहाँ पर कि आठ नगरियाँ स्थित हैं—इन्द्रपुरी, अग्निपुरी, यमपुरी, नैऋत्यपुरी, ॥५॥ वरुण, वायु, सौम और शंकर की पुरी। इनके पश्चात् लोकालोक पर्वत हैं ॥६॥ उस पर्वत के भी ऊपर अण्डकपाल और उससे भी ऊपर तमस है। उसके ऊपर अग्नि, वायु और आकाश और तब भूत इत्यादि हैं ॥७॥

उससे भी महान् प्रधान प्रकृति है, प्रकृति से महान् युरुप और पुरुष से महान् ईश्वर, ईश्वर से सम्पूर्ण संसार आवृत है ॥८॥ अभी मैंने ऊपर नीचे

१. उपाख्यानों में वर्णित एक पर्वत का नाम। पौराणिक विवरण के अनुसार समस्तग्रह इसके चारों ओर धूमते हैं और वह स्वर्णों एवं रत्नों से परिपूर्ण है।

२. वह पर्वत-शृंखला जो सृष्टि के भिन्न-भिन्न प्रभागों को एक दूसरे से पृथक् करती है।

और बीच में जिन लोगों की चर्चा की एक बार पुनः उन्हें वत्ताऊँगा-भूलोक भुवलोक, स्वलोक, महलोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक-ये सातलोक कहे गये हैं ॥११॥ इसके पश्चात् अण्डकपाल और उससे भी आगे अन्वकार है, उससे भी ऊपर अग्नि, वायु और आकाश है और तब पञ्चमहाभूत कह जाते हैं ॥१२॥ महाभूतों से महान् प्रधान प्रकृति है, उससे महान् पुरुष है और पुरुष से महान् ईश्वर है जिससे यह संसार आवृत्त है। भूमि के नीचे भी जो सात लोक हैं उन्हें भी नाम से सुन लो—तल, सुतल, पातल, तमस्तल, सुशाल, विशाल और सातवाँ रसातल ॥१४॥ इसके बाद अण्डकपाल है और उसके बाद अग्नि, वायु, आकाश हैं। तब भूतादि हैं ॥१५॥ भूतों से महान् प्रधान प्रकृति है, प्रकृति से महान् पुरुष और पुरुष से महान् ईश्वर और ईश्वर से यह संसार व्याप्त है ॥१६॥

इस प्रकार मेरे के चारों ओर यह सब बताया गया। शुद्ध कंचन का चार शिखरों वाला वह सुमेरु गिरि उत्पन्न हुआ है ॥१७॥ सिद्धों और गन्धर्वों से सेवित चार सुनहरे शिखरों से युक्त वह पृथ्वी के बीचों बीच विद्यमान है ॥१८॥ वह चौरासी हजार योजन ऊँचा है। सोलह हजार योजन पृथ्वी में धंसा हुआ है, अट्ठाइस हजार योजन विस्तृत है ॥१९॥ इसका घेरा चारों ओर विस्तार का तिगुना है। सौमनस नाम वाला इसका एक शिखर सौने का है। इसका दूसरा शिखर पञ्चराग से बना हुआ ज्योतिष्क नाम वाला है और तीसरा पदिश शिखर समस्त धातुओं से युक्त चित्र नाम वाला है ॥२१॥ इसका चौथा श्वेत चाँदी से युक्त शिखर चान्द्रमास कहा गया है, इस पर्वत का जो सौमनस नाम वाला शिखर है वह जाम्बूनद भी कहा जाता है ॥२२॥ यही वह शिखर है जहाँ पर उदित होता हुआ रवि दिखाई पड़ता है। सूर्य जम्बूद्वीप में उत्तर की ओर से परिक्रमा करके ॥२३॥ उस शिखर पर आश्रित होकर समस्त जीवों को दिखाई पड़ता है। उस पर्वत के सुनहरे शिखर के सूर्य से ढक जाने पर ॥२४॥

दोनों संध्याएँ कुछ कुछ लाल होकर पूर्व-पश्चिम में दिखाई पड़ती हैं। सौमनस शिखर पर सूर्य के उगने पर उत्तरायण ॥२५॥ और ज्योतिष्क शिखर पर पहुँचने पर दक्षिणायन होता है ॥२६॥ उस पर्वत के ईशान शिखर पर शंकर और पूर्व-दक्षिण शिखर पर अरिन, नैऋत्य पर पितर, बायव्य शिखर पर मेरु और मध्य शिखर पर साक्षात् नारायण अदित्य रूप में प्रतिष्ठित हैं<sup>१</sup> ॥२७॥ इस प्रकार श्री साम्बपुराण में व्योमोत्पत्ति नामक उन्नीसवाँ अध्याय<sup>२</sup> समाप्त होता है।

१. पुराणों में भौगोलिक विवरण के लिये देखिए त्रिपाठी, मायाप्रसाद डेव्हलपमेंट आफ जियागरफिक नालेज इन ऐन्सियन्ट इण्डिया

२. तुलना कीजिए अधिल्य-पुराण, १. १२६। इस अध्याय की लिखि ५००-८०० ई० के मध्य मानी जाती है देखिए हाजरा, वही।

## अध्याय २०

नारद बोले—अब इस स्वर्णमय सुमेरु पर्वत के चारों ओर विद्यमान चारों लोकपालों की नगरियों का वर्णन नाम से मुन लो ॥१॥ सुमेरु की पूर्व दिशा में इन्द्र की अमरावती पुरी है और दक्षिण दिशा में यमराज की यमनी-पुरी ॥२॥ पश्चिम दिशा में वरुण देवता की सुखापुरी और उत्तर में सोम देवता की विभापुरी ॥३॥ मध्याह्न, मध्य रात्रि, उदय और अस्त बेला में यह सूर्य चारों दिशाओं में तपता है ॥४॥ जब यह सूर्य अमरावती पुरी के मध्यगामी होता है तो वैवस्वत और संयमन में यह उदित होता हुआ दिखाई पड़ता है<sup>१</sup> ॥५॥ सुखापुरी में अर्धरात्रि होती है और विभापुरी में अस्तगमन । जब यह सूर्य वैवस्वत और संयमन स्थानों का मध्यगामी होता है ॥६॥ तब यह सुखापुरी और वरुणपुरी में उदित होता हुआ दिखाई पड़ता है ॥ तब विभापुरी में अर्धरात्रि और अमरावतीपुरी में अस्तंगमन होता है ॥७॥ जब सूर्य सुखापुरी और वरुणपुरी में मध्याह्न बेला में रहता है तब उसका उदय विभापुरी और सोमपुरी में होता है ॥८॥

तब इसकी अर्धरात्रि अमरावती पुरी में और अस्तंगमन यमपुरी में होता है ॥ जब सूर्य मध्याह्न बेला में सोमपुरी विभा में रहता है ॥९॥ तब उसका उदय इन्द्र की अमरावती पुरी में होता है ॥ आधी रात यमपुरी में होती है और अस्तंगमन वरुणपुरी में ॥१०॥ इस प्रकार भेरु पर्वत के चारों

१. तुलना कीजिये भविष्य-पुराण १.५३ ।

भागों में परिक्रमा करता हुआ उदय और अस्त्र प्रक्रिया में सूर्य बारम्बार उठता है ॥११॥ पूर्वान्ह और अपरान्ह में दो दो देवपुरियों में अपनी उन्हीं किरणों से सूर्य तपता है ॥१२॥ सूर्य मध्यान्ह वेला तक निरन्तर बढ़ती हुई किरणों से उदित होता है और इसके बाद निरन्तर हास को प्रात् होती हुई किरणों से अस्त होता है ॥१३॥ जहाँ यह उदित होता हुआ दिखाई पड़ता है वही इसका उदय कहा जाता है और जहाँ यह अदृश हो जाता है वही उन किरणों का अस्त कहा जाता है ॥१४॥ सूर्य के बहुत दूर होने के कारण इसकी रश्मियाँ विलीन हो जाती हैं अस्तु यह रात्रि को नहीं दिखाई पड़ता ॥१५॥ देव स्थिति में विद्यमान सूर्य जहाँ जहाँ दिखाई पड़ता है वह स्थान एक लाख योजनों से भी ऊपर का है ॥१६॥

इसी प्रकार जब सूर्य पुक्कर द्वीप के मध्य में होता है तब एक मुहूर्त में उसका तीसवाँ भाग पृथ्वी पर आ जाता है ॥१७॥ एक ही निमेष के भीतर सूर्य अन्तरिक्ष में पूरे एक लाख और एक सौ इकतीस योजन आगे बढ़ता है ॥१८॥ सूर्य की एक मुहूर्त की गति एक हजार पचास योजन बताई गई है ॥१९॥ एक निमेष के भीतर सूर्य अन्तरिक्ष में पूरे दो हजार दो सौ योजन आगे बढ़ता है ॥२०॥ बबण्डर की भाँति चबकर काढता हुआ नक्षत्रों में यह विहार करता है ॥२१॥ उदित होते हुए सूर्य को इन्द्र प्रतिदिन समर्पित करता है ॥ मध्यान्ह में यमराज और अस्त वेला में वरुण देवता पूजा करते हैं ॥२२॥ आधी रात में कुवेर और सोम तथा प्रातः वेला में ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र इसकी पूजा करते हैं ॥२३॥ इसी प्रकार पर्यटन करते हुए सूर्य को कमशः अग्नि, लिङ्गति<sup>१</sup> वायु और ईशान देवता समर्पित करते हैं ॥२४॥

इस प्रकार श्री साम्ब-पुराण में बीसवाँ अध्याय समाप्त होता है।

१. दक्षिण-पश्चिम कोण की अधिष्ठात्री देवी, दृष्टव्य मनुस्मृति, ११.११८.

## अद्याय २९

नारद बोले—अब सूर्य के रथ की बनावट<sup>१</sup> मुझसे समझो जो कि एक चक्र, पाँच तीलियों और तीन घुरों से चलता है ॥१॥ सुवर्णमय देदीप्यमान अष्ट चर्म से युक्त नेमि वाले चमकदार चक्र से आकाश में आगे बढ़ता है ॥२॥ इस रथ का विस्तार नौ हजार योजन वताया गया है ॥ और प्रमाण में इस रथ के तरुते से इसका ईषान्दण्ड दूना बनाया गया है ॥३॥ इसी रथ की विस्तीर्ण घुरा पर अरुण नाम वाला सारथी रहता है । इस प्रकार का सूर्य का रथ ब्रह्मा द्वारा संवत्सरात्मक बनाया गया है ॥४॥ यह रथ सुदृढ़, स्वर्ण निर्मित, दिव्य अवश्यधारी छन्दों तथा शीघ्रगामी अश्वों से युक्त है<sup>२</sup> ॥५॥ इस प्रकार के देदीप्यमान रथ के द्वारा दिनपथ सूर्य आगे बढ़ता है ॥६॥ संवत्सर के अवयवों को लेकर सूर्य के इस रथ के समस्त अंग क्रमशः कल्पित किये गए हैं ॥७॥ उदाहरणार्थ इस चक्र की तीन नाभियाँ हैं जो कि भूत, भविष्य और वर्तमान तीन काल हैं । इसकी तीलियाँ पाँच ऋतुएँ हैं और नेमियाँ छः ऋतुएँ हैं ॥८॥

उत्तराधरण और दक्षिणाधरण यही दोनों उस रथ की दो ऊर्ध्वि हैं और मुहूर्त उस रथ की बन्धुरा है ॥ और कला सव्या कही गई है ॥९॥ काठा की ही रथ का धोणा कहा गया है और धोण को ही अक्षदण्ड बनाया गया है ॥ निमेष रथ की अनुकक्षा है और लब ईपा है ॥१०॥ रथ के ऊपर कहराते

१. सूर्य-रथ का विवरण पुराणों का प्रिय विषय है दृष्टव्य विष्णु-पुराण, २०.८ ।

२. तुलना कीजिये भविष्य पृ०, १.५२ ।

बाली पताका धर्म है तथा जर्थ और नाम उसके दो अक्ष बताये गये हैं ॥११॥ अश्व का रूप धारण किये हुए छत्वं ही क्रमशः धुरा का बहन करते हैं। यह छत्वं हैं गायत्री, श्रिष्टुभ, जगती, अनुष्टुप् ॥१२॥ पंकित, चहती और सातवां उठिगाका। रथ का चक्रका अक्ष में निवद्ध है ॥ और अक्ष ध्रुव से संयुक्त है ॥१३॥ चक्र के साथ अक्ष धूमता है, अक्ष के साथ ध्रुव धूमता है ॥ और ध्रुव से प्रेरित होकर चक्र के साथ ही साथ पूरा अक्ष धूमता है ॥१४॥ इस प्रकार प्रसंगतः सूर्य के रथ का वर्णन किया गया । इसी प्रकार यह सुदृढ़ रथ आकाश में पर्यटन करता है ॥१५॥ जब विजयशील वह सूर्य द्युलोक से आकाश मण्डल में पर्यटन करने लगता है तो उसके रथ की सुदृढ़ रूप से बंधे हुए ॥१६॥

वे दोनों चक्र तेजी से चक्रकर काटते हैं । इस प्रकार आकाशचारी उस रथ के घेरे धूमते समय ऐसे लगते हैं ॥ १७॥ जैसे कुम्हार का चक्रका धूम रहा हो उसी प्रकार रस्सियों से जकड़े हुए वे दोनों अटल चक्रके भी मण्डलाकार चारों ओर अस्त्रण करते हैं और उत्तराध्यण होने पर वृद्धि की ॥१८॥ इसी प्रकार सूर्य के मण्डल बाहर की ओर भी आठ हजार बार एक एक काष्ठा के बीच मे धूमते हैं ॥२०॥ संचरण करता हुआ सूर्य का वह रथ देवो, आदित्यों, कृपियों, गन्धनों, अप्सराओं, सर्पों और राक्षसों द्वारा अधिष्ठित होता है<sup>१</sup> ॥२१॥ क्रमशः दो दो महीने, सूर्य के रथ पर अधिष्ठित होते हैं । धाता, अर्यमा, पुलस्य पुल, प्रजापति ॥२२॥ सर्प, वासुकि, तुम्बर, नारद और गायकों में श्रेष्ठ दो गन्धर्व ॥२३॥ कृतस्थली पुनिजकस्थला, ये दो अप्सराएँ, रथ गृहसन और रक्षीजा ये दोनों ग्रामणी ॥२४॥

और रक्षोहेति, प्रहेति नाम वाले दो राक्षस तथा मधु माधव के समूह भी सूर्य के साथ रहते हैं ॥२५॥ इसी प्रकार वसन्त और ग्रीष्म मास मित्र

१. द्वादश सूर्यों के नाम और अधिकारियों का वर्णन विष्णु-पुराण २२० में भी किया गया है ।

और बरुण देवता, अत्रि और वशिष्ठ कृषि, तक्षक और अनन्त नाग ॥२६॥  
सेनका और सहजन्या अप्सराएँ, हा हा और हु हू गन्धर्व, रथस्वन् और  
थचिन्न नामक ग्रामणी ॥२७॥ पौरुषेय और वध नामक राक्षस, शुचि  
और शुक्र ये दो मास सूर्य के साथ निवास करते हैं ॥२८॥ अब इसके बाद  
तौर भी अन्य देवता सूर्य के रथ पर रहते हैं। इन्द्र और विवस्वान देवता  
गिरा और भूगु महिषि ॥२९॥ एलापत्र और शंखपाल, सर्प, विश्वावसु  
और उग्रसेन, गन्धर्व, प्रमलाचन्ती और अनुम्लाचन्ती अप्सराएँ, सर्प और  
याघ नामक राक्षस ॥३१॥ ये सब सूर्य के साथ रहते हैं। इसी प्रकार  
ग्रहकृतु में अन्य देवता सूर्य के साथ निवास करते हैं ॥३२॥

पर्जन्य और पूषा देवता, भारद्वाज और गौतम कृषि, चित्रसेन और  
वसूरुचि गन्धर्व ॥३३॥ विश्वाची और धृताची अप्सराएँ, ऐरावत और  
धनञ्जय नाग ॥३४॥ सेनजित और सुषेण नामक ग्रामणी, आप और बात  
ये दो राक्षस-ये सब सूर्य के साथ वसन्त कृतु में साथ रहते हैं। हेमन्त कृतु  
के दो मास में ॥३५॥ अंशु और भाग नामक देवता कश्यप और कृतु नामक  
कृषि, महापद्मा और कर्कोटक नामक सर्प ॥३६॥ चित्रांगद और अण्यु  
नामक गन्धर्व, पूर्वचित्ति तथा उर्वशी नामक अप्सराएँ ॥३७॥ तार्क्य और  
रिष्टनेमि नामक ग्रामणी, अदस्फूर्ज और विद्युत नामक राक्षस ये सब  
दो महीने दिवाकर के साथ रहते हैं ॥३८॥ इसी प्रकार शिशिर कृतु के दो  
महीनों में ॥४०॥

त्वष्टा और विष्णु नामक देवता, जगदग्नि और विश्वामित्र कृषि,  
कम्बल और अश्वतर नामक दो कद्रु पुत्र नाग ॥४१॥ धृतराष्ट्र और  
सूर्यवच्ची ये दोनों गन्धर्व, ये सब दो मास तक सूर्य के साथ रहते हैं ॥४२॥  
इसी प्रकार तिलोत्तमा और रम्भा ये दो सुन्दरी अप्सराएँ ॥४३॥ कृतुजित्  
और सप्तजित् ये दोनों महायशस्वी ग्रामणी, ब्रह्मप्रेत और यक्षप्रेत ये  
दोनों राक्षस ॥४४॥ उत्तम तेज वाले सूर्य का अनुगमन करते हैं ॥ कृषिगण

अपनी सुप्रसिद्ध वाणी से सूर्य की स्तुति करते हैं ॥४५॥ अन्धवै और अप्सराएँ शीत और नृत्य से सूर्य की उपासना करते हैं और विद्युत, ग्रामणी तथा यक्षगण प्रक्षिणा करते हैं ॥४६॥ सर्व सूर्य का वहन करते हैं और रात्रि अनुगमन । बालखिल्य उदयकाल से ही सूर्य को घेरकर जस्ताचल की ओर ले जाते हैं ॥४७॥ इन देवताओं का जैसे वीर्य है, जैसा तप है, जैसा योग है, जैसा सत्य है, जैसा बल है ॥४८॥

उनकी तेजस्विता का केन्द्र विन्दु सूर्य उसी प्रकार तपता है । इस प्रकार सूर्य के बन से ये भी तपते हैं, वर्षा करते हैं, भ्रमण करते हैं, प्रकाश करते हैं, सृष्टि करते हैं ॥४९॥ जीवों के अशुभ कर्म को नष्ट करते हैं और सूर्य के साथ पर्यटन करते हैं ॥५०॥ ये तपते हुए और प्रजाओं की आळादित करते हुए समस्त जीवों को कृपापूर्वक रक्षा करते हैं ॥५१॥ अपने स्थानाभिमानी इन देवताओं के स्थान अतीत, वर्तमान और भविष्य के मन्त्रवन्तरी में हैं ॥५२॥ इस प्रकार सूर्य श्रीष्म, शीत, और वर्षा क्रतु में धाम, शीतलता और वर्षा सात दिन करता हुआ क्रतुओं के प्रभाव वश किरणों को निवातित करके पितरों और मनुष्यों को सन्तुष्ट करता हुआ चलता रहता है ॥५३॥ देवों को अमृत से प्रसन्न करता है और चन्द्रमा को तेज से प्रशुद्ध करता है । शुक्लपक्ष में दिन के कम से चन्द्रमा बढ़ता है और कृष्ण-पक्ष में देवगण उसका बान करते हैं ॥५४॥ इस प्रकार कृष्ण-पक्ष में अमृत पिये गए चन्द्रमा को कलामात्र अवसिष्ट रह जाने पर किरणों से निमलित होके हुए स्वधामृन को पिन्तृगण, सर्प, सौम्य, और काव्य पीते हैं ॥५५॥ सूर्य के द्वारा अपनी किरणों से सोखे गए जलों द्वारा और पुनः जलों को छोड़ने से उत्पन्न वृद्धि द्वारा बढ़ी हुई औषधियों से मनुष्य गण अन्नरस के आश्रय से असृत प्राप्त करते हैं ॥५६॥

अमृत से देवताओं की अधे माह तक लृप्ति होती है और स्वधा से पितरों की मात्र भर और इसी प्रकार अन्न से मनुष्यों की शाश्वत तृप्ति

होती है। सूर्य अपनी किरणों द्वारा सर्वत्र पहुँचता है ॥५७॥ इस प्रकार यह सविता हरे रंग वाले अपने अश्वों से और जल सोखने वाली अपनी हरित रश्मियों से सृष्टि वेला में चराचर का निर्णय करता हुआ पोषण करता है ॥५८॥ एक चक्रके बालं रथं से रात दिन ऋषण करता हुआ सूर्य सात द्वियों और सात मुमुद्रों से युक्त पृथ्वी को किरणों से पार करता है ॥५९॥ वेलके में जुते हुए अऽवरुपधारी छन्दों द्वारा कि जो कामरूप हैं, एक ही बार जुते हुए हैं, मन की तरह देगनामी हैं ॥६०॥ हरे तथा जो पिङ्गल वर्ण के (इवतारों) इश्वर तथा ऋग्वादी हैं, उनके द्वारा आधे दिन में आठ हजार तीन सौ मण्डल आगे दढ़ता है ॥६१॥ इस प्रकार दिन के कम से ये अश्व सूर्यमण्डल का वहन करते हैं कल्प के प्रारम्भ में जुते हुए महाप्रलय वेला तक जुते रहते हैं ॥६२॥ रात दिन बालखिल्दों से आवृत और महर्षियों के मंस्तवनों से ग्रथित ॥६३॥ यह सूर्य गन्धर्वों और अप्सराओं द्वारा गौतों और नूत्यों से लभा पक्षी एवं अश्वों से सेवित होता ॥६४॥

और इस प्रकार चन्द्रमा नक्षत्रों से अनुगत होकर वीथी के सहारे चलता रहता है। इस प्रकार धी साम्बपुराण में आदित्यरथवणेन नामक इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त होता है।

१. सूर्य के सप्ताश्वों और रश्मियों का समीकरण वैदिक साहित्य में किया गया है; दृष्टव्य ऋग्वेद, १.५०.१.८,९; १.११५.३,४; १०.३७.३; ५.४५.९ ७.६०.३; ४.१३.३; ५.२९.५; ७.६३.२.

## अध्याय २२

साम्ब ने कहा—हे देवर्षि ! सूर्य और चन्द्र के समागम से युक्त सूर्य लोक को आपने देखा है । यह बताएँ कि चन्द्रमा कैसे क्षीण होता है और क्षीण होकर बढ़ता कैसे है ॥१॥ हे सुव्रत ! कृष्ण-पक्ष में अमृतपानकर्ता देवता एवं पितर जिस प्रकार सोम पीते हैं वह मुझे बताएँ ॥२॥ नारद बोले—हे साम्ब ! दो प्रकार की पूर्णिमा बताई गई है—राका और अनुमति । इसी प्रकार अमावस्या दो प्रकार की बताई गई है सिनीवाली और कुद्र ॥३॥ सूर्य का नाम अमा है जो कि उस चन्द्रलोक में प्रतिष्ठित है चूंकि उसमें चन्द्र रहता है इसलिये उसे अमावस्या कहा गया है ॥४॥ पूर्णिमा के दिन पहले उद्दित हुए चन्द्रमा के कलाहीन होने पर पूर्णिमा को अनुमति समझना चाहिए चूंकि सूर्य उसके पीछे चलता है ॥५॥ इसलिए देवताओं सहित पितरगण उसे पीछे मानते हैं और इसीलिए पूर्णिमा पहले अनुमति कही जाती है ॥६॥ एक ही समय जब सूर्य अस्त होता है और पूर्ण चन्द्र का उदय होता है तो उसी को राका कहते हैं ॥७॥ पितरों सहित देवगण उसी पूर्णिमा को राका कहते हैं, कवियों ने सूर्य का रक्षण होने के कारण इसे राका कहा है ॥८॥

सिनीवाली का प्रमाण ( आकार ) यह है कि चन्द्रमा पूर्णतया क्षीण हो जाता है और सूर्य अमावस्या में प्रवेश कर जाता है । इसीलिए उसे सिनी-वाली कहा गया है ॥६॥ कोयल की बोली को ‘कुह’ कहा जाता है । जितनी

---

१. अध्याय २२ का रचना-काल ६५० ई० के उपरान्त स्वीकार किया गया है देखिए हाजरा, वही ।

देर में यह बोली समाप्त होती है उतनी ही अवधि के बराबर अमावस्या कुह कही जाती है ॥१०॥ राका सहित अनुमति में और कुह के बिना सिनी-वाली में इनके आगे का जो समय है कोयल की बोली के बराबर वही कुह है ॥११॥ शुक्ल-पक्ष में चन्द्रमा की सोलह कलाओं को सूर्य बढ़ाता है । इसीलिए कृष्ण-पक्ष में देवताओं द्वारा अमृत क्रमणः पिया जाता है ॥ १२ ॥ कृष्ण-पक्ष की प्रथम कला को अग्नि पीती है, दूसरी कला के अमृत को सूर्य, तीसरी को विश्वदेव, चौथी को प्रजापति, ॥१३॥ पाँचवीं को वरुण, छठी को इन्द्र, सातवीं को कृष्णिगण, अँठवीं को आठों दिव्य वसु, ॥१४॥ नवीं को यमराज, दसवीं को मरुत, ग्यारहवीं को रुद्र ॥१५॥ बारहवीं को विष्णु तेरहवीं को कुबेर, चौदहवीं को पशुपति ॥१६॥

पन्द्रहवीं कला को पितृगण पीते हैं । और पूर्णतः पी चुकने के बाद कला ने अवशिष्ट चन्द्रमा सूर्यमण्डल अर्थात् अमा में प्रवेश कर जाता है इसीलिए सोलहवीं कला अमावस्या<sup>१</sup> कही जाती है ॥१७॥ चन्द्रमा पूर्वान्ह में सूर्य में मध्यान्ह काल में वनस्पति में और अपरान्ह काल में जलराशि में जो कि उसका उत्पत्ति स्थान है, प्रवेश करता है ॥१८॥ चन्द्रमा के वनस्पतियों में विलीन हो जाते पर अर्थात् मध्यान्ह में जो पेड़ पौधे काटता है अथवा तोड़ता है वह ब्रह्महत्या से युक्त होता है ॥१९॥ वची हुयी अपनी एक कला से युक्त चन्द्रमा जलराशि में प्रवेश करके तृणों, कुंजों, लताओं, वृक्षों और औषधियों को उत्पन्न करता है ॥२०॥ इस प्रकार औषधियों में विलीन उस चन्द्रमा को जब गाएँ चरती हैं और उसके अंगों से अनुगत जल को पीती हैं तो उसी से द्रव्य का निर्माण होता है ॥२१॥ वही द्रव्य अमृत बनकर और ब्राह्मणों द्वारा मंत्रों से पवित्र किया जाकर तथा स्वाहा और वषट्कार आहुतियों के क्रम से ॥२२॥ हविष्य रूप में देवताओं के लिए अग्नि में दिया जाकर पुनः चन्द्रमा को बढ़ाता है इस प्रकार चन्द्रमा क्षीण होता है और

१. “सूर्यचन्द्रमसोः यः परः संनिकर्षः साऽमावस्या” गेभिल-गृहसूत्र

श्रीण होकर पुनः आगे बढ़ता है ॥२३॥ इस प्रकार सूर्य अपनी किरणों के द्वारा चन्द्रमा की वृद्धि करता है। इसीलिए यह महातेजस्विन सूर्य परमात्मा देवताओं द्वारा पूजित होता है ॥२४॥

हे साम्ब ! तुम भी मित्रवन में जाकर भास्कर की आराधना करो। देखो पापी व्यक्ति को सूर्य में भक्ति नहीं होती, इसीलिए तुम अत्यधिक भक्तिपूर्वक सूर्य की शरण<sup>१</sup> में जाओ ॥२५॥ इस प्रकार साम्ब-पुराण का सोमवृद्धिक्षय नामक बाइसवाँ अध्याय समाप्त होता है।

१. ईश्वर के प्रति आत्मसमर्पण भक्तिवाद का मूल-मन्त्र है। दृष्टव्य नारद-भक्ति-सूक्त, १.१६, मैकनिकल, एन०. इण्डियन थीइंजिन, पृ० ३०-४२.

## अध्याय २३

साम्ब ने कहा— हे विश्र ! हे ऋषि-श्रेष्ठ ! सूर्यलोक मे जाकर आपने बहुतेरे विचित्र आश्वर्य देखे हैं ॥१॥ जो कि मनुष्यों द्वारा विस्मय की उत्पत्ति करने वाले एवं दुविज्ञेय हैं इसलिए चिरकाल से ही मेरे हृदय में विद्वमान इस सदैह को ॥२॥ अदि आप मुनाने लायक मानते हैं तो मुझसे कहें क्योंकि सूर्य का ग्रहण देखकर मेरा मन व्याकुल हो उठा था ॥३॥ राहु तो अंधकारराशि है और सूर्य तेजीराशि तो किर है मुनि ! वह सूर्य राहु द्वारा कैसे ग्रसा जाता है ॥४॥ जिसके सम्पूर्ण तेज से जगत प्रकाशित होता है उसके विषय में जो वास्तविक तथ्य है वह आप बताने की कृपा करें ॥५॥ नारद बोले—हे साम्ब ! जो अविज्ञेय है, जो अदृश है, महात्माओं के लिए जो ज्ञान भाव से ज्ञानने योग्य है, ऐसे सूर्य के ग्रहण संयोग को कहा जाता हुआ मुझसे सुनो ॥६॥ राहु के द्वारा सूर्यग्रहण नहीं किया जाता<sup>१</sup> है, तुम मन से चिन्ता को दूर कर दो। तेजीराशि दिवाकर कौन ग्रस्त करने की भला किसमें शक्ति है ? ॥७॥ हे साम्ब ! मूर्ख व्यक्तियों के लिए यह बात ज्ञानने मुनने लायक नहीं है। अब मैं तुम्हें जो रहस्य बता रहा हूँ वह सुनो ॥८॥

१. पौराणिक मिथिकशास्त्र के अनुसार समुद्र-मन्दिर के उपरान्त अमृतपान के सम्बन्ध में सूर्य राहु द्वारा ग्रस लिया गया था यही सूर्यग्रहण है परन्तु यह दृष्टव्य है कि यहाँ पर सूर्य-ग्रहण का वैज्ञानिक विवेषण किया गया है। दृष्टव्य चिपाठी माया प्रसाद, डैवलेपमेंट आफ जियागर-फिक नालेज इन ऐनिसियन्ट इण्डिया, पृ० ३८-३९.

इस श्रेष्ठ ज्ञान को जानकर कोई व्यक्ति संदेह नहीं करेगा । यदि सच मुख तेजोराशि सूर्य राहु द्वारा प्रस्त कर लिया गया होता ॥६॥ तो फिर उदर के भीतर विद्यमान सूर्य द्वारा क्षण मात्र में वह अस्म क्यों न हो जाना और यदि आक्रमण करके राहु द्वारा सूर्य मुँह में निगल लिया जाता ॥१०॥ तो फिर क्यों नहीं तीखे दाँतों से सैकड़ों खण्ड कर दिया गया । परन्तु निर्मुक्त होने पर तो सूर्य पुनः अखण्ड मण्डल के रूप में दिखाई पड़ता ह ॥११॥ न तो इसका तेज अपहृत होता है, न ही यह अपने स्थान से च्युत होता है और यदि सूर्य राहु द्वारा निगला जाता तो फिर वह इतना दीक्षित-मान कैसे रहता ॥ इसलिए निश्चित है कि तेजोराशि सूर्य राहु के मुख में कभी नहीं जायेगा । समस्त जीवों के भक्तगण के लिए तो ब्रह्मा ने सोम की सृष्टि की है ॥१३॥ उस चन्द्रमा में विद्यमान अमृत भी सूर्य के ही तेज से परिपूर्ण है ॥ उस जलमय अमृत को देवता और स्वधामय अमृत को पितृगण पीते हैं ॥१४॥ तैतीस करोड़ देवता उसी सोम का पान करते हैं ॥१५॥ प्राचीन काल में ब्रह्मा ने अमृत का जो भाग राहु के लिए रक्ष छोड़ा था उसी अमृत को पूर्ण लिथियों में पास पहुँचकर राहु पीना चाहता है ॥१६॥

पृथ्वी के प्रतिबिम्ब को साथ लेकर अंधकारमय और अमलाकार वह राहु अमृत पीते की इच्छा से अपने प्रतिबिम्ब से चन्द्रमी की ढक लेता है ॥१७॥ शुक्लपक्ष में वह चन्द्रमा पर और कुण्डल पक्ष में सूर्य पर आक्रमण करता है<sup>१</sup> । सूर्यमण्डल में विद्यमान चन्द्रमा को नष्ट करने की इच्छा से उसके शरीर को विनष्ट न करता हुआ र्यह उसी प्रकार अमृत पीता है जैसे भ्रमर कमल को हानि न पहुँचाता हुआ उसका मधुरस पीता है ॥१९॥ ठीक उसी

१. विष्णु-धर्मोत्तर-पुराण, ४२. ४२-४३ में सूर्य एवं चन्द्र-ग्रहण का वैज्ञानिक सिद्धान्त दिया गया है । तुलना कीजिए सूर्य-सिद्धान्त, अध्यात्र ४ और ५.

प्रकार चन्द्रमा के अमृत की भी राहु ग्रहण करता है ॥ जैसे चन्द्रकान्त-मणि चन्द्रमा के सम्पर्क से ॥ २० ॥ न अपने तेज से मुक्त होती है और न उसका तुषारकगा ही नष्ट हो पाना है और जैसे सूर्यमणि सूर्य के सम्पर्क से उसी उत्पन्न करके ॥ २१ ॥ तेज से मुक्त नहीं होती है उसी प्रकार चन्द्रमा और सूर्य भी राहु से आच्छादित होने पर भी न अंगहीन होते हैं ॥ २२ ॥ और न तेज से विमुक्त होते हैं । पूर्णिमा तिथियों में चन्द्रमा के साथ चन्द्रकान्त-मणि का सम्पर्क होने पर ॥ २३ ॥ सौम देवता के संयोग से और उनके पाठिव प्रतिबिम्ब के योग से अथवा राहु के वरदान से चन्द्रमा अमृत का स्राव करता है ॥ २४ ॥

जैसे दुहने की वेला में प्रसन्न होकर गाय अपने अंग से दूध का स्राव करते लगती है उसी प्रकार चन्द्रमा भी अमृत प्रकट करता है ॥ सूर्य देवताओं के पिता की तरह और चन्द्रमा माता की तरह देखा जाता है ॥ २५ ॥ जैसे माँ का स्तन पीकर समस्त जीव तृप्त हो जाते हैं उसी प्रकार चन्द्रमा के अमृत को पीकर पितर और देवता तृप्त होते हैं ॥ २६ ॥ इकट्ठे हुए अमृत की पर्व-योग होने पर चन्द्रमा निर्गलित करता है और झरते हुये उस अमृत को देवगण अपने भागानुसार प्रयोग में लाते हैं ॥ २७ ॥ उसी अन्तर पर पहुँचकर राहु भी अमृत के सम्पूर्ण आधे तिहाई अथवा चौथाई अथवा फिर चौथाई के भी आधे भाग को छीनता है ॥ २८ ॥ चन्द्र-मण्डल के जितने भाग को सूर्य अपनी पृथ्वी छाया से युक्त करता है वही भाग राहु का कहा जाता है और शेष देवताओं का ॥ २९ ॥ इस प्रकार देवताओं की तृप्ति करके और पर्वगत राहु को भी संतुष्ट करके चन्द्रमा न झोण होता है और न तेजविहीन ॥ ३० ॥ इसके पश्चात् पुनः सूर्य के प्रमाण से तिथियों का विभाजन होता है ॥ ३१ ॥ नीचे राहु उसके ऊपर चन्द्रमा और चन्द्रमा के भी ऊपर सूर्य ही पर्वकाल में इनकी स्थिति है और बाद में पुनः इनकी स्थिति विपरीत हो जाती है ॥ ३२ ॥

इस प्रकार राहु चन्द्रमा और सूर्य को केवल मेघ की तरह ढकता है ॥३३॥ पार्थिवी छाया को ग्रहण करके धूएँ और मेघ की तरह उठा हुआ यह राहु चन्द्रमा अथवा सूर्य का जो भाग छूता है ॥३४॥ उससे सूर्य और चन्द्रमा का वह भाग केवल श्यामल हो जाता है जैसे कि कौचड़ लग जाने से वस्त्र की सफेदी नष्ट हो जाती है ॥३५॥ चन्द्रमा अपने एक भाग में अथवा समस्त भाग में राहु द्वारा ग्रसित होने पर भी धुके हुए वस्त्र की भाँति पुनः अत्यधिक श्वेत हो जाता है ॥३६॥ वस्त्र की ही भाँति राहु से मुक्त चन्द्रमण्डल भी निर्मल हो जाता है । राहु के द्वारा चन्द्रमा और सूर्य को आच्छादित देखकर ॥३७॥ विप्रगण शांति करने में विरत होकर यत्न करने लगते हैं । इस प्रकार सूर्य और चन्द्रमा ग्रस्त होते हैं ॥३८॥ जो अज्ञानी लोग हैं वे इसी को सूर्य और चन्द्रमा का ग्रहण मानते हैं और उसी रूप में देखते हैं ॥३९॥ स्तान, दान और जप में, इस ग्रहण का माहात्म्य जानने से सब देवताओं का सानिध्य प्राप्त होता है । इसका व्यान कर, मुनकर और यढ़कर मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है ॥४०॥

इस प्रकार साम्ब-पुराण का राहु-ग्रहण-विचार नामक तेइसवाँ अध्याय<sup>१</sup> समाप्त होता है ।

१. इस अध्याय की ४५० ई० के उपरान्त प्रक्षिप्त माना जाता है दृष्टव्य हाजरा, आर० सी०, स्टडीज इन दे उपपुराणाज, भाग १, पृ० ५७. यह सत्य विचारणीय है कि बाइसवें और तेइसवें अध्याय का कोई भी अंश भविष्य-पुराण में ग्रहण नहीं किया गया है ।

## अध्याय २४

वशिष्ठ ने कहा—हे महाराज ! इस प्रकार हर्षे बढ़ाने वाला सूर्य का महात्म्य कहा गया और उस माहात्म्य को नारद से सुनकर साम्ब अत्यन्त प्रसन्न हुए<sup>१</sup> ॥१॥ तब साम्ब विनयपूर्वक देव के समक्ष पहुँचकर अत्यन्त दीनवाणी से पिता से बोले ॥२॥ साम्ब ने कहा—हे देव ! अर्गों को नष्ट करने वाले कलंक से मैं अभिभूत हो गया हूँ । और मैं जानता हूँ कि मेरी मुक्ति वैद्यों और औषधियों से नहीं होने की ॥३॥ हे गोविन्द ! अब मुझे आज्ञा दीजिए, मैं वन चला जाऊँगा ॥ हे कमलनयन पुरुषोत्तम ! मेरा कल्याण कीजिए ॥४॥ इसके पश्चात पिता कृष्ण द्वारा आज्ञा पाकर समुद्र के उत्तरी तट पर महानदी चन्द्रभागा को उन्होंने तैर कर पार किया ॥५॥ इसके पश्चात तीनों लोकों में प्रसिद्ध मित्रवन<sup>२</sup> में जाकर साम्ब उपवास के कारण अत्यंत कृशांग और निस्तर सूखी हुयी धमनियों वाले हो गये ॥६॥ सूर्य की आराधना के लिए यही रहस्यमय स्तोत्र जपने लगे जो कि चारों वदों से सम्मत और पौराणिक अर्थ से समर्थित था ॥७॥ यह जो अजर, अव्यय, शुक्ल, दिव्य तथा ब्रह्मवादी हरित वर्ण वाले मन के समान वेगगामी अश्वों से युक्त सूर्यमण्डल है ॥८॥

१. तुलना कीजिए भविष्य-पुराण, १.१२६.

२. इस मित्रवन की स्थिति पंजाब में मुलतान में बतायी गई है । कृष्ण हाजरा आरू सी०, दी साम्ब पुराण शू. दी एजेस, जनेल एशियाटिक सोसाइटी, लेटर्स, मार्ग १८.

## साम्ब-युराण

यह जो जीवों का उदगम-विन्दु होने के कारण आदित्य नाम से प्रसिद्ध है। यही त्रैलोक्य का नेत्र है, परमात्मा है और प्रजापति है ॥६॥ इस मण्डल में यह जो महान् पुरुष देवीप्यमान हो रहा है यही अचिन्त्य रूप वाला विष्णु है, यही प्रजापति है ॥१०॥ यही रुद्र, महेन्द्र, वरुण, आकाश, जल, वायु, चन्द्रमा, पर्जन्य और कुबेर है ॥११॥ इस मण्डल में यह जो अग्नि के समान तेजस्वी प्रकाशित हो रहा है यही सहस्र रश्मियों वाला, बारह रूपों वाला दिवाकर है ॥१२॥ इस मण्डल में यह जो महान् पुरुष देवीप्यमान हो रहा है यही साक्षात् महादेव है। वह मण्डलाकार कुंभ रूपी प्रकाश कल्याण-कारी है ॥१३॥ संहार और उत्पत्ति का कारण यही महायोगी काल है जो कि इस मण्डल में अपने तेजोराशि से पृथ्वी को पूर्ण करता हुआ विद्यमान है ॥१४॥ जन्म-मरण से भुक्त लक्षण वाला यह स्वयं धाता है जो कि स्वतन्त्र होकर पर्यटन कर रहा है। इससे श्रेष्ठतम् देवता तेज की दृष्टि से और कहीं नहीं है ॥१५॥ यही अपने स्वधामृत से समस्त जीवों का पोषण करता है, यही निम्न म्लेच्छ जातियों और पशु-योनि में उत्पन्न जीवों का पोषण करता है ॥१६॥

हे देव ! विभावमु ! अपनी करुणा से तुम समस्त जीवों की रक्षा करते हो, आपत्तियों में मुक्ति देने के लिए तुम्हीं भक्तों की रक्षा करते हो ॥१७॥ अनेक प्रकार के कोङ्दियों, अन्धों, बहरों, लंगड़ों, पंगुओं और अंग-भग वाले अनुष्ठों को, हे देव ! वात्सल्यपूर्वक तुम्हीं निरोग करते हो ॥१८॥ हे

१. सूर्य का रोग-मुक्तिकारक स्वरूप वैदिक-काल से चला आ रहा था देखिए ऋग्वेद, १.५०.१२, १०.३७.४ और ७. तत्तिरीय-सहिता ४.४.३, २.३.७. अर्थव्वेद, १.२२ दृष्टव्य करमब्रेलकर, अथव्ववेद ऐङ्ग आयुर्वेद, यंचविश-ब्राह्मण, २३.१६.१२. के अनुसार उप्रदेव ने कोङ्द से मुक्त होने के लिए २१ दिन का सूर्य-अनुष्ठान किया था। मयूर ( उवी शताब्दी ३० ) ने भी इसी रोग से मुक्ति हेतु सूर्यशतक की रचना की थी ।

प्रत्यक्षदर्शी देव ! दाद और फोड़े-फुंसी से ग्रस्त व्यक्तियों को तुम वृणविहीन बना कर केवल खेल खेल में ही उद्धार करते हो ॥१९॥ हे देव ! मेरी भला वया शक्ति है कि मैं तुम्हारी पूजा कर सकूँ, मैं तो आर्त हूँ और रोग से पीड़ित हूँ । तुम्हारी तो स्तुति ब्रह्मा, विष्णु और महेश आदि भी करते हैं ॥२०॥ तुम तो महेन्द्र, सिंह, गन्धर्व, अप्सराओं और गुह्यकों द्वारा स्तवन किये जाते हो, वायु द्वारा पवित्र स्तुतियों के मध्यम से पूजित तुम कौन देव हो ॥२१॥ जिसके मण्डल में ऋक, यजुष् और साम-इन तीनों का समूह स्थित है ? ॥ वही तुम्हारा मण्डल ध्यानियों के लिए सर्वश्रेष्ठ ध्यान है और मोक्ष चाहने वाले के लिए मोक्ष का द्वार है ॥२२॥ हे जगत्पति ! तेजों का अनन्त अचिन्त्य, अव्यक्त और निर्भल तेज जो कुछ भी इस स्तोत्र में सन्निहित कर सका है ॥२३॥ मुझ दुखी को भक्ति वाला समझ करके वह सब क्रमा करने की कृपा करें । तब जाम्बवती पुत्र साम्ब पर प्रसन्न होकर सूर्य देवता ने कहा—हे वत्स ! तेरी तपस्या से मैं प्रसन्न हूँ जो वर चाहता है माँग ले ॥२४॥

साम्ब ने कहा—हे भगवान ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मेरा वर यही है कि आप जैसे सनातन देवता में मेरी भक्ति-भावना नित्य बली रहे ॥२५॥ सूर्य ने कहा—हे सुन्दर ! तेरा कल्याण हो । मैं तुझसे और भी अधिक प्रसन्न, अहं, तू वर का वरण कर ले ॥२६॥ तब साम्ब ने वर देने वाले उस पवित्र देवता से दूसरा वर माँग लिया । हे देव ! आपकी कृपा से मेरे शरीर में विद्यमान यह रोग<sup>१</sup> नष्ट हो जाये, महात्मा भास्कर ने ज्योंहि यह कहा कि तथास्तु ॥२७॥ वैसे ही वह रोग शरीर से दूर हो गया और साम्ब उसी प्रकार पुनः वर प्राप्त कर रूपवान हो गया जैसे कोई सर्प केचूल छोड़ सुन्दर हो

१. व्लाच, जै०, डी०, एम०, जौ०, १९११ पृ० २३ का विचार कि सूर्य द्वारा कोढ़ से मुक्ति दिलाने का सिद्धान्त परशिवन उत्पति का है सभी चीन नहीं लगता ।

जाता है ॥२८॥ सूर्य बोले—हे साम्ब ! मैं तुझसे संतुष्ट हूँ । मैं फिर तुमसे कुछ कह रहा हूँ उसे सुनो—आज से तेरे नाम से जो मेरा मन्दिर बनवायेगे ॥२९॥ पृथ्वी में स्थापन करेंगे उन्हें सनातन लोक मिलेगा ॥३०॥ हे साम्ब ! तुम मुझे इस चन्द्रभाग नदी के पवित्र तट पर स्थापित करो ॥ और हे साम्ब ! यह नगर भी तुम्हारे नाम से ही प्रसिद्ध होगा अब तक यह भूमि रहेगी तब तक अक्षय कीर्ति संसार में होगी और मैं पुनः तुम्हें प्रतिदिन स्वप्न में दर्शन देता रहूँगा ॥३२॥

इस प्रकार कृष्णवंश में उत्पन्न उन साम्ब को सूर्य देवता वर प्रदान करके और प्रत्यक्ष दर्शन देकर वहीं पर अन्तर्ध्यान हो गये ॥३३॥ जो भक्ति मान मनुष्य, द्विजरथ-स्तोत्र<sup>१</sup> को तीनों समय में पढ़ता है अथवा दुख-शोक से आर्त होकर जो नारी इसका पाठ करती है वह शोक सागर से मुक्त हो जाती है ॥३४॥ अँख की पीड़ा, मन की पीड़ा, और कारागार में भयंकर जंजीरों के बधन से इन सबसे वह मुक्त हो जाता है ॥३५॥ वह भक्ति-वत्सल सूर्य अन्तरिक्ष के नीचे सर्वथा समर्थ है ॥३६॥ राज्य चाहने वाला व्यक्ति राज्य, धन चाहने वाला धन, रोग से मुक्ति चाहने वाला व्यक्ति रोग-मुक्ति प्राप्त करता है जैसे कि साम्ब को मुक्ति मिली ॥३७॥ इस प्रकार साम्ब-पुराण का रोगापनयन नामक चौबीसवाँ अध्याय समाप्त होता है ।

८

---

१. आदित्यहृदयस्तोत्र (रामायण. ६.१०५) को भी इसी प्रकार पापनाशक, कष्टहारक, आयु-वर्धक आदि कहा गया है ।

## अध्याय २५

वशिष्ठ बोले—हे राजन ! इसके पश्चात् सूखी हुयी नसों वाले ( निर्बल ) साम्ब सहस्र नाम स्तोत्र द्वारा महस्त किरणों वाले दिवाकर का स्तवन करते रहे<sup>१</sup> ॥१॥ तब कृष्ण-पुत्र उन साम्ब को दुखी होता हुआ देखकर सूर्य ने स्वर्ण में दर्शन देकर पुनः यह बात कही ॥ २ ॥ सूर्य बोले—हे साम्ब ! हे महाबाहु ! हे जाम्बवती पुत्र ! सुनो नाम-सहस्र के द्वारा इस पवित्र स्तवन का पाठ करने से बहुत हो चुका ॥३॥ जो अत्यन्त पवित्र, कल्याणकारी, गोपनीय नाम हैं मैं उनका वर्णन करता हूँ सुनकर तुम उन्हें समझो ॥ ४ ॥ वे नाम हैं विकर्त्तन, विवस्वान, मार्तण्ड, भास्कर, रवि, लोकप्रकाशक, श्रीमान्, लोक-चक्रु, ग्रहेश्वर ॥५॥ लोकसाक्षी; त्रिलोकेश, कर्ता, हर्ता, तमिस्त्रहा, तपन, तापन, शुचि, सप्ताश्ववाहन ॥६॥ गमस्तिहस्त, ब्रह्मा, सर्वदेव-नमस्कृत, इस प्रकार यह इकीस नाम वाला स्तवन मुझे सदा सदा अत्यन्त प्रिय है ॥७॥ यह तीनों लोकों में स्तवराज के नाम से विख्यात है जो कि शरीर को आरोग्य देने वाला, धनबृद्धि और यशबृद्धि करने वाला है<sup>१</sup> ॥८॥

हे महाबाहो ! सायं प्रातः दोनों संध्याओं में विनयपूर्वक जो मुझे इस स्तव से समर्चित करता है वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है ॥९॥ शरीर, बाग्नि अथवा मन से किया गया जो पाप है एक जप करने मात्र से वह मेरे समक्ष नष्ट हो जाता है ॥१०॥ यह महामंत्र जप करने थोग्य होम सन्ध्यो-

---

१. इस अध्याय की तिथि ५००-८०० ई० के मध्य में रखी गई है देखिए हाजरा, वही.

पासना, वलिमंत्र, अर्ध्यमन्त्र और धूपमंत्र ॥११॥ अन्तदानि, स्नान, प्रणिपात  
और प्रदक्षिणावेला में समर्पित होने पर समस्त व्याधियों को हरने वाला  
है ॥१२॥ इस प्रकार कहकर जगत के स्वामी भगवान् सूर्य कृष्ण-पुत्र को मन्त्र  
प्रदान करके वहीं अन्तर्ध्यान हो गये ॥१३॥ कुमार साम्ब भी इस स्तवराज  
द्वारा सप्ताश्रवाहन सूर्य को समचित करके पवित्रात्मा, निरोग और लक्ष्मी  
सम्पन्न होकर उस रोग से मुक्त हो गये ॥१४॥ इस प्रकार साम्बपुराण के  
रोगोपनयन में श्री सूर्य द्वारा प्रतिपादित ‘स्तवराज वर्णन’<sup>१</sup> नामक पञ्चीसवाँ  
अध्याय<sup>२</sup> समाप्त होता है ।

१. तुलना कीजिए आदित्यहृदयस्तीक्र, रामायण, ६. १०५.

२. तुलना कीजिए भविष्य पुराण, १. १२८.

## अध्याय २६

इसके पश्चात वर प्राप्त करके कुमार साम्ब अपने पूर्व रूप को प्राप्त करके प्रसन्न अन्तरात्मा से उस आश्चर्य को स्वीकार करते हुए ॥१॥ अपने उसी पूर्वाभ्यास से अन्य तपस्वियों के साथ स्नान करने के लिए सभीपवतिनी चन्द्रभागा<sup>१</sup> नदी तक गये ॥२॥ स्नान के उपरात वहाँ पर उन्होंने अकस्मात् सूर्य की देवीप्यमान मूर्ति को देखा जो मानों जलसमूह द्वारा उठाई जा रही थी ॥३॥ उसे जल से बाहर निकालकर कुमार साम्ब ने आश्रम में ले आकर विधिपूर्षक उसी मित्रवन में स्थापित किया ॥४॥ इसके पश्चात उन्होंने प्रणाम करके उसी सूर्य-प्रतिमा से पूछा—हे देव ! आपकी यह कल्याणकारी आकृति किसके द्वारा बनाई गई ? ॥५॥ इसके पश्चात प्रतिमा ने कहा—हे साम्ब ! जहाँ से यह मूर्ति उत्पन्न हुई है और जिस पुरुष द्वारा यह मेरी आकृति बनाई गई है उसे सुनो ! मेरा पुरातन रूप अत्यंत तेज से युक्त था, सामान्य जीवों के लिए असह्य था, इसलिए मैं समस्त देवताओं द्वारा प्रार्थित किया गया ॥६॥ हे प्रभो ! आपका रूप समस्त प्राणियों के लिए सह्य हो । तब मैंने महातपस्वी विश्वकर्मा को आदेश दिया ॥७॥

१. पंजाब में सिन्धु नदी की एक सहायक नदी चुनाब जिसके तट पर मुलतान स्थित था दृष्टब्य हाजरा, स्टडीज, १; साम्ब-पुराण, ३-२, ४.१-२अ, ४.२०, २३. २४.५-६, २४-३१; भविष्य-पुराण, १.७२-६१, १.७४.१-२ अ, १.७४.२१, २४, १.१२७.६-७ आदि । एवं वान स्टेटेनक्रान्त इन्डिश्च सोनितप्रीस्टर साम्ब अण्ड देइ शाकद्वीपीय ब्रह्मण, साराश, पृ० २७६-८० ने यह मत प्रतिपादित किया है कि प्राचीन काल में चन्द्रभागा मुलतान से लगभग ३५ मील दूर प्रवाहित होती थी, मुलतान चन्द्रभागा की सहायक नदी रावी पर स्थित था ।

कि मेरे तेज का कर्तन करते हुए रूप-सम्पादन करो, तब मेरी ही आज्ञा से उस विश्वकर्मा ने ही बड़ी कुशलता से ॥६॥ शाकद्वीप में मुझे खरादकर रूप सम्पादित कर दिया ॥ तुम्हारे प्रति प्रीति होने के कारण इस समय मैंने पुन उसी विश्वकर्मा को स्मरण किया ॥७॥ उस विश्वकर्मा<sup>१</sup> ने ही मेरी यह प्रतिमा कल्पवृक्ष से निमित की और पवित्र सिद्धों द्वारा मेवित हिमालय के ऊपर इसका निर्माण करके ॥८॥ तुम्हारे लिए चत्वरभाग नदी में उतार दिया । तुम्हारे मोक्ष के ही लिए मेरा यह स्थान उत्पन्न हुआ है ॥९॥ मेरा मनोरम सामीप्य सदैव यहाँ रहेगा ॥१०॥ मेरा सानिध्य पूर्वान्त्र में और समय बीतने पर अध्यान्त्र और साय को भी यहाँ निरस्तर रहेगा ॥११॥ ब्रग्निष्ठ बोले सूर्य देवता के इस वाक्य को मुनकर और प्रत्यक्ष दिखाई पड़ने वाले उन्हें देखकर मन्दिर निर्माण करके साम्ब ने नद नारद से कहा साम्ब ने कहा—हे देवषि ! आपकी कृपा से मैंने यह सनातन रूप प्राप्त कर लिया और महात्मा भास्कर ( सूर्य ) का प्रत्यक्ष दर्शन भी ॥१२॥

यह सब कुछ प्राप्त करके भी मेरा मन चिन्तातुर है कि इस देवता की उपासना का पालन कौन करेगा ॥१३॥ हे ब्रह्मन ! गुणों से युक्त जो भी ब्राह्मण सेवा-पालन करते में समर्थ हो मेरे कल्याणर्थ सोचकर आप उसे बताने का कष्ट करें ॥१४॥ साम्ब द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर नारद ने उन्हें उत्तर दिया ॥१५॥ नारद बोले—हे साम्ब ! सूर्य के सेवार्थ स्वीकृत धन को ब्राह्मण प्रहरण नहीं करेंगे ? यह भी विदित है कि यहाँ पर धन है, यहाँ

१. देवों के शिल्पी, इनके स्वरूप के लिए मेकडानल ए० ए०, वेदिक माइथालाजी, पृ० ११८.

२. ब्राह्मण के जीवन का आदर्श ब्रह्मज्ञान था, मन्दिर एवं मूर्ति की परम्परा मूलतः अवैदिक थी अस्तु ब्राह्मण के लिए मन्दिर और मूर्ति एवं इसके धन से संबन्धित होना निन्दनीय समझा जाता था । सौरोपासना में मन्दिर एवं मूर्ति परम्परा के लिए देखिए श्रीवास्तव, सन् वरशिष्य इन ऐतिहासिक इण्डिया, पृ० २२०-२२४.

भी अत्यधिक हैं ॥२०॥ देवता की उपासना में आये हुए द्रव्य से ब्राह्मो क्रियायें नहीं सम्पन्न होती हैं। लोभ से मोहित लोग ही अज्ञान वश इस प्रकार की पूजा करते हैं ॥२१॥ जो ब्राह्मण लोभ से मोहित होकर शास्त्र-विपरीत विधान करते हैं। वे देवलक ब्राह्मण पंक्ति से बाहर अर्थात् निम्न कोटि के हो जाते हैं ॥२२॥ देवता के धन का जो उपभोग करते हैं वे पतित हो जाते हैं। ऐसे गहित व्यक्ति और शास्त्र की कोई प्रशंसा नहीं करता ॥२३॥ इसी प्रकार जो व्यक्ति देवता और ब्राह्मण के धन<sup>१</sup> को लोभ के कारण खाता है वह पापात्मा परलोक<sup>२</sup> में गृद्ध के खाने से बचे हुए जूठन को खाकर जीवित रहता है ॥२४॥

इसलिए कोई अन्य ब्राह्मण ही देवोपासना करेगा। हे साम्ब ! तुम उन्हीं भगवान् सूर्य की शरण में जाओ वही तुम्हें कोई ब्राह्मण बताएँगे जो विधि जानने वाला हो, जानबान हो और देवोपासना करने में समर्थ हो ॥२५॥ देवर्षि नारद द्वारा इस प्रकार उपदेश पाकर सूर्य को प्रणाम कर साम्ब ने अपना संदेह पूछा आपकी पूजा कौन करेगा ? ॥२६॥ साम्ब द्वारा इस प्रकार सम्बोधित किये जाने पर उस मूर्ति ने कहा—हे निष्पाप जम्बू-दीप में कोई व्यक्ति मेरी पूजा करने योग्य नहीं है ॥२७॥ तुम शाकदीप से मेरी पूजा में दत्तचित्त ब्राह्मणों को जम्बू-दीप में ले आओ। लवण्य-सागर के उस,

१. ब्राह्मण के शरीर एवं सम्पत्ति को कोई हानि नहीं पहुँचा सकता था दृष्टव्य बशिष्ठधर्मसूत्र, पृ० ५.३७. शुरे जी० एस०, कास्ट, क्लास ऐण्ड, अकूपेश्वर सू० ५७.

२. इस काल में स्वर्ग और नरक तथा पुनर्जन्म का सिद्धांत समाज में प्रतिष्ठित ही चुका था। ब्राह्मणों की सर्वोच्च सामाजिक स्थिति के लिये यह तथ्य उत्तरदायी था देखिए शुरे, जी० एस०, कास्ट, क्लास ऐण्ड अकूपूश्वर पृ० ८७.

पार और क्षीर सागर से विरा हुआ ऐसा वह शाकद्वीप<sup>१</sup> इस जम्बूद्वीप की अपेक्षा श्रेष्ठतर सुना जाता है। वहाँ पर चार वग्नों का आश्रम लेने वाले विविध जनपद सुने जाते हैं ॥२९॥ वहाँ मग, मामग मानस और मन्दग हैं ॥ मग तो अधिकतर प्राद्युष है और मामग क्षत्रिय है ॥३०॥ वहाँ के वैश्य मानस कहे जाते हैं और शूद्र मन्दक कहे जाते हैं ॥ वर्णाश्रम धर्म का पालन करने वाले उन लोगों में कहीं वर्ण-संकर नहीं है ॥३१॥ धर्म का अटूट पालन करने के कारण वहाँ को प्रजा परम सुखी है ॥ वे प्रजाएँ प्रवीन काल में मेरे ही द्वारा अपने ही तेज से निर्मित की गई थीं ॥३२॥

वहाँ के निवासियों को मैने ही रहस्यों प्रहित चारों वेदों का उपदेश दिया है और स्वयं निर्मित परम गोपनीय वेदों में कहे गये विविध स्तोत्रों से वे प्रजाएँ युक्त हैं ॥३३॥ वे प्रजाएँ मेरा ही ध्यान करती हैं। निरन्तर मेरा ही जप करती हैं। मेरी ही भावना में समाधिस्थ है। मेरी भक्ति है और मतपरायण है ॥३४॥ वे मेरी ही सेवा करती हैं और मेरे ही ब्रत का पालन करती हैं। सब शास्त्रों में उपदिष्ट कियायों द्वारा अव्यर्गधारी<sup>२</sup>

१. शाकद्वीप की स्थिति सामान्यतः ईरान में बताई जाती है—दृष्टिध्य श्रीवास्तव, सन् वरशिष्य इन ऐल्सियन्ट इण्डियर, पृ० २४४,

२. तुलना कीजिए महाभारत ६.११.३६-३८ विष्णु-पुराण, २.४.६४-७०,

३. एक ईरानियन वस्त्र विशेष मेरवला, कमरबद्ध । सूर्य-मूर्तियों को इससे सुशोभित किया जाता था विष्णुधर्मोत्तर-पुराण, ३.६७.२-११, बृहतसंहिता, ४७.४६-४८, बनजीं, जे० एन०, मिथ्रा एक्सप्लेनिंग सम एलियन फ्रेंड्स आफ दी नार्थ इण्डियन सन आइकन्स, इण्डियन हिस्टोरिकल क्वाटरली, भाग २८,

॥३५॥ वे प्रजाएँ वहाँ सदैव मेरी मनोनुकूल पूजा करती हैं ॥ उस द्वीप में गन्धर्वों, सिद्धों और चारणों सहित देवगण ॥३६॥ उन सबके साथ प्रत्यक्ष विहार करते हैं और रमण करते हैं ॥ श्वेतद्वीप में मैं ही विष्णु हूँ और कुशद्वीप में महेश्वर हूँ ॥३७॥ पुष्करद्वीप में ब्रह्मा और शाकद्वीप में भास्कर<sup>१</sup> । इसलिए हे साम्ब ! मेरी पूजा करने के लिए तुम उन सर्गों को शाक-द्वीप से यहाँ ले आओ ॥३८॥ हे साम्ब ! गहड़ पर आहड़ होकर शीघ्र चले जाओ ॥३९॥ वशिष्ठ बोले—जैसी प्रभु की आज्ञा ! इस प्रकार सूर्य की आज्ञा लेकर जाम्बवती-पुत्र साम्ब अत्यन्त क्वान्ति से समाचृत होकर पुनः द्वारवती (अर्थात् डारका) पहुँचे ॥४०॥

पिता से अपना देवदर्शन का सम्पूर्ण वृत्तांत बताया । उनसे वाहन गहड़ को लेकर और उस पर आसीन होकर साम्ब चल पड़े ॥४१॥ इसके पश्चात पुलकित रोमावली वाले साम्ब शाकद्वीप में पहुँचकर वहाँ सूर्य देवता द्वारा बताए हुए तेजस्वी मग-ब्राह्मणों को देखा ॥४२॥ जो कि पवित्र धूप और गन्ध आदि से सूर्य की पूजा कर रहे थे । उन सबको प्रणाम करके और उनकी प्रदक्षिणा करके ॥४३॥ उनका कुशल वृत्तान्त पुष्कर साम्ब ने उन सबकी प्रशंसा की । और कहा—आप लोग वहे पुण्यकर्मी हैं, और कल्याण-इच्छुक व्यक्तियों द्वारा ही देखे जाने योग्य हैं ॥४४॥ जो कि आप लोग सूर्य की पूजा में निरन्तर रहे हैं और उन्हीं का वर प्रदान करने में समर्थ हैं । मैं विष्णु का पुत्र हूँ, मेरा नाम साम्ब है ॥४५॥ चन्द्रभाग नदी के तट पर मैंने सूर्य की स्थापना की है और उन्हीं द्वारा मैं आप लोगों

१. समन्वयवादी प्रवृत्ति भारतीय धर्म-साधना की विशेषता रही है । यहाँ पर विष्णु, शंकर, ब्रह्मा और सूर्य की एकात्मकता प्रकट की गई है । गुजरात तथा राजस्थान से सूर्य, विष्णु, शंकर और ब्रह्मा की संयुक्त मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं देखिए संकलिया, एच०, डी०, आरब्धालाजी आफ गुजरात, पृ० १६३ तथा अमर दशरथ, राजस्थान अ०, दी एजेस, पृ० ३८१.

के समीय भेजा गया है। आप लोग उठें और वहीं चला जाये ॥४६॥ उन मग-ब्राह्मणों ने साम्ब से कहा—ऐसा ही होगा इसमें कोई संशय नहीं है। भगवान् सूर्य ने भी हम लोगों से पहले ही यह कहा था ॥४७॥ वेदवादी<sup>१</sup> मगब्राह्मणों के यहाँ पर अद्वारह कुल हैं वे सबके सब तुम्हारे साथ वहीं चलेंगे जहाँ सूर्य-देवता हैं ॥४८॥

तब उन साम्ब ने उन अद्वारह परिवारों को गरुड पर बैठाकर बेग-पूर्वक पुनः प्रस्थान किया ॥ ४९ ॥ पुत्रों और पत्नियों से युक्त पूजा और यज्ञ करने के लिए आये हुए वे थोड़े ही समय में पुनः मित्रवन पहुँच गये ॥५०॥ सूर्य की उस आज्ञा को पूर्ण करके साम्ब ने जो कुछ किया सब सूर्य को तिवेदित कर दिया और सूर्य ने भी 'अच्छा किया' इस प्रकार कहकर प्रसन्न होकर साम्ब से बोले ॥५१॥ अब यह ब्राह्मण प्रजाओं की शान्ति करने वाले शास्त्रीय रीति से मेरी मनोनुकूल (अथवा मानसी) पूजा करेंगे और है साम्ब ! अब मेरे लिए तुम्हें कोई चिन्ता नहीं होगी ॥ ५२ ॥ इस प्रकार साम्बपुराण में मगान्यन्तं नामक २६ वाँ अध्याय<sup>२</sup> समाप्त होता है।

१. यह दृष्टव्य है कि मगों को वैदिक-परम्परा से सम्बद्ध किया गया है जब कि इसी पुराण के उत्तरकालीन अध्यायों में वर्णित भोजकों को जरथुष्ट्र धर्म से सम्बन्धित बताया गया है, मगों और भोजकों की स्वतन्त्र स्थिति के लिये देखिए स्टेटमेंट, इन्डिश सोननप्रीस्ट्रेर साम्ब अण्ड बैर्ड शाकडीपीय-ब्राह्मण, सारोश, पृ० २७७.

२. तुलना कीजिए भविष्य-पुराण, १.१२६.१-२, ४, ६ अ, ७व-१७अ, १.१३६.१-४अ, १०ब. ७०-८१, ८३-८७. ब्रह्म-पुराण । २०। वराह-पुराण । १७७ में साम्ब के अख्यान के संदर्भ में मगों को लाने का उल्लेख नहीं किया गया है।



## अध्याय २७

वृहद्बूषण ने कहा— वे बड़े सौभाग्यशाली हैं, प्रशंसनीय हैं, पुण्य कर चुके हैं जो कि सूर्य की पूजा में लगे हुए हैं और सूर्य जिनके लिए वरप्रद हैं ॥१॥ परन्तु मनुष्य जाति तो अनित्य है अतएव जो लोग देवपूजा में निरत हैं उनके लिए तो सब कुछ यही पर्याप्त है ॥ तब उन्हें परलोक में क्या फल मिलता है ? ॥२॥ सूर्य की चिन्ता करते हुए और भोजकों<sup>१</sup> के ज्ञान के प्रति विचार करते हुए मेरे हृदय में यह सन्देह है ॥३॥ कि यह कैसे पूजा करते हैं ? यह भगवान् कौन है ? तथा यह याजक कौन है ? इनका श्रेष्ठ ज्ञान क्या है और कौन उनका इष्ट देवता है ? ॥४॥ इन सारी बातों की मुझे यथोचित रूप से वर्ताने की कृपा करें ॥५॥ वशिष्ठ बोले— यह ( मग-ब्राह्मण ) मोक्षवादी है, कर्मयोग के आधित हैं और जनोरम पुष्पों और फलों से भगवान् सूर्य का यज्ञ करते हैं ॥६॥ इसी प्रकार अन्तों, औषधियों और धी के होमों से यह लोग मंत्रोच्चारण सुहित यज्ञ करके परम होम का पान करते हैं ॥७॥ उस परम होम का पान करते के कारण वह पवित्र आत्मा दाले और निष्पाद

१. एच० बी०, स्टैटिनकान्त, वही, पृ० २७६ के अनुसार यहाँ पर भोजक शब्द मूलरूप में नहीं था ।

२. मगों की उत्पत्ति, स्वरूप एवं प्रभाव के लिए देखिए श्रीवास्तव विनोद चन्द्र, ऐन्टीक्यूटी आफ मगाज इन ऐन्सियन्ट इण्डिया, प्रोसीडिंग्स, इण्डियन हिस्ट्री कॉर्प्रेस, भागलपुर सत्र, तथा सत्र वरशिप इन ऐन्सियन्ट इण्डिया, पृ० २४१-२६४.

होकर परम दिव्य सूर्य की बीसवीं तेजस्विनी कला को प्राप्त कर लेते हैं ॥८॥

यज्ञकर्म के साधन में सूर्य की एक मूर्ति तो अग्नि में विद्यमान है और दूसरी प्रकाश करने वाली मूर्ति आकाश में वायुमार्ग में विद्यमान है ॥९॥ उससे ऊपर तीसरी मूर्ति है जो कि सूर्य का मण्डल कही जाती है वह मण्डल ऋचाओं से युक्त है, दिव्य है, अमर है और अव्यय है ॥१०॥ इसी मण्डल के बीच में सत और असत आत्मा वाला वह पुरुष सूर्य बीच में विद्यमान है जो कि क्षर भी है और अक्षर भी है, स्थूल<sup>१</sup> है और महासूक्ष्म भी ॥११॥ वह कला-विहीन भी है और कलाओं से युक्त भी है । इस प्रकार दो रूपों में वह समस्त जीवों में व्यवस्थित दृष्टिगोचर होता है ॥१२॥ वह सूर्य तृणों, कुंजों, लताओं, वृक्षों, मृगों, सिंहों, गजों, पक्षियों, देवताओं, ब्राह्मणों, मनुष्यों, स्थल पर उत्पन्न होने वाले तथा जल में उत्पन्न होने वाले समस्त जीवों को व्याप्त करके ॥१३॥ सर्वं च सबकी अन्तरात्मा में निवास करता है ॥ जब वह सूर्य कालात्मक बनकर दूसरा शरीर धारण करता है ॥१४॥ तब वह तेजसी कला का आश्रय लेकर निष्कल<sup>२</sup> कहा जाता है ॥ यह सदैव श्रीत, श्रीष्म और वर्षा तीर्तों कालों का सृजन करता है ॥१५॥ सूर्य की तीसरी मूर्ति में वह परम-पद निहित है । कर्मयोग से प्राप्य देवयान नामक मार्ग भी उस मूर्ति में निहित है ॥१६॥

१. विज्ञेय का अनुवाद स्थूल से किया है, विज्ञान का एक अर्थ सांसारिक ज्ञान से भी होता है उसी से स्थूल अर्थ निकाला जा सकता है । आप्टे, संस्कृत-हिन्दी कोश, ६३१.

२. यहाँ सूर्य की अवधारणा सकल और निष्कल दोनों रूपों में की गई है दृष्टिव्य हाजरा, स्टडीज, भाग १ पृ० ५६-५७ तथा सन वरशिप इन ऐन्सियन्ट इण्डिया, पृ० २३६-४०.

जिसे कि सूर्यसिद्धान्त एवं सार्वभूत-योग को जानने वाले प्राप्त करते हैं और वहो मोक्ष कहा जाता है ॥१७॥ वह स्थान निर्द्वन्द्व है, निर्मल है, वेदों में यह कहा गया है कि ब्रैह्मण यहीं पर विद्यमान है। यहाँ पहुँचकर कोई व्यक्ति चिन्ता नहीं करता ॥१८॥ गायत्री मंत्र के चौबीस अक्षर बताए गए हैं, तत्त्वज्ञ लोग पचचीसवें तत्त्व में विद्यमान इस मंत्र का जप करते हैं ॥१९॥ जो वेदवादी लोग है वे ओंकार में विद्यमान सूर्य का ध्यान करते हैं जो कि ढाई भावाः में विद्यमान है ॥२०॥ जो व्यंजनात्मक 'मकार' है वह अर्धमात्रा में गुप्त है, इसलिए जो 'मकार' का ध्यान करते हैं उनका ज्ञान मदात्मक होता है ॥२१॥ इस प्रकार मैंने मकारक ध्यान के संबंध में यह बातें बताई ॥२२॥ वृप, मालाओं, जर्पों और उपहारों से जो सूर्य का यजन करते हैं इसीलिए, वे याजक<sup>१</sup> कहे जाते हैं ॥२३॥ इस प्रकार साम्ब-पुराण में सत्ताइसवाँ अध्याय<sup>२</sup> समाप्त होता है ।

१. याजकों और भगों में भेद के लिए देखिए श्रीवास्तव, सन वरशिप इन ऐन्सियन्ट इण्डिया, पृ० २६२ तथा स्टेटिनक्रान, वही, पृ० २७६-२८१.

२. श्लोक संख्या ५ और १६ अ के अतिरिक्त यह पूरा अध्याय भविष्य-पुराण, १.१४०.२०-२३ तथा १.१४४. ६३-१६अ, १७-२४ तथा २५ब तथा २६, में संग्रहीत है। अस्तु इस अध्याय को साम्ब-पुराण के मूल भाग में माना जाता है और इसकी तिथि ५००-६०० ई० के मध्य स्वीकार की गई हैं देखिए हाजरा, वही.

## अध्याय २८

विशिष्ठ बोले—हे राजन ! इस सूर्य-ज्ञान की उपलब्धि को मेरे द्वारा कही जाती हुई सुनो । मनुष्य को चाहिए कि हड्डी-स्नायु से युक्त, मौस और रक्त से उपलिप्त ॥१॥ चमड़ी से ढकी हुई, मल और मूत्र की दुर्गन्ध से परिपूर्ण, बृद्धावस्था और शोक से समाविष्ट, रोगों का धर, जर्जर, ॥२॥ संवेगपूर्ण, अनित्य इस शरीर का मीह छोड़ दे ॥ कृपालुता, क्रामा, सत्य, सरलता, पवित्रता ॥३॥ समस्त जीवों के लिए कल्याणकारी भाव—ये ही मुक्त-पुरुष के लक्षण हैं ॥ जैसे तिल में तेल, दूध में दधि और काष्ठ में अरिन की संगति होती है ॥४॥ धीर पुरुष को चाहिए कि दत्तचित्त होकर चंचल और मन्थनशील होने पर भी संयत मन से उपाय सौचे ॥५॥ शरीर में बुद्धि और इन्द्रियों को पिजरे में पक्षियों की भाँति संयमित करके मनुष्य साधना करे क्योंकि इन्द्रियों के नियंत्रित हो जाने पर आत्मा तृप्त हो जाती है ॥६॥ प्राणायाम<sup>१</sup> से दोषों को, धारणाओं से दुष्कर्मों को जला देना चाहिये,

१. योगियों के अनुसार तत्त्वज्ञान के लिये चित्त-शुद्धि आवश्यक है । योग के अष्टांग साधन हैं जिसमें प्राणायाम, धारणा और प्रत्याहार का उल्लेख यहाँ पर किया गया है । प्राणायाम से अभिप्राय है श्वासनियत्वण, प्रत्याहार का अर्थ है इन्द्रियों को अपने-अपने बाह्य विषयों से छीनकर हटाना और उन्हें मन के वश में करना, धारण से अभिप्राय है चित्त को अभीष्ट विषय पर केन्द्रित करना । यहाँ पर योग-दर्शन का प्रभाव स्पष्ट है । इन योगिक साधनों के विस्तार के लिए देखिए चट्ठी एवं दत्त, भारतीय दर्शन, पृ० १६३-१६४.

प्रत्याहार से 'इन्द्रिय-विषयों' को शान्त कर देना चाहिए और ध्यान से अनीश्वर गुणों (बुराइयों) को नष्ट कर देना चाहिये ॥७॥ जैसे पर्वत धातुओं के दोष धात्यता को नष्ट कर देते हैं उसी प्रकार इन्द्रियों से किए गए दोष चित्त-निग्रह से विनष्ट हो जाते हैं ॥८॥

चित्त को चित्त से शुद्ध करके, मन को मन से शुद्ध करके, भावनाओं को भाव से शुद्ध करके, बुद्धि को बुद्धि से शुद्ध करना चाहिए ॥९॥ चित्त के निर्मल हो जाने से शुभ और अशुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं और शुभाशुभ कर्मों से निर्मुक्त व्यक्ति निर्वन्द्र और निष्परिग्रह हो जाता है ॥१०॥ निर्मोही और निरहंकारी बनकर परम-गति को प्राप्त करता है । सूर्य का प्रातः काल में प्रथम लोहित रूप कृष्णमय कहा गया है ॥११॥ दूसरा मध्याह्न वेला का रूप शुक्ल यजुमय कहा गया है ॥१२॥ सायंकाल में तीसरा कृष्ण रूप सामय कहा जाता है प्रथम रूप राजस है, दूसरा सात्त्विक रूप है, ॥१३॥ तीसरा तामस रूप है और इसी की त्रिगुण कहा जाता है, इन्हीं तीनों के व्यतिरेक से चौथा सूर्यमण्डल होता है ॥१४॥ उस सूर्यमण्डल को तीन वेदविद्या में पारंगत सूर्य-सिद्धान्तवादी निविकार, सूक्ष्म और ज्योति प्रकाशक बताते हैं ॥१५॥ योंकार प्रणाव से युक्त योगी लोग ध्यान से पापों को नष्ट करके धीर भाव से पद्मासन<sup>१</sup> पर बैठकर नाभिस्थल पर हाथों को रखकर ॥१६॥

सुषुम्ना नाभि के मार्ग को कुम्भक, रेचक और पूरक<sup>२</sup> इन तीनों

१. योग-दर्शन के अट्टांग साधन में आसन भी एक है जिसके अनेक प्रकार हैं जैसे पद्मासन, वीरासन, भद्रासन शीर्षसन आदि दृष्टव्य चट्ठी और दस्त, भारतीय-दर्शन, पृ० १६३.

२. प्राणायाम के तीन अंग हैं—पूरक अर्थात् पूरा इवास भीतर खोंचना, कुम्भक अर्थात् श्वास को भीतर रोकना और रेचक अर्थात् नियमित विधि से इवास छोड़ना ।

प्राणायामों से शुद्ध करके देह में विद्यमान पांचों वायुओं<sup>१</sup> को शुद्ध करके ॥१७॥ पैर के अंगूठे से ग्रारम्भ करके क्रमशः क्षेत्र की ओर उठाते हुए नाभि प्रदेश में इन्धनविहीन अग्निदेवता को देखते हैं ॥१८॥ हृदय में सौष देवता को, मस्तक में पुनः अग्निशिखा को और इसके बाद वायु और रश्मि को न सहते हुए उसे भी भेद करके आदित्य-मण्डल तक पहुँचते हैं ॥१९॥ योग में लगा हुआ सावक व्यक्ति उससे भी आगे सूर्यमण्डल में जा पहुँचता है और वहाँ पहुँचकर फिर उसे कोई चिन्ता नहीं होती, वही सूर्य का परम-पद है ॥२०॥ इस सूर्य-साधना के क्रम में पहला स्थान हृदय है, दूसरा अग्नि स्थित है, तीसरा सूर्य और चौथा सूर्यमण्डल ॥२१॥ चौथे स्थान को ज्ञानी लोग देवताओं के स्वामी परमात्मा सूर्य का स्थान बताते हैं। और द्वितीय स्थान को भी ज्ञानी लोग देवताओं के स्वामी परमात्मा सूर्य का स्थान बताते हैं ॥२२॥ वही सूर्यमण्डल मनुष्यों का मोक्ष कहा जाता है, वह स्थान मनुष्य को संसार से विच्छिन्न कर देने वाला है। हे राजन ! याजकों के शास्त्रों की संगतिवश मैते यह ऋषियों का चरित्र तुम्हे बताया जिसे जानकर मोक्षतत्त्व जानने वाले व्यक्ति प्रवीण हो जाते हैं और सूर्यलोक को प्रा-त कर लेते हैं ॥२३॥ यह सहस्र किरणों वाले सूर्यदेवता का अमृत के समान श्रेष्ठ व्यक्तियों द्वारा जानने योग्य तत्त्व का सारभूत चरित्र है, जिसे जानकर मोह-बुद्धि-विहीन व्यक्ति मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं ॥२४॥

महापुरुषों द्वारा प्रतिपादित यह ज्ञान श्रद्धावान पुरुषों को ही देना चाहिए। जो अपना कल्याण चाहे वह इस ज्ञान को नास्तिकों और मूर्खों को कभी न दे ॥२५॥ इस प्रकार सार्व-पुराण का मोक्षज्ञान तामक २८वाँ अध्याय<sup>२</sup> समाप्त होता है।

१. ये पांच वायु हैं प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान।

२. तुलना कीजिए अग्निष्ठ-पुराण, १.१४५-२७, द्व-२१, २२व-२४, २५-२७.

## अध्याय २६

विशिष्ठ वीले—अब इसके बाद मैं क्रम से प्रतिमा का लक्षण बताऊँगा। जैसा कि साम्ब पर कृपा करने वाले नारद ने बताया था ॥१॥ प्राचीन काल में सूर्य की प्रतिमा नहीं थी। उसकी पूजा उसके मण्डल<sup>१</sup> द्वारा ही होती थी जैसा कि सूर्य का यह मण्डल आकाश में रहता है ॥२॥ ठीक इसी प्रकार प्राचीन काल में भी भक्तों द्वारा मण्डलाकार सूर्य पूजे जाते थे परन्तु जिस दिन से विश्वकर्मा<sup>२</sup> द्वारा ॥३॥ समस्त संसार के कल्याणार्थ सूर्य की पुरुषाकार प्रतिमा बना दी गई, प्रतिमा की स्थापना हो गई और विधिविधान पूर्वक उसका प्रमाण निश्चित हो गया तभी से प्रतिमा की पूजा चल पड़ी ॥४॥ नारद ने कहा—हे साम्ब ! मेरे द्वारा कहे जाते हुए समस्त संसार

१. प्रारम्भ में सूर्य की पूजा उसके नैसर्गिक रूप में होती थी। दृष्टव्य श्रीवास्तव, विनोद चन्द्र, सन वरशिप इन ऐनिसियन्ट इण्डिया पृ० २७३-७४ तथा पाण्डेय, लालता असाद, सन वरशिप इन ऐनिसियन्ट इडिए्प्प। सत्राजित के आख्यान में भी सूर्य प्रारम्भ में मण्डलाकार रूप में ही प्रकट हुए तदुपरान्त मानव रूप में दृश्यमान हुये देखिए विष्णु-पुराण ४.१३.१२-१५. तुलना कीजिए मार्कण्डेय-पुराण १९५. १-३ ; शतपथ-ब्राह्मण ७ ४. १.१०

२. यह दृष्टव्य है कि यहाँ सूर्य की प्रतिमा-परम्परा का श्रेय विश्वकर्मा को दिया गया है, मगरों को नहीं। यह विदेशी परम्परा को देशीय बनाने की ओर सकेत करता है। देखिए श्रीवास्तव, वही, पृ० २५७ पाद टिप्पणी ३६६.

के कल्याण के लिए सुनो । घर में प्रतिमा की स्थापना का कोई नियम कही भी नहीं है ॥५॥ मन से ही उन्हें स्थापित कर लेना चाहिए और वे सब कल्याणप्रद होती हैं किन्तु मन्दिर बनवाते समय भूत्ति की परीक्षा कर लेनी चाहिए ॥६॥ बुद्धिमान व्यक्ति को भूमि के लक्षण की परीक्षा यत्नपूर्वक कर लेना चाहिए । पहले भूमि की परीक्षा कर लेनी चाहिए । तटुपरान्त मन्दिर बनवाना चाहिए ॥७॥ सुगन्धित, नरम और चिकनी भूमि अच्छी मानी जाती है, जिसमें कंकड़, भूसी, बाल, हड्डी, शीशा अथवा अंगार हो ऐसी भूमि (में मन्दिर बनवाना) बजित है ॥८॥

जो भूमि मेघ और दुन्दुभि के समान स्वर उत्पन्न करे, समस्त बीजों की उगाने वाली हो, शुक्ल, रक्त, पीत और कृष्ण वर्ण वाली हो (ऐसी भूमि में मन्दिर बनाना चाहिए) ॥९॥ परीक्षा करके इन भूमियों में बीचों बीच क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को मन्दिर बनवाना चाहिए<sup>२</sup> । चारों ओर चार हाथ लीपकर और उसके ठीक बीच में एक हाथ दश अग्नि नींबे खोदकर ॥११॥ पहले एक गड्ढा बना ले और फिर उसे मिट्टी से भर

१. गंध शब्द का प्रयोग पृथ्वी के संदर्भ में एक विशेष अर्थ में भी होता है । वैशेषिकों के २४ गुणों में एक गन्ध भी बताया गया है । यह पृथ्वी की एक विशेषता प्रकट करता है । तैत्तिरीय साहित्य में गंधवती-पृथ्वी का उल्लेख आता है दृष्टव्य आप्टे, दी स्टुडेन्ट संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी पृ० १८०:

२. शूद्र द्वारा मन्दिर बनवाने का विधान भक्ति-परम्परा में अनुमोदित था । शुक्ल, रक्त, पीत और कृष्ण वर्णों को क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र से संबंधित बताकर तत्कालीन समाज में प्रचलित सामाजिक स्तर-विन्यास का परिचय दिया गया है दृष्टव्य धुरे, कास्ट, क्लास ऐन्ड अक्सेशन पृ० ७४.

दे, यदि उतनी मिट्टी से वह गड्ढा भर जाए तो वह भूमि सामान्य गुण वाली मानी जाती है और यदि उतनी मिट्टी से वह गर्त न भरे तो वह भूमि हीन गुण वाली होती है और यदि खोदी हुई मिट्टी गड्ढे भरने से भी ज्यादा हो जाए तो वह भूमि बड़ी वृद्धिकारिणी होती है। मन्दिर की नींव सूर्य के समक्ष मुख करके और कभी पीछे मुख करके भी स्थापित करनी चाहिए ॥१३॥ मन्दिर के दायीं और सूर्य का स्नानगृह होना चाहिए ॥१४॥ और मन्दिर के उत्तरी और कल्याणकारी अभिन्न-होत्र गृह होना चाहिए। उत्तर की ओर ही शंकर और माताओं का स्थान होना चाहिए ॥१५॥ पश्चिम की ओर ब्रह्मा और उत्तर की ओर विष्णु की स्थापना करनी चाहिए। सूर्य के दाहिनी ओर निकुंभा और बायीं ओर राज्ञी को होना चाहिए ॥१६॥

सूर्य के दाहिनी<sup>१</sup> ओर पिंगल और बायीं ओर दण्डनायक हो और अशु-माली के ठीक सामने लक्ष्मी और सरस्वती का स्थान हो। पूजा-गृह के बाहर द्वार पर दोनों अश्विनीकुमारों को होना चाहिए। और दूसरी पंचिन में राजा सूर्य के दोनों द्वारपालों को होना चाहिए ॥१८॥ तीसरी कक्षा में दोनों कल्माष पक्षियों को होना चाहिए और इसी प्रकार दाहिनी दिशा में जान्दक और माठर की स्थापना होनी चाहिए ॥१९॥ प्राप्त्युयान और क्षुताप को पश्चिमी दिशा में होना चाहिए और उत्तरी भाग में कुबेर और सौम को होना चाहिए ॥२०॥ इनसे भी उत्तर की ओर विनायक के साथ रेवन्त को होना चाहिए और जो सूर्य का स्थान बचता है ॥२१॥ वहाँ दाहिनी बायीं ओर दो मण्डल अर्ध्य के लिए बनाना चाहिए। उदयवेला में सूर्य को दक्षिण भाग में अर्ध्य देना चाहिए ॥२२॥ और अस्त हो जाने पर उत्तरी मण्डल में अर्ध्य देना चाहिए। मन्दिर के अग्र भाग में चार अस्त्र और चार शृंग वाले व्योमदेव को रखना चाहिए ॥२३॥ रश्मिकिरण सूत्र से प्रतिमा के

१. सूर्य के अनुचरों की स्थिति के विषय में देखिए साम्बपुराण, १८

ब्रीच का पण्डल बनाना चाहिए और आदित्य के ठोक समक्ष दिपिंड की स्थापना करनी चाहिए। इस प्रकार क्रमानुसार सूर्य-मन्दिर में यह देवताओं की स्थान-विधि बताई गई ॥२४॥

इति प्रकार साम्ब-पुराण का २६वाँ अध्याय<sup>१</sup> समाप्त होता है ।

१. तुलना कीजिए भविष्य-पुराण, १.१३०. ४२-५६, ५८-६०अ, और ६३ ब। इस अध्याय की तिथि ५००-६०० ई० के मध्य निश्चित की गई है देखिए हाजरा, वही ।

## अध्याय ३०

**विशिष्ठ बोले—**अब इसके बाद मूर्तिविधान को विस्तार पूर्वक बताता हूँ। भक्तजनों के कल्याण-वृद्धि के लिए सात प्रकार की मूर्तियाँ<sup>१</sup> बताई गई हैं ॥१॥ सीना, चौरी, तांबा, मिठी, शिला, वृक्ष और चित्र-ये सात वस्तुओं मूर्ति के लिये कही गई हैं ॥२॥ सूर्य की प्रतिमा बनाने के लिए श्रेष्ठ वृक्ष<sup>२</sup> इस प्रकार है—महुआ, देवदार, राजवृक्ष, चन्दन, बेल, आंवला खैर और चम्पा ॥३॥ नीम, श्रीपर्णि, अशन, सरल, अर्जुन और लाल चन्दन ॥४॥ बगों के क्रम से दो वृक्ष एक साथ बनाए गए हैं लेकिन नीम इत्यादि सभी वणों के लिए एक जैसे वृक्ष कहे गए हैं ॥५॥ दूध वाले वृक्ष मूर्ति बनाने मोग्य नहीं होते, वे स्वभाव से ही दुर्बल होते हैं। जो वृक्ष चौराहों पर

१. भत्स्य-पुराण, २६२, १४-२१ में शिला, लकड़ी, और मिथित वस्तुओं की देव-प्रतिमाओं का उल्लेख किया गया है। अध्याय २६३.२४-२५ में रत्न, स्फटिक, मिठी, और लकड़ी की शिव-लिंग बनाने का विधान किया गया है। गोपाल भट्ट ने हरिभक्तविलास में मृणमयी, दारूषटिता, लोहजा, रत्नजा, शैलजा, गन्धजा, तथा कौसुमी प्रकार की मूर्तियों का उल्लेख किया है। शुक्रनीतिसार (४.४.७२) में आठ प्रकार की मूर्तियों का उल्लेख किया है “प्रतिमा-संकती पैल्टी-लेख्या-लेप्या च मृणमयी । वार्षी पाषाण-धातूत्थास्थिरा ज्ञेया यथोत्तरा”। भोजदेव ने समरांगसूत्रधार (भाग २) १.१. में भविष्य एवं साम्ब-पुराणों के ही मूर्चों की पुनरावृति की है—सुवर्ण, रुप्य, ताम्र, दारु, लेख्य, सिकता, चित्र ये सात द्रव्य मूर्तियों के लिए हैं यद्यपि यहाँ पर मृणमयी मूर्तियों का उल्लेख नहीं किया गया है।

हों उन्हें भी प्रतिमा के लिए नहीं काटना चाहिये ॥६॥ जो वेङ्ग मन्दिर मे हो या जो दीमक की बाँधी पर पैदा हुए हों, जो वृक्ष चैत्यों में विद्यमान हों अथवा जिन पर देवताओं की मूर्तियाँ उट्टकित हों ॥७॥ जो वृक्ष मरघट पर हो, जिन पर पक्षी बसेरा लेते हो, जिनमें अनेक कोटर हों अथवा जिनका अपभाग सूख गया हो, वे प्रतिमा के योग्य नहीं होते ॥८॥

जो सूख गए हो, वायु अथवा अग्नि द्वारा नष्ट कर दिए हो, हाथियों के खाने से दूषित हों, ग्राम मे हो, ग्राम की धूलि से धूसरित हो, शूद्रों की बीट ले युक्त हो, बहुत छोटे हों, दुर्गन्ध वाले हो, वे प्रतिमा के योग्य नहीं होते ॥९॥ जो अकाल में हो फल और फूल देने वाले हों और समय आने पर उनसे विहीन हों, जिन पर विद्युत गिर गई हो, जो रुखे हों और जिन पर कोई बैठते हों, वे मूर्ति के योग्य नहीं हैं ॥१०॥ केवल एक, दो अथवा तीन शाखा वाले वृक्ष अधिम कहे जाते हैं। जो पवित्र तथा सम स्थान में हों केश तथा अग्नि वाले स्थानों में न उगा हो ॥११॥ जो वृक्ष जलमय प्रदेश में, कण्टक वजित सरोबर प्रदेश में, विस्तीर्ण स्कन्धों और डालियों वाला हो, पुष्पयुक्त हो, सीधा हो, गाँठ इत्यादि से विहीन हो ॥१२॥ कुवड़ा न हो, छोटा न हो, भंगकर न हो, ऐसा पवित्र वृक्ष मूर्ति के लिए ग्रहण करना चाहिए और उसकी कटाई भी कात्तिकादि आठ महीनों में ही करनी

१. तुलना कीजिए बृहत्संहिता, ५८ ( बनसंप्रवेगाव्याप ) ५६—  
देवदार, चन्दन, शमी और मधुक, ब्राह्मणों के लिये, अरिष्ट, अश्वत्थ, खदिर,  
और विल्व शब्दियों के लिए, जीवक, खदिर, सिन्धुक तथा स्वन्दन वैश्यों के  
लिए और तिन्दुक, केशर, सर्ज, अर्जुन, आम्र और साल शूद्रों के लिये शुभ  
होते हैं। देखिए विष्णुधर्मोत्तर-पुराण, भाग ३, अध्याय-८९ (देवालयार्थ  
दारुपरीक्षणम् ) तथा मानसार, १५ ( स्तम्भ-लक्षणम् ) २५१-३४५. पु०  
१०३ आदि में दारुपरीक्षण के नियम दिये गये हैं। मत्स्य-पुराण २५७, में  
दार्हण विधि का सविस्तार वर्णन किया गया है।

चाहिए ॥१३॥ प्रशस्त पुण्य नक्षत्र में, गुणयुक्त पवित्र दिन में और शुभ शक्तुन<sup>१</sup> होने पर उपवास करके वृक्ष के नीचे शयन करना चाहिए ॥१४॥ उस वृक्ष के नीचे की भूमि को बारों और उपलिप्त करके गायत्री मंत्र से पवित्र किए गये जल से पोंछकर, पहले कभी न धारण किये गए ऊपर नीचे के दो श्वेत वस्त्रों को पहनकर, गन्ध माला, शूष और सम्यक बलि-कर्म द्वारा वृक्ष को पूजा करनी चाहिए ॥१५॥

इसके पश्चात उस वृक्ष के समीप ही विष्णु हुए कुशों से युक्त हवन-कुण्ड में थज करके देवदारु की लकड़ियों से और इस मन्त्र द्वारा तत्त्व-जानी को यज्ञ करना चाहिए ॥१६॥ “सत्यसंव निरन्तर सृष्टि करने वाले चराचरात्मा प्रजापति विधाता को नमस्कार है । हे देव ! इस वृक्ष में अब आप निवास करें, सूर्य से विरे हुए मण्डल में प्रवेश करें” स्वाहा<sup>२</sup> ॥१७॥ इस प्रकार शान्ति के लिए इन वाक्यों से पूजा करके यह कहना चाहिए कि प्रकृति की शान्ति के लिए, हे वृक्ष ! अब तुम पवित्र देवालय में चलो ॥ १८॥ हे देव ! अब तुम काटने और जलाने से मुक्ति पाकर देव पदवी को प्राप्त करोगे । समय समय पर धूपदान, पुष्प और बलि-कर्म द्वारा ॥१९॥ संसार तुम्हारी पूजा करेगा जिससे कि तुम मोक्ष को प्राप्त हो जाओगे । इसी प्रकार धूष और पुष्प से वृक्ष की जड़ में कुत्ताड़ी की पूजा करनी चाहिए ॥२०॥ रात बीत जाने पर पुनः उस वृक्ष की पूजा करके, ब्राह्मणों और याजकों को दक्षिण देकर ॥२१॥ स्वस्ति बचन करते हुए पेड़ को काटना चाहिए । वृक्ष का पात पूर्व अथवा ईशान दिशा में होना चाहिए ॥२२॥ अथवा ऐसा करें कि उत्तर की ओर गिरे, और दूसरे हंग से नहीं काटना चाहिए, इन्हीं तीनों दिशाओं

१. बृहत्‌संहिता ५८ ( बनप्रवेशाध्याय ) में शुकुनों आदि का विचार दिया गया है ।

२. तुलना कीजिए बृहत्‌संहिता, ५८.१०-११.

में वृक्ष का गिरना उत्तम माना जाता है ॥२४॥

नैऋत्य, आम्नेय और दक्षिण दिशाओं में वृक्ष का गिरना मध्यम है ॥२५॥ जिस रमणीय वृक्ष की शाखाएं अत्यधिक हों सबसे पहले उन्हीं को काटकर तब निचले भाग को काटना चाहिए ॥२६॥ बिना जड़ से लगे और बिना शब्द किए पेड़ का गिरना शुभ माना जाता है । जिस वृक्ष का द्विदल ऊपर उड़े, जिससे पानी बहने लगे, ॥२७॥ जिसमें धी और तेल निकलने लगे ऐसे वृक्ष को छोड़ देना चाहिए और जिस में सूर्य-ब्रिम्ब दिखाई पड़ जाए तत्काल उसे काट लेना चाहिए ॥२८॥ ऐसे वृक्ष को गर्भ युक्त समझना चाहिए, यदि वह गर्भ पीले वर्ण का हो तो उसके भीतर गोधा रहती है और गर्भ काले रंग का हो तो लम्बा गुर्ज़ रहता है ॥२९॥ यदि गर्भ गुड़ के रंग का हो तो पत्थर रहता है और यदि कपिल वर्ण का हो तो गूह गोधिका रहती है । यदि गर्भ अग्नि के रंग का हो तो वहीं जल समझना चाहिए और यदि भजीठी के रंग का हो तो कीड़े होना चाहिए ॥३०॥ इन सारे दोषों में जो बचा हुआ वृक्ष हो वही श्रेष्ठ माना जाता है । उसे पहलवों से अच्छी तरह धोकर कुछ दिन संभालकर रखना चाहिए ॥३१॥ इस प्रकार साम्ब-पुराण में प्रतिष्ठापन-विधि<sup>१</sup> के संदर्भ में दारुपरीक्षा भास्क तीसवाँ अध्याय<sup>२</sup> समाप्त होता है ।

१. यह दृष्टव्य है कि इस अध्याय की एक भी पंक्ति बृहत्संहिता में नहीं पाई जाती जब कि भविष्य-पुराण में इसी विषय से सम्बन्धित पंक्तियाँ बृहत्संहिता से संग्रहीत लगती हैं तुलना कीजिए भविष्य-पुराण, १.१३१.४ = बृहत्संहिता, ५६-१; भविष्य-पुराण, १.१३१.१४-१६ = बृहत्संहिता, ५६.५-७, भविष्य-पुराण, १.१३१.४२व-४५ = बृहत्संहिता, ५६.१२-१३.

२. तुलना कीजिए भविष्य-पुराण, १.१३१ तथा १.१३२ । यह अध्याय साम्ब-पुराण के मूल भाग का अंश है अस्तु इसकी तिथि ५००-६०० ई० के मध्य निश्चित की गई है देखिये हाजरा, वही

## अध्याय ३९

विशिष्ट बोले—अब इसके उपरात्त में क्रम से प्रतिमा-लक्षण<sup>१</sup> बताऊँगा। प्रतिमा को एक, दो अथवा तीन हाथ का होना चाहिए ॥१॥ साथ ही साथ साढ़े तीन हाथ की भी सूर्य की मूर्ति शुभ मानी जाती है अथवा फिर राज-महल अर्थात् मन्दिर अथवा द्वार का भी प्रमाण श्रेष्ठ माना जाता है ॥२॥ निरन्तर कल्याण की इच्छा करने वाले को उसी को प्रमाण बना लेना चाहिए। एक हाथ की सूर्य-मूर्ति सुन्दरता देने वाली होती है और दो हाथ की मूर्ति धनधान्य देने वाली ॥३॥ सूर्य की तीन हाथ की मूर्ति समस्त अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाली कही गई है<sup>२</sup> और माढ़े तीन हाथ की मूर्ति प्रचुर अन्न देने वाली और कल्याण करने वाली होती है ॥४॥ जो प्रतिमा ऊपर, नीचे और बीच में, छारों और कान्तियुक्त होती है ऐसी प्रतिमा को गान्धर्वी कहते हैं और वह प्रभृत धनधान्य देने वाली होती है ॥५॥ देव-मन्दिर का जो द्वार है उससे अष्टांग भर स्थान छोड़ देना चाहिए। तीसरे भाग में वेदी बनानी

१. प्रतिमा-माप-शास्त्र भारत में एक विकसित विज्ञान के रूप में स्थापित था दृष्टिव्य बनजी, जे०, एन०, डेवलेपमेन्ट आफ हिन्दू आइकोनोशियाफी, अध्याय ८, मिस्र, यूनान तथा अन्य प्रौच्चीन देशों में भी मूर्ति माप-शास्त्र का विकास किया गया था देखिए मार्डनर, इ०, ए०, ए हैंडबुक आफ प्रीक स्कल्पचर; तथा जीन कपार्ट, इजिपशियन आर्ट।

२. तुलना कीजिए बृहत्-संहिता, ५७.४६—“सौम्यातु हस्तमात्रा वनुदा हस्ताद्वयोच्छ्रुता प्रतिमा क्षेमसुभिक्षाय भवेत् त्रिचतुरहस्त प्रमाण या ॥”

चाहिए, दो भाग में प्रतिस्था। अपने अंगूल<sup>१</sup> से ८४ अंगूल<sup>२</sup> मूर्ति होती है और बारह अंगूल का मुख का विस्तार<sup>३</sup> होता चाहिए ॥७॥ मुख के तीन भाग हों—चिबुक, ललाद और नासिका। दोनों कान नासिका की सिधाई में हों ॥८॥

तेज दो अंगूल के हों और उसका तृतीय अंश तारक हो, पुतली के तीसरे भाग, दृष्टि को विशेषज्ञ<sup>४</sup> को बनाना चाहिए ॥९॥ मस्तक

१. अंगूल भारत में जाप की एक प्राचीन इकाई थी दृष्टव्य शूरवेद, १०.६०, शतपथब्राह्मण, १०.२.१.२.। मानांगूल, मात्रांगूल और देहलबधांगूल—ये तीन प्रकार के अंगूल बताये गये हैं। मात्रांगूल और देहलबधांगूल के बाधार पर मूर्ति का निर्माण किया जाता था। देखिये चन्द्रों, जे०, एन०, वही, पू० ३१७-१८। ‘अंगूलैः स्वैः’ के लिये तुलना कीजिए बृहत्संहिता, ५७.४. तथा शुक्लोतिसार, ४-४-८२।

२. बृहत्संहिता, ६८.७ के अनुसार पांच प्रकार के मनुष्यों—हंस शाश, रुद्र, भद्र और मालव्य की ऊँचाई और चौड़ाई क्रमशः ६६, ६६, १०२, १०५ और १०६ अंगूल होता चाहिए। देवी-देवताओं की मूर्तियाँ मुख्यतः प्रथम और अन्तिम प्रकार की बनाई जाती हैं। सूर्य की यह मूर्ति केवल ८४ अंगूल की बताई गई है। बृहत्संहिता, ६८.१८ में भद्र प्रकार की मूर्ति को ८४ अंगूल का बताया गया है। प्रस्तुत मूर्ति को इसी श्रेणी में रखा जा सकता है। वैद्यानसागम के अनुसार सूर्य की मूर्ति ११६ अंगूल की बनानी चाहिए।

३. बृहत्संहिता, ५७.९ में “विस्तार” का टेक्निकल अर्थ है—चौड़ाई की माप। इसके पर्याय हैं विस्तीर्ण, वित्त, पृथुल, विपुल।

४. “विचक्षण” के अर्थ विशेषज्ञ के लिए देखिए रघु० १३.६८.

(परिणाह<sup>१</sup>) विस्तार ३२ अंगुल होना चाहिए। ललाट-मस्तक (उत्सेष्वे) उक्त-शील बनाना चाहिए ॥१०॥ नासिका के ही बराबर शीवा हो और मुख के बराबर हृदयान्तर, मुख के ही बराबर नाभि प्रदेश और उसके बांद लिङ्ग ॥११॥ वक्षस्थल मुख-विस्तार के बराबर हो और उसका आधा कटि प्रदेश। भुजाएं लम्बी हों और उसी की भाँति ऊरु और जंघे भी बराबर हों ॥१२॥ मुखों के बीच चरण हो जो कि ४ अंगुल ऊँचा हो। चरण का विस्तार ६ अंगुल हो और उसमें भी अंगूठा ३ अंगुल का ॥१३॥ प्रदेशिनी अंगुली भी उसी के बराबर हों और शेष अंगुलियाँ क्रम से छोटी हों। पैर का विस्तार चौदह अंगुल बताया गया है ॥१४॥ इस प्रकार लक्षण-युक्त प्रतिमा का पूज्य स्वरूप होता है। स्कन्ध-प्रदेश, भुजाएं, ऊरु, भाँहें, ललाट और नासिका ॥१५॥ तथा कपोल-प्रदेश समुच्चत बनाना चाहिए। ध्वलवर्ण कुछ कुछ लाल, घरीनियों से युक्त विस्तीर्ण नेत्र वाले ॥१६॥

मुस्कराते हुए मुखकमल वाला, रमणीय विम्बाधर से युक्त, रत्नों से जगमगाते हुए मुकुट वाला, बलय, अंगद और हार से युक्त ॥१७॥ अव्यंग, पदबन्ध आदि समायोगों से सुशोभित सुन्दर भुजा-मण्डल वाला और विचित्र सणि कुण्डलवाला ॥१८॥ हाथों से कंचन वर्ण के हस्तकमल की धारण किए हुए-इस प्रकार के लक्षणों से युक्त सूर्यमूर्ति का आकार<sup>२</sup>

१. वृहत्संहिता, ५७.१४, १५, १६, २१, २२, २४, २६ के अनुसार “परिणाह” का टेक्निकल अर्थ है घेरा का माप। इसका पर्यायिकाची है परिधि।

२. वृहत्संहिता, ५७.१६ में “उत्सेष्व” का टेक्निकल अर्थ है ऊचाई की माप, इसके पर्याय है आयाम, मान।

३. सूर्य-प्रतिमा का यह रूप वृहत्संहिता, ५७-४६-४८ में वर्णित सूर्य-प्रतिमा लक्षण से मिलता है तुलना कीजिए। विष्णुधर्मोत्तर-पुराण, ३.६७.२-११.

होना चाहिए ॥११॥ ऐसा होने पर सूर्य प्रजाओं को कल्याण, आरोग्य और अभय देने वाले होते हैं। यदि प्रतिमा अधिक अंग वाली हुई तो राजभय होता है और हीन अंग वाली हुई तो विपत्ति आती है। व्यात होने पर नेत्रपीड़ा, कृश होने पर दरिद्रता, खरोच होने पर शस्त्र-भय और कटने पर मृत्यु होती है ॥२१॥ दाहिनी ओर झुकी रहने पर निरन्तर आयु का संहार करने वाली होती है और उत्तर की ओर झुकने पर निश्चय ही प्रियजन का वियोग होता है ॥२२॥ जो न बहुत चमक दमक वाली हो और न द्युतिहीन हो ऐसी सरल मूर्ति प्रशंसित होती है इसलिए इहलोक और परलोक बनाने वाले सूर्यभक्त को चाहिए ॥२३॥ कि सुन्दर पवित्र मूर्तियों को बनवायें क्योंकि सम्पत्तियाँ उन्हीं के आधीन हैं। मस्तक, करु, कपोल और बदन समस्त अंगावयवों से युक्त सूर्य की प्रतिमा मनुष्यों का कल्याण करती है। इस प्रकार साम्बपुराण में इकतीसवाँ<sup>१</sup> अध्याय<sup>२</sup> समाप्त होता है।

१ तुलना कीजिए भविष्य-पुराण, १.१३२.१-२४.

२. यह अध्याय साम्ब-पुराण के मूल भाग में आता है अस्तु इसकी तिथि ५००-८०० ई० के मध्य निश्चित की गई है हाजरा, बहो। यह भी स्मरणनीय है कि प्रतिमालक्षण में माप की इकाई अंगुल का ही उल्लेख किया है, ताल जो कि उत्तरकालीन शास्त्रों में प्रतिमा के माप की इकाई बताई गई है, का उल्लेख यहाँ नहीं किया गया है।

## अध्याय ३२

वशिष्ठ बोले—तदुपरान्त शास्त्रसमस्त कर्मकाण्ड से मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा<sup>१</sup> करनी चाहिए। समुद्र, गङ्गा, यमुना, ॥१॥ सरस्वती, चन्द्रभागा, सिंचु, पुष्कर<sup>२</sup> और पर्वत से निकले हुए प्रपात से श्रेष्ठ जल ले आकर ॥२॥ और इसी प्रकार जो अन्याय नदी, नद तथा सरोवरों के जल हैं उन्हें यथाशक्ति स्वरिणादि के कलशों में ले आकर ॥३॥ तत्पश्चात् मणिरत्नों, समस्त बीजौ-षधियों, सुगन्धित मालाओं, स्थल पर उगने वाले कमलों ॥४॥ चन्दनों और नाना प्रकार के अन्याय सुगन्ध, ब्राह्मी, सुवर्चला, नागरमोथा, विष्णुक्रान्ता, शतावरी ॥५॥ दूब, शंखुपुष्पी, प्रियंगु (केसर कुंकम) एवं नील-इन सब आवश्यक वस्तुओं को विविध कर्मविधिवत् एकत्र करके ॥६॥ बरगद, पीपल और

१. देवता-प्रतिष्ठा पुराणों एवं निबन्धों का प्रिय विषय है विस्तार एवं तुलनात्मक अध्ययन के लिए देखिए मत्स्य-पुराण, २६४-६६, अग्नि-पुराण, ६० तथा ६६; रघुनन्दन; देवत्रिष्ठातत्त्व; पृ० ५०५; धर्मसिन्धु, ३. पृ० ३३३-३३४ वैखानसस्मितिसूत्र ४.१०-१५. यह दृष्टव्य है कि मत्स्य-पुराण, में प्राण-प्रतिष्ठा का उल्लेख नहीं किया गया है।

२. ये सरितायें उत्तर भारत से सम्बन्धित हैं अस्तु यह निष्कर्ष निकाला गया है कि साम्ब-पुराण की रचना मूलतः उत्तर भारत में की गई देखिए हाजरा, दी साम्ब-पुराण, ए सौर वर्क आफ डिपरेन्ट हैन्ड्स; अनाल्स आफ भन्डारकर ओरियन्टल रिचर्स इन्सटीच्यूट, भाग ३६, १९५५ पृ० ६२ आदि।

शिरीष के पल्लबों और कुशों से युक्त कलशों द्वारा प्रतिष्ठापित सूर्य को स्नान के लिए जल देना चाहिए ॥७॥ सोने, चाँदी, ताँबे, और मिट्टी के बने हुए कलशों द्वारा अक्षत, सोना और समस्त औषधियों के साथ ॥८॥

गायत्री मंत्रपाठ से पवित्र करके आठ बार सूर्य को स्नान करना चाहिए, इसके बाद पके हुए ईटों से बनी वेदी को कुशयुक्त करके ॥९॥ उस वेदी पर मूर्ति को चढ़ा कर और वस्त्र पहनाकर। प्रयत्नपूर्वक उपवास करके प्रतिमा का अभिषेक करना चाहिए ॥१०॥ मस्तक पर समस्त औषधियाँ एवं आमलक चढ़ाकर सूर्य देवता के ऊपर जल छिड़कते हुए यह वाय्य कहता चाहिए-ब्रह्मा, विष्णु और महेश आदि देवता आपका अभिषेक करे। आकाश गंगा के जल से भरे प्रथम कलश से वे आपका अभिषेक करें ॥१२॥ हे दिवस्पति ! भक्तिभाव से पूर्ण मरुत मेघ के जल से परिपूर्ण दूसरे कलश में आपका अभिषेक करें ॥१३॥ श्रेष्ठ देव लोकपाल विद्याधरण आकर सारस्वत जल से परिपूर्ण (तृतीय) और ॥१४॥ सामर जल से पूर्ण चौथे कलश से आपका अभिषेक करें ॥१५॥ नागण कमल पराग से सुगन्धित जल से परिपूर्ण पांचवे कलश से आपका स्नान करें। हिमाचल और हैम-कृष्णादि पर्वत ॥१६॥

प्रपातों के जल से परिपूर्ण छठे कलश से अपको स्नान कराएँ। हे दिवस्पति ! समस्त तीर्थों के जल से परिपूर्ण सातवें कलश से आकाशचारी सप्तशिखि<sup>१</sup> तुम्हें स्नान कराएँ और आठों मंगल<sup>२</sup> से युक्त आठवें कलश से

१. सात ताराओं के सात ऋषि — मरीचि, अन्ति, अंगिरस, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वशिष्ठ बताये गये हैं।

२. कुछ विद्वानों के अनुसार आठ मंगल ये हैं— मूर्यराज, वृष, नाग, कलश, व्यजन, वैजयन्ती, भेरी एवं दीप। अन्य विद्वानों के अनुसार ब्राह्मण, गऊ, हुताशन, हिरण्य, सर्पि, आदित्य, जल और राजा—ये आठ मंगल हैं। देखिए आप्ते, संस्कृत-हिन्दी कोश, पृ० १३४.

वसुगण ? आपको स्नान कराएँ ॥ १८ ॥ हे देवाधिदेव ! आपको बारम्बार नमस्कार है । इस प्रकार स्नान-कर्मविधि जानने वाले व्यक्ति को स्नान कराने के बाद कहना चाहिए ॥ १९ ॥ इसके पश्चात् वर्धनिका<sup>१</sup> उठाकर जलधारा छोड़नी चाहिये और 'आचमस्व' कहकर तीस बार सूर्य के सामने गिराना चाहिए ॥ २० ॥ इसके बाद किसी अन्य पवित्र स्थान में भली भाँति लेप करके चावल और पंचराग से चौक पूरना चाहिए ॥ २१ ॥ पताका, तोरण, छत्र, ध्वज और माला आदि से उस स्थान को अलंकृत करना चाहिए । चित्र विचित्र मालाओं और बिखेरे गए पुष्प-समूहों से युक्त वह स्थान होना चाहिए ॥ २२ ॥ उसके बीच में कुश के बिस्तरे पर विवस्वत् अर्थात् सूर्य की मूर्ति को स्थापित करके उसका आवाहन करके भक्तिपूर्वक अर्घ्य देना चाहिए ॥ २३ ॥ सुवर्ण, मधुपक्क, पुष्पदीप और धूप आदि से सूर्य देवता की उपासना करके बछड़े सहित पवित्र लाल गाय को दान में देना चाहिए ॥ २४ ॥

ओम ! किरणों के स्वामी को प्रणाम है, हे सहस्रांशु ! आप मुझ पर प्रसन्न हों । इस प्रकार कहकर मन्त्र से पूजा करके बस्त्र पहनकर ॥ २५ ॥ यज्ञोपवीत लपेटकर और चन्दन, अगुरु, कुंकुम आदि सभी गन्धों से उपलेपन करके ॥ २६ ॥ सुगन्धित पुष्पालंकारों से अलंकृत करके और विविध प्रकार की मालाओं से अनेकशः आबढ़ करके ॥ २७ ॥ तब भक्तिपूर्वक धूप और नैवेद्य देना चाहिए ॥ २८ ॥ अग्नि जलाकर विधिपूर्वक शान्ति करनी चाहिये और इसके बाद भलीभाँति स्नान कराई गई और मणि-रत्न-विभूषित ॥ २९ ॥ प्रतिष्ठित की गई प्रतिमा को देव-मन्दिर से ईशान दिग्भाग में अधिवासित करना चाहिए ॥ ३० ॥ विछ्ने हुए कुशों से युक्त और धोष्ठ विछ्नीने से ढके

१. वसु एक प्रकार के देवता हैं जिनकी संख्या आठ कही गई है-आठ अथवा अह, ईशु, सोम, धर अथवा धव, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास-

२. 'वर्धनिका' से अभिप्राय एक विशेष स्वरूप के कलश से है ।

हुए भाग में पूर्व की ओर सिरहाना बनाकर पवित्र शश्या बनानी चाहिए जो अत्यधिक श्वेत वस्त्रों से ढकी हो ॥३१॥ उसी शश्या पर पहले कहौं गई महाश्वेता को भलोभाँति सुलाना चाहिए । दाहिने भाग में निक्षुभा को और बायें भाग में राजी की स्थापित करना चाहिये ॥३२॥

दण्ड और पिंगल की पैर की ओर स्थापित करना चाहिए<sup>१</sup> इस प्रकार शंख के समान श्वेत उस शश्या पर सूर्य की प्रतिमा को सुलाना चाहिए ॥ ३३ ॥ रात भर चारों ओर से ब्राह्मणों, बन्दियों और गीतज्ञों द्वारा स्तवन होना चाहिए और सूर्य के प्रति भक्तिभाव से रात्रि जागरण करना चाहिए ॥३४॥ प्रभात होने पर पुनः जगाना चाहिए । विधिपूर्वक ब्राह्मणों, और याजकों को हविष्य खिलाना चाहिए ॥३५॥ स्वस्तिवाचन करने के बाद दक्षिणा दृत्यादि से पूजा करके दीनों, अंधों, कृपणों, इन सबकों अब से सन्तुष्ट करना चाहिए ॥३६॥ इसके पश्चात् पिण्डिका की गर्भगृह स्थान के शीच में रखकर उसके खोले भाग में स्वर्णनिमित सात छोड़ों याला रथ स्थापित करके ॥३७॥ समस्त वीजौषधियों को विधानपूर्वक दान देकर अर्ध्य प्रदान कर मूर्ति को स्थापित करना चाहिए ॥३८॥ शंख-दुन्दुभि के धोष से और हाथ में अक्षत लेकर पुण्याहवाचन करके मन्दिर की प्रदक्षिणा करके शुभलग्न दिन में, नक्षत्र दिन के पहले भाग, और सूर्यनुकूल क्षण में सूर्य की मूर्ति की स्थापना करनी चाहिए ॥४०॥

१. इसी प्रकार की सूर्य-प्रतिमा का विधान विष्वकर्मशिल्प, उद्धरित टी०; ए० जी० राव, ऐलीमेन्ट्स आफ हिन्दू आइकोलोगिको, भाग १ (२) पृ० ३०२, में भी किया गया है ।

२. यहाँ कृपण से अभिप्राय, असहाय दरिद्र से है जैसा कि उत्तरराम-चरित, ४.२५ में प्रयुक्त हुआ है—राजश्वपत्यं रामस्ते पात्याश्च कृपणः प्रजाः ।"

प्रतिमा न अघोमुखी हो, न ऊर्ध्वमुखी, न करबट के बल हो, और न शूकी हुई हो। वह समरूप हो और सामने देख रही हो ॥४१॥ इसके बाद सूर्य की दोनों स्त्रियों को स्थापित करता चाहिए, निकुञ्जा को दायी और और राज्ञी को बायी और ॥४२॥ पिगल दाहिनी और, दण्डनायक बायी और स्थापित किये जाएँ । इसके बाद पुनः विधिपूर्वक अन्न-स्थापना करके ॥४३॥ यज्ञमान की शान्ति के लिए शान्ति-कर्म-विधान को जानने वाला पिण्डत समस्त देवताओं के लिए स्वाहा शब्द का उच्चारण करता हुआ होम कराए ॥ ४४ ॥ इसके पश्चात पहले से ही एकत्र किए गए उपहार देने की सामग्रियों द्वारा और स्तुतियों द्वारा सूर्य को सन्तुष्ट करना चाहिए । सामग्रियों इस प्रकार हैं—लड्डू, मालपुआ, बरा, ॥४५॥ खिचड़ी, खीर, दूध, मधु और घी-इन सामग्रियों को समस्त दिशाओं में केंक देना चाहिए, स्तोत्रों द्वारा सूर्य की पूजा करते हुए दूध, मधु और पिघलाये हुये भी द्वारा तर्पण करना चाहिए ॥४६॥ इसके बाद विप्रों और याजकों को दक्षिणा देनी चाहिए । सूर्य का यज्ञ अत्यधिक पुण्य से प्राप्त होता है इसलिए दक्षिणा देनी चाहिए ॥४७॥ इस विधि से मेरे भक्तों द्वारा जो प्रतिमा स्थापित की जाती है वह निरन्तर बृद्धि करने वाली होती है और वहाँ मेरा सानिध्य निरन्तर रहता है ॥४८॥

चारों वर्णों<sup>१</sup> में जो भी सूर्य की स्थापना करता है वह सारे संसार के पार करके सूर्यलीक में आदर प्राप्त करता है ॥ ४९ ॥ जो मनुष्य सूर्य की

१. यह दृष्टिभ्य है कि सौर मन्दिर बनवाने का अदिश चारों वर्णों के लिये था, शूद्र को मन्दिर आदि सार्वजनिक हित के कायों (अर्थात् पूर्तिधर्म) का अधिकार था देखिए अन्ति, ४६, लघुशास्त्र, ६, अपराह्न २४, काणे पी०, बी०, हिन्दू अरफ धर्मशास्त्र, भाग २ (२). पृ० १५७. । यह तथ्य मण-परम्परा के सूर्य-सम्प्रदाय की लोकप्रियता का कारण माना जा सकता है । देखिये हाजरा, स्टडीज, भाग, १.

स्थापना का दृश्य देखते हैं अगले सात जन्मों में वे निरोग ही पैदा होते हैं ॥५०॥ जो लोग गन्ध, माला और उपहार से तीन रात तक सूर्य की उपासना करते हैं वे श्रेष्ठ गति प्राप्त करते हैं ॥५१॥ सूर्य की प्रतिमा-स्थापना, अपनी ही या पराई, जो मनुष्य भक्तिपूर्वक देखता है वह पाप से मुक्त हो जाता हे ॥५२॥ दस अश्वमेध और सौ वाजपेय यज्ञों का फल मनुष्य सूर्य की स्थापना करके प्राप्त कर लेता है ॥ ५३ ॥ जितने दिन तक सूर्य-मन्दिर बनवाने से उस पुण्यात्मा की कीर्ति बनी रहती है, हे यज्ञ-श्रेष्ठ साम्ब ! उतने समय तक वह सूर्य-लोक में आदर प्राप्त करता है ॥५४॥ शास्त्रीय रीति से और भक्तिपूर्वक सूर्य की स्थापना करके मनुष्य प्रतिमास यज्ञ का फल प्राप्त करता है इसमें कोई संशय नहीं ॥५५॥ सूर्य की एक दिन को भी पूजा से मनुष्य जो फल प्राप्त करता है वह फल न व्रत से, न उपवास से और न दान से प्राप्त कर सकता है ॥५६॥

पहले बड़े से बड़ा पाप करके भी बाद में जो सूर्य की पूजा करता है वह मनुष्य निष्पाप होकर सूर्य-लोक जा पहुँचता है ॥५७॥ जब तक वह सूर्यलोक में रहता है तब तक सर्वसुख भोगता है ॥ ५८ ॥ इस प्रकार उस व्यक्ति की इतना सुख मिलता है । जीवों की स्थिति, संहार और जन्म का कारण बनने वाले उन सूर्य की जो सेवा करता है वह लक्ष्मी का भागीदार होता है और सौ कल्प भर सूर्य-लोक में रहता है ॥५९॥ जो व्यक्ति प्रयत्नपूर्वक देवताओं का मन्दिर बनवाता है उसकी कीर्ति विशाल होती है और पीढ़ी दर पीढ़ी बढ़ती जाती है ॥ वह दिव्य इच्छाओं को पूर्ण करता है और पृथ्वी में चक्रवर्ती होता है ॥६०॥ जो मनुष्य देवताओं की मूर्ति के लिए मंदिर बनवाते हैं मर जाने के बाद भी उनके अपरमार्थमय शरीर के नष्ट हो जाने पर भी उनका कीर्तिमय शरीर इस संसार में पर्यटन करता रहता है ॥ ६१ ॥ इस प्रकार

१. पूर्त-कृत्यों की महत्ता के लिये देखिये कालिका-पुराण, उद्धरित कृत्यरत्नाकर, पृ० १०.

ऋषि तारद विष्णु-पुत्र साम्ब को विधि का उपदेश देकर चले गये और साम्ब ने भी सूर्य देवता के इस श्रेष्ठ मन्दिर को अपने नाम से भवितपूर्वक बनवाया ॥६२॥ इस प्रकार साम्ब-पुराण में प्रतिमा-कल्प नामक बत्तीसवाँ अध्याय<sup>१</sup> समाप्त होता है ।

१. तुलना कीजिए भविष्य-पुराण, १.१३३, १.१३५, १.१३६,  
१.१३७। इस अध्याय की तिथि ५००-८०० ई० के मध्य निश्चित की गई है देखिए हाजरा, वही ।

## अध्याय ३३

नारद बोले—अब इसके बाद श्रेष्ठ ध्वजारोपण वृत्तान्त<sup>१</sup> कह रहा हूँ । प्राचीन काल में देवासुर-युद्ध में जय चाहने वाले देवताओं ने युद्ध करने के लिए ॥१॥ अपने ऊपर चिन्ह बनाये और विचित्र बाहन बनाए जिसे कि लक्ष्म, चिन्ह, ध्वज और केतु इन पर्याय नामों से पुकारा गया ॥२॥ अब पहले कहे गये उस ध्वजा<sup>२</sup> का प्रमाण सुनो । पताका का बांस वही बनाना चाहिए जो विधा न हो, सीधा हो और चित्तहरहित हो ॥३॥ ध्वजवंश प्रमाण की दृष्टि से मन्दिर के बराबर ऊँचा होना चाहिए । ध्वजा के बांस से लटकती हुई पताका ध्वज से प्रयुक्त करनी चाहिए ॥४॥ देवमन्दिर के शिखर से तीन भाग ऊँची, उचित वस्त्र वाली, विचित्र धंडायुक्त और मनोहर होनी चाहिए ॥५॥ ध्वजा के अग्रभाग में देवता के लिंग की सूचना देने वाले उसके बाहन की आकृति सोने, चाँदी अथवा मणिरत्नों से युक्त ॥६॥ अथवा रंग से ही विचित्र होनी चाहिए जैसे विष्णु के ध्वजा<sup>३</sup> पर गरुड का चिन्ह और

१. इस अध्याय को ७००—८५० ई० के मध्य प्रक्षिप्त किया गया माना जाता है देखिए हाजरा, आर०, सी०, स्टडीज, भाग १ पृ० ५७.

२. ध्वज-स्थापना की परम्परा प्राचीन भारत में अत्यधिक प्रचलित थी विस्तार के लिए देखिए बनर्जी, जे०, एन०, इन्डियन बोटिव ऐन्ड मेमो-रियल कालम्स, जर्नल आफ इण्डियन सोसाइटी आफ ओरियन्टल आर्ट (कुमारस्वामी वाल्यूम,) भाग ५, पृ० १३-२०.

शंकर की छवजा पर बैल का चिन्ह ॥७॥ ब्रह्मा की छवजा पर कमल, सूर्य की छवजा पर व्योम, वरुण की छवजा पर हंस, कुबेर की छवजा पर मनुष्य ॥८॥

कार्तिकेय की छवजा पर मयूर, हेरम्ब की छवजा पर चूहा, इन्द्र की छवजा पर हाथी, यमराज की छवजा पर महिषा ॥ ९ ॥ दुर्गा की छवजा पर सिंह, इस प्रकार छ्वज की कल्पना की गई है। जो जिसका वाहन है वही उसकी छवजा कहा गया है ॥१०॥ इसके पश्चात् विधिपूर्वक समस्त औपधियों से छ्वज को स्नान कराकर बीच में मंगल-सूत्र बाँधना चाहिए ॥११॥ पवित्र वेदी बनाकर मंगल कलशों से शोभित करके उसी वेदी पर छवजा को चढ़ाकर उस रात्रि में वही सोना चाहिए ॥ १२ ॥ नाना प्रकार के पुष्पों और रग-विरंगी मालाओं को छवजा में लटका देना चाहिए और विधिपूर्वक अभ्यर्चना करके छवजा को धूप निवेदित करना चाहिए ॥१३॥ इसके पश्चात् खिचडी, पुआ, माँस<sup>१</sup>, और लप्सी, दधि, खीर और लड्डू से पूजा कार्य करना चाहिए ॥१४॥ लोकपालों को उदिष्ट करके पूजा वायु में फेंक देनी चाहिए। और इसी प्रकार पुण्यवाचन किये हुये ब्राह्मणों को भी भोजन करना चाहिए ॥१५॥ बाजों की उठती हुयी छवनि से युक्त, जै-जैकार के शब्द से सकुल ऐसे शुभ लग्न, दिन, और नक्षत्र में मन्दिर पर छवजा चढ़ाना चाहिये ॥१६॥

इस प्रकार जो व्यक्ति देव-मन्दिर के ऊपर छवजा चढ़ाता है वह निरन्तर लक्ष्मी की कृपा से बढ़ता है और श्रेष्ठ गंति प्राप्त करता है ॥१७॥ छवज-

१. पूजा-कर्म में माँस का प्रयोग तान्त्रिक प्रभाव को प्रकट करता है। यह भी दृष्टव्य है कि ऊपर श्लोक ९ में गणेश का नाम हेरम्ब बताया गया है जो गणेशोपसना की तान्त्रिक परम्परा से मुख्यतः सम्बन्धित था, देखिए गेटे, अलिस, गणेश, ।

झीन मन्दिर में देवता कोई भी वस्तु ग्रहण नहीं करते हैं। अब ज-स्थापन का मंत्र तो मूर्ति की स्थापना के प्रसंग में ही इता दिया गया है ॥१८॥ अब ज-रोपण का मंत्र यह है-शंकर द्वारा विनियमित वायु का अनुसरण करने वाले लक्ष्मी के वाहु-स्पर्श, विष्णु शत्रुओं का विनाश करने वाले हैं। भववान आओ आओ निरन्तर सातिध्य करो, मेरी शान्ति हो। मेरा कल्याण हो, मेरे समस्त विघ्न दूर हो जायें। स्वाहा...” इस प्रकार साम्ब-पुराण में अब ज-रोपण नामक तीतीसवाँ अध्याय<sup>१</sup> समाप्त होता है ।

१: तुलना कीजिए अधिष्ठ-पुराण, १.१३८, १अ, २-४, २१ब-२२अ, ३४ अ, ३५-३६ अ, ३७-३८अ, ५३ अ, ४०ब, ४७, ३९अ, ४१ब, ६४-६६, ७० अ, ७१अ, ७२अ, ७३अ और ७६अ



## अध्याय ३४

वशिष्ठ ने कहा—सूर्य की स्थापना के एक वर्ष पूरे ही जाने पर साम्ब ने धुनः शृणि-श्रौठ नारद से पूछा ॥१॥ साम्ब ने कहा—हे देवर्षि ! भगवान् सूर्य को स्थापित किये हुए एक वर्ष पूरे हो गये, अब उनकी वार्षिक पूजा कैसे की जाये ॥२॥ नारद बोले—हे साम्ब ! जैसे पहले कहे गये विधान के अनुसार प्रतिमा-स्थापना कार्य हुआ था उसी प्रकार एक वर्ष पूरा हो जाने पर स्नान-कर्म-विधान के जानने वाला व्यक्ति तीर्थों से जल को ले आकर और अन्यान्य पवित्र जलों को भी लाकर पूर्वोक्त विधान के अनुसार प्रतिमा की स्नान कराये ॥३॥ तीर्थों के नाम जप करे और बाद में मनसा स्मरण करे कि पुष्कर, नैमिष, कुरुक्षेत्र, पृथूदक<sup>१</sup>, ॥४॥ गंगा, सरस्वती, सिंधु, चन्द्रभागा, नर्मदा, पयोङ्गी<sup>२</sup>, यमुना, ताम्रा, क्षिप्रा, वैत्रवत्ती<sup>३</sup> ॥५॥ तथा सभी

१. सरस्वती के दक्षिण तट पर, एक पवित्र तीर्थ; आधुनिक पिहोवा (जिला कर्नाल, पंजाब) महाभारत, वनपर्व, द३.१४७ के अनुसार “पृथूदका तीर्थतमं नान्यतीर्थं कुरुद्धृ” देखिए वास्तव-पुराण, २२.४४.

२. विद्युपर्वत से निकलने वाली एक नदी ताप्ती, आप्टे संकृत-हिन्दौ कोश, पृ० ५७५ के अनुसार ताप्ती की सहायक नदी, पुणी से पयोङ्गी की अभिन्नता अधिक संभव प्रतीत होती है ।

३. ये सभी तीर्थ एवं नदियाँ उत्तर भारत से सम्बन्धित हैं, नर्मदा और ताप्ती इक्षिण भारत की उत्तरी सीमा पर स्थित हैं अस्तु साम्ब-पुराण की रचना उत्तर भारत में, विशेषतया उसके पश्चिमी ओत्र में, हुई होगी । देखिए हाजरा, अनाल्म आफ भंडारकर औरियन्टल रिचर्सें इन्स्टीच्यूट, भाग ३६ (१९५५) पृ० ७८. पाद-टिप्पणी ५.

तमुद्रे प्रेरे कपर कृपा करें। इस प्रकार स्नान कराकर पूजा और प्रणाम करके ॥७॥ धूप और अष्टर्य देकर प्रतिमा के पास शयन करे ॥ तीन रात, सात रात, आधा महीना अथवा एक महीना ॥८॥

इसके बाद संसार के कल्याणार्थ इसकी रथ-यात्रा<sup>१</sup> करानी चाहिए। रथ दर्शनीय हो और किंकिणियों के समूह से युक्त हो। समस्त ब्राह्मणों को दक्षिणा और शोजन आदि से व्यसनन करके प्रतिमा को रथ में स्थापित करके स्थान की परिक्रमा करनी चाहिए ॥ १० ॥ इस प्रकार प्रतिवर्ष रथयात्रा करायी जाने पर प्रजाएँ भी सुख प्राप्त करती हैं और राज भी विपत्तियों पर जय प्राप्त करता है ॥११॥ समस्त जनवर्य निरोग होता है ॥ गायों का कल्याण होता है और रथयात्रा कराने वाले भी स्वर्गलोक के भागी होते हैं ॥१२॥ साम्ब ने कहा—हे विप्रषि ! मेरे मन में यह बड़ा भारी संशय है, आप इसे बताएँ कि एक बार स्थापित की हई प्रतिमा को फिर उखाड़े कैसे ॥१३॥ नारद बोले— प्रत्येत काल में ही भगवाव सूर्य का रथ बनाने के लिए विष्णु ने संवत्सर<sup>२</sup> के ही भागों को लेकर रथ की कल्पना की । वह रथ समस्त रथों में श्रेष्ठ माना गया । उस रथ को देखकर विष्वकर्मा द्वारा और भी अनेक रथ ॥१४॥ सोम इत्यादि समस्त देवताओं के लिये अनेक बार बनाए गये ॥१५॥

१. जगद्वाधपुरी में रथयात्रा की परम्परा अत्यधिक लोकप्रिय है । यहाँ पर वर्णित रथ-यात्रा की तुलना पुरी की रथ-यात्रा से की जा सकती है । पुरी की रथ-यात्रा-विवरण के लिए देखिए, हन्टर, हिस्ट्री आफ उड़ीसा, भाग १, पृ० १३१-१३४.

२. तुलना कीजिए विष्णु-पुराण, २.८.४—“संवत्सरमये कृत्सनं काल-चक्रं प्रतिष्ठितम्”

वैक्षेपित मनु के द्वारा वह रथ स्तवन किये जाने पर इक्षवाकु-पुत्र को दे दिया गया और वह रथ मानव लोक में उतर आया । रथ-यात्रा से सूर्य का चलाया जाना कल्याणाकर होता है ॥१७॥ इसलिए है साम्ब ! सदिता देवता का रथ द्वारा पर्यटन कराया जाना दोषयुक्त कार्य नहीं होता इसीलिए सूर्य रथारूढ़ होकर इस पृथ्वी की परिक्रमा करते हैं ॥१८॥ हे जाम्बवती-पुत्र ! चलता हुआ सूर्य का मण्डल देखने में नहीं आता, उसकी गति अदृश्य है ॥१९॥ इसीलिए सूर्य की यह रथ-यात्रा कराई जाती है ॥ हे यदुनन्दन ! अन्य देवताओं का चालन नहीं होता ॥२०॥ ब्रह्मा, विष्णु और शिव इत्यादि देवता एक बार विश्वपूर्वक स्थापित किये जाने पर पुनः स्थान से दूर नहीं होते । इसीलिए सूर्य देवता की यात्रा रथ द्वारा करायी जाती है ॥२१॥ इस लोक में प्रजाओं की शान्ति के लिए प्रतिवर्ष सोने, चाँदी अथवा सुदृढ़ काष्ठ से बना हुआ ॥ २२ ॥ दृढ़ धूरी और चक्र से युक्त रथ बनवाना चाहिए । मनोहर ढग से बनाये गये उस श्रेष्ठ रथ में ॥२३॥ प्रतिमा को आरोपित करके सुन्दर अश्वों को जोतना चाहिए जो कि श्रेष्ठ अश्वों के लक्षणों से युक्त हो, सुन्दर मुख बाले हों, और वशवर्ती हों ॥२४॥

वे अश्व रोली से टीके हुए हों और चापर से विभूषित हों, ऐसे अच्छे अश्वों को जोतकर रथ के आचार्य को दान देना चाहिए ॥२५॥ धूप, माला और अनुलेपन से विश्वपूर्वक पूजा करके और विविध प्रकार के आहार से श्रेष्ठ ब्राह्मणों को भोजन कराकर ॥ २६ ॥ सूर्य का यज्ञ पूर्ण करना चाहिए ॥ टूटी हुयी आशा वाला और भूख से अत्यधिक पीड़ित ऐसा जो भी व्यक्ति उस रथ-यात्रा का विन्तन करता है उसे पुण्य-लाभ होता है ॥२७॥ दान न देने वाला स्वर्ग स्थान से चयुत हो जाता है । दक्षिणा से हीन सूर्य का

१. यज्ञ अथवा पूजा-कृत्य दैवी कृत्य का अनुकरण मात्र है । पौराणिक मिथिकशास्त्र में सूर्य सृष्टि की रथ-यात्रा करता है उसी का अनुकरण संबत्सरी रथ-यात्रा द्वारा किया जाता है । देखिए राय, एस०, एन०, पौराणिक धर्म एवं सभाज्ञ, पृ० ५४.

यज्ञं प्रशंसा योन्य नहीं होता है ॥२८॥ इसीलिए नाना प्रकार के अभीष्ट पदार्थों भक्ष्यों, भोज्यों और अन्नों के समुच्चय से<sup>१</sup> समस्त जनवर्ग को प्रसन्न करके इस मंत्र का उच्चारण करना चाहिए ॥२९॥ आदित्य, वसु, मरुत, अश्विनी कुमार, रुद्र, एहड़, पञ्चग, नवग्रह, ॥३०॥ असुर, यातुधानु, रथासीन देवगण, स्थापित दिक्पाल, लौकपाल, विघ्नकारक विनायक ॥३१॥ जगत का कल्याण करने वाले तथा अन्यात्य दिव्य महिष्ये सब मेरी पूजा स्वीकार करे ॥ मेरे मार्ग में विघ्न न हों, पाय न हो, मेरे शत्रु न हो ॥३२॥

देव और भूतम् । सन्तुष्ट होकर मेरे लिए सौम्य बन जायें ॥३३॥ पवित्र वामदेव आदि ऋषियों के लिए “आकृष्णेन रजसा” इस ऋचा का पाठ करना चाहिए ॥३४॥ इसके पश्चात पुण्याह वाचन करते हुए गाजे वाजे का शब्द करते हुए मुख्य मुख्य नार्गों से रथ का पर्यटन करने वाला व्यक्ति सुख प्राप्त करता है ॥३५॥ सूर्य की भक्ति से समन्वित पुरुषों द्वारा भी रथ ढोना चाहिए अथवा सम्यक प्रकार से आग्रह से दान दिये गये बैलों द्वारा भी ढोना चाहिए ॥३६॥ विजन मार्ग से चलते हुए जिस प्रकार धुरी और चक्के में किसी प्रकार की टूट न हो उसी प्रकार धीरे धीरे चलना चाहिए ॥३७॥ रथभंग होने पर ब्राह्मणों को भय होता है, धुरी टूटने पर क्षत्रिय को, तुला टूटने पर बैश्यों को और शमी टूटने पर शूद्रों को भय

१. ब्राह्मणों को भोजन करने और दान देने की परम्परा गुप्त काल में प्रतिष्ठापित हो चुकी थी देखिए धुरे, वही, पृ० ८७; मनुस्मृति, १.८६.७८, १२.५४-८०, याज्ञवल्क्यस्मृति, १२४३-५८। तत्कालीन अभिलेखों के अध्ययन से भी ज्ञात होता है कि ब्राह्मणों की दान देने का विधान मुक्ति का एक सहज मार्ग माना जाता था और समाज में इसका प्रचलन था देखिए भण्डारकर आर०, जी०, ए पी इन्टू दी अलीं हिस्ट्री आफ इण्डिया, पृ० ५३, पाटिल, डी०, आर०, कल्चरल हिस्ट्री फ्राम दी बायु-पुराण, १२८-१३०

होता<sup>१</sup> है ॥३८॥ जुवा टूटने पर अनावृण्ठि होती है । पीढ़ा टूटने पर प्रजाओं पर संकट आता है और रथ के चक्रका टूटने पर दूसरे चक्र का आगम समझना चाहिए ॥३९॥ पताका गिर जाने पर भी प्रजाओं को भय होता है और प्रतिभा के अंग-भंग हो जाने पर राजी की मृत्यु होती है ॥४०॥

सम्पूर्ण रथ के छिन्न भिन्न हो जाने पर सम्पूर्ण जनपद को भय होता है । इस प्रकार के अशुभ उत्पन्नों के उत्पन्न होने पर प्रारम्भ में ही ॥४१॥ पूजा-कर्म करना चाहिए और उसके बाद शान्ति और होम करना चाहिए । ब्राह्मणों को भोजन करना चाहिए और उन्हें दक्षिणा भी देनी चाहिए ॥४२॥ रथ के पूर्वोत्तर दिशा में अग्नि की कल्पता करनी चाहिए और धी में डूबी हुई समिधाओं से अग्नि का हवन करना चाहिए ॥४३॥ भक्तीभाँति देवताओं के लिये क्रमशः स्वाहा शब्द का उच्चरण करते हुये ग्रहों और प्रजापतियों के नामों का उच्चारण करते हुये होम करना चाहिये ॥४४॥ सर्वप्रथम अग्नि के लिये स्वाहा, तदन्तर सोम के लिये स्वाहा, प्रजापति के लिये स्वाहा-इस प्रकार आहुतियां देनी चाहिये ॥४५॥ विप्रों का कल्याण हो, राजा का कल्याण हो, वैश्यों का कल्याण हो, प्रजाओं का कल्याण हो और जगत् की शान्ति हो ॥४६॥ मनुष्यों को शान्ति मिले, चतुष्पद जीवों को शान्ति मिले, प्रजाओं को शान्ति मिले और मेरी पवित्र आत्मा में शान्ति हो ॥४७॥ पृथ्वी शान्त हो, हे देवश ! भुवलोक की शान्त हो, स्वलोक की शान्त हो, सर्वत्र हम लोगों की शान्ति हो ॥४८॥

हे प्रभो ! तुम्हीं जगत् के लष्टा हो, पोपक हो, हे दिवस्पति । प्रजाओं

१- सामाजिक स्तर-विन्यास भारतीय जाति-व्यवस्था की विशेषता रही है । इस विवरण में समाज के चारों वर्णों के लिये भय के भिन्न कारणों को प्रकट कर सामाजिक असमानता एवं स्तर-विन्यास की भावना की ओर संकेत किया गया है । देखिये वुरे, कास्ट, क्लास ऐन्ड अक्सेशन, ७४.

को पालो, शान्ति दो ॥४९॥ और भी मैं तुम्हें शान्ति के श्रेष्ठ कारण  
बताऊँगा जो कि धात्रा के कारणभूत स्वयं जन्मा सूर्यदिवता के लिए हैं ॥५०॥  
ग्रहों को दुष्ट मानकर उनकी भी शान्ति करनी चाहिये । अर्क की शान्ति  
के लिए मन्दार की, चन्द्रमा की शान्ति के लिए पलाश की, ॥५१॥ मङ्गल की  
शान्ति लिये खादिर की, बुद्ध की शान्ति के लिये अपामार्ग (एक बूटी) की,  
गुरु की शान्ति के लिये पीपल की, शुक्र की शान्ति के लिए गूलर की ॥५२॥  
शनैश्चर की शान्ति के लिए शमी की, राहु की शान्ति के लिये द्रव की और  
केतु की शान्ति के लिए कुश की समिधा<sup>१</sup> में यज्ञ करना चाहिये । अब दक्षिणा  
भी सुनो ॥५३॥ सूर्य के लिए उत्तम धेनु, चन्द्रमा के लिये शंख, मङ्गल के  
लिये लाल ऊन, बुध के लिए सोना ॥५४॥ गुरु के लिए पीले वस्त्र, शुक्र  
के लिए श्वेत घोड़ा, शनैश्चर के लिए काली गाय, राहु के लिये खाड़ की  
खीर, ॥५५॥ केतु के लिए बकरा देना चाहिए । अब इनके भोजन सुनो—  
सूर्य के लिए गुड़ और चावल, सोम के लिए धी और खीर ॥५६॥

मङ्गल के लिये हविष्यान्न, बुद्ध के लिये दूध बाले अन्न, गुरु के लिए  
दही और चावल, शुक्र के लिये धी का भोजन और शनैश्चर के लिए पिसा  
हुआ तिल ॥५७॥ और उड़द, राहु के लिये<sup>२</sup> मांस और केतु के लिए हल्दी  
से रगा पीला भात देना चाहिए<sup>३</sup> ॥५८॥ जैसे बाण के प्रहारों को रोकने

१. नव गृह-शान्ति के लिये इन्हीं समिधाओं का विधान मत्स्य-पुराण  
४३, २७-२८ भी में किया गया है । काणे, वही (हिन्दी सं०) ५, ३५१-५६.

२. श्राद्ध में पितृों के लिये और पूजा में देवी के लिए मांस की बलि  
का विधान था देखिये मार्कोण्डेय-पुराण, २६.२, ५६.२०, देसाई, एन०  
वाई०, ऐन्सियन्ट इण्डियन सोसाइटी, रेलीजन ऐन्ड मार्ईथालाजी  
ऐज डिपिक्टेड इन दी मार्कोण्डेय-पुराण, पृ० ५५.

३. नव ग्रहों के भोजन का विधान मत्स्य-पुराण, ४३.१६.२० में इसी  
प्रकार किया गया है । मत्स्य-पुराण में भी राहु के लिए मांस का विधान  
किया गया है । तुलना कीजिए धर्मसिद्धि, पृ० १३५.

बाला कवच होता है उसी प्रकार दैवी उपधारों के बारणार्थ शान्ति हुआ करती है ॥५६॥ जो अहिंसक है, शान्त है, धर्मपूर्वक धन कमाए हुए हैं, नियम से रहने वाले<sup>१</sup> हैं ग्रह सदैव उनके कपर कृपा करते हैं ॥६०॥ गायो, राजाओं और विशेष करके ब्राह्मणों<sup>२</sup> के पूजे जाने पर ग्रह सभ्मानित करते हैं और उनके अपमानित होने पर भस्म करते हैं ॥६१॥ जैसे फेंका गया यंत्र मन्त्र द्वारा ही पीछे लौटा दिया जाता है उसी प्रकार उठी हुई पीड़ा को ग्रहों की शान्ति से रोक देना चाहिए ॥ ६२ ॥ यज्ञ करने वाले, सत्य वचन वाले, नित्य व्रतोपवास करने वाले, और जप-होम में लगे हुए व्यक्तियों की ग्रहपीड़ा-शान्ति हो जाती है ॥६३॥ इस प्रकार प्रजाओं की शांति करके और स्वस्तिवाचन करके पुनः सूर्य-रथ बनाकर परिक्रमा करनी चाहिए ॥६४॥

बचे हुये मार्ग को इसके बाद पार करके मन्दिर में पहुँचना चाहिये और प्रतिमा को रथ से उतारकर उसी प्रकार मण्डल में स्थापित कर देना चाहिये ॥६५॥ इसके बाद चौथे दिन सूर्य का विश्रमण करना चाहिए । बूप, माला और उपहार सामग्री से पुनः मण्डल में उपासना करनी चाहिए । ॥६६॥ इस प्रकार जो कोई भनुष्य सूर्य के लिये यह विधि करता है वह

१. यहाँ पर नैतिक जीवन पर जीर दिया गया हैं । पौराणिक धर्म-याधना को एक अभिन्न कड़ी इसकी नीति-परक विचार धारा थी देखिए हाजरा, स्टडीज इन दो पुराणिक, रेकर्ड्स आन हिन्दू राइट्स ऐण्ड कस्टम्स ।

२. गाय, राजा और ब्राह्मण के प्रति आदर भारतीय सामाजिक जीवन का अभिन्न विश्वास बन गया था देखिए दो स्टूगिल फार इम्पायर पृ० ४६३, द्रष्टव्य विज्ञानेश्वर, अपराक्ष (याज्ञवल्क्यस्मृति, ३, २६४-६५), प्रापश्चित प्रकरण, २८-३३.

असंख्य वर्षों तक 'सूर्यलोक' में आदर प्राप्त करता है ॥६७॥ उसके कुल में कोई भी द्विरिद्र या रोगी नहीं पैदा होता ॥ ६८ ॥ वर्ष पूर्ण होने पर सूर्य की यात्रा के दिन यदि किसी कारण से रथयात्रा न हो सके ॥ ६९ ॥ तो फिर बारहवें वर्ष में कर देनी चाहिये, बीच में फिर नहीं करनी चाहिये । इसके बाद शान्ति-कर्म<sup>१</sup> करके शुभाकांक्षी व्यक्ति को हवन करना चाहिए ॥ ७० ॥ इसी प्रकार इन्द्रध्वजा का भी यदि उत्थापन न किया जाये तो बारहवें वर्ष ही करना चाहिए, बीच में नहीं ॥ ७१ ॥ इस प्रकार देवषि नारद विष्णु-पुत्र साम्ब को उपदेश देकर चले गये । और उन्होंने भी शरणागत वत्सल भगवान् सहस्रांशु की रथ-यात्रा को सम्यक रूप से सम्पन्न किया । इस प्रकार साम्ब-पुराण में देव-यात्रा नामक चौतीसवाँ अध्याय<sup>२</sup> समाप्त होता है ।

१. शान्ति-कर्म के विस्तार के लिए देखिए बृहत्संहिता, ४४; कौशिकसूत्र १३.१३.१३६; मदनरत्न, शान्ति खण्ड; कृत्यक्लृप्ततर, शान्ति-पौष्टिककाण्ड; अद्भुतसागर; शान्तिकमलाकर; शान्तिभयूख, अन्ति-पुराण, २६३-७-८.

२. इलेक्ट्र संख्या १-३, १० व तथा ७२ को छोड़ यह सम्पूर्ण अध्याय भविष्य-पुराण, १.५५-५८ में संग्रहीत है । इस अध्याय को मूल भाग का ही अंश माना जाता है देखिए हाजरा, दी साम्ब-पुराण, एसौर ब्रह्म आफ डिफरेन्ट हैंड्स, अनाल्स आफ भण्डारकर औरियन्टल रिसर्च इन्स्टीच्यूट, भाग ३६ (१९५५) पृ० ६२ ।

## अध्याय ३५

विशिष्ठ बोले—राजन ! मैं पुनः आप से संक्षेप में यात्रा की विधि को बता रहा हूँ जो कि साम्ब के प्रति अनुग्रह भाव के कारण देवषि नारद ने कही थी ॥१॥ रथ पर देवगणों के स्थित रहने पर जिस देवता का जो कार्य है वह मैंने बताया ॥ २ ॥ बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि उस देवता को मन से ही आकाश और पृथ्वी में स्थापित करे जैसा कि पहले बताया गया है ॥३॥ इसी प्रकार राजी जो कि आकाश है और निकुमा जो कि पृथ्वी है, इन दोनों देवियों से भी सूर्य को युक्त करना चाहिए । ४॥ दण्ड और पिंगल आदि को रथक्रम से अलग अलग करना चाहिए । इस प्रकार समुचित स्थान में देवता का मन से स्मरण करना चाहिये ॥ ५ ॥ दिक्‌पालों और लोकपालों की भी मन से ही कल्पित कर लेना चाहिये । सूर्य देवता समस्त देवमय है ॥६॥ उनके छूचाओं से युक्त मण्डल गायत्री, त्रिष्टुभ, जगती, अनुष्टुभ ॥७॥ पंक्ति, बृहती और सप्तमी उष्णिणक<sup>१</sup> इस प्रकार छन्दों के वेदमय होने के कारण ॥८॥

१. गायत्री में छः वर्णों के चरण बाले वृत्त होते हैं । त्रिष्टुभ में ग्यारह वर्णों के चरण बाले वृत्त होते हैं । जगती में बारह वर्णों के चरण बाले वृत्त होते हैं । अनुष्टुभ में आठ वर्णों के चरण बाले वृत्त होते हैं । पड़क्ति में दस वर्णों के चरण बाले वृत्त होते हैं । बृहती में नौ वर्णों के चरण बाले वृत्त होते हैं । उष्णिणक में सात वर्णों के चरण बाले वृत्त होते हैं । विस्तार के लिये देखिए इ०, वी०, आरनालड, वैदिक बैटर, कैम्ब्रिज, १६०५ तथा केदारमट्ट, वृत्तरत्नाकर बम्बई १६०५ ।

रथ यात्रा में ब्रह्मवादी, उपवास-परायण श्रावणों द्वारा सूर्य का वहन कराना चाहिए ॥१॥ इस प्रकार आचरण करने से कल्याणगमयी शान्ति होगी । समस्त देवताओं के नायक सूर्य है ॥२०॥ रथों के विन्यास में और देव-मन्दिर में ॥२१॥ सर्वप्रथम सूर्य की पूजा करके, दिवदेवताओं और सेवकों की पूजा करता हुआ व्यक्ति लक्ष्मी द्वारा उपासित होता है ॥२२॥ पहले सूर्य को न सम्चित करके जो दूसरों की पूजा करता है अज्ञान के कारण किये गये उसके पाप को देवता नहीं ग्रहण करते हैं ॥२३॥ यात्रा-काल के अवसर पर सूर्य के दीक्षित किये गये शरीर को जो देखेंगे भवितपूर्वक वे निष्कलंक हो जायेंगे ॥२४॥ पूर्णिमा और अमावस्या तिथियों में दान<sup>१</sup> देना अत्यंत पुण्यकारक होता है । इसी प्रकार आषाढ़, कात्तिक और माघ की पूर्णिमाएँ भी पवित्र होतीं हैं ॥२५॥ तिथियों का यवित्र महत्व शास्त्रों में कहा गया है और विशेष रूप से वह महत्व कात्तिको पूर्णिमा<sup>२</sup> का है जिसे कि महाकात्तिकी कहा जाता है ॥२६॥

इस प्रकार काल के सभायोग वश उसका भी महत्व बढ़ जाता है । ऐसे अवसर पर सूर्य के दर्शन से समस्त पापों को हरण करने वाला, श्रेष्ठ पुण्य

१. सूर्य के सम्मान में कुछ तिथियों में दान देना और भ्रत रहना श्रेयस्कार माना जाता है देखिए मत्स्य-पुराण, ७४ ७६., काणे, पौ०, छौ०, हिंस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, भाग २, (२). पृ० ७०५-७४०. राय, एस० एन० अलीं पुराणिक एकाउन्ट आफ सन ऐड सोलर कलट, डलाहालाद यूनीव-सर्टी एस्टेज (१९६३-६४) ।

२. तुलना कीजिए हेमाद्रि चतुर्वर्णविज्ञामणि, ब्रतखण्ड. २-७६८-७८४ मनु ४.१५०, विष्णु धर्मसूत्र ७१.८८. कृत्यरत्नाकर, ३६७-४४२; वर्णक्रिया कोमदी, ४५३-४८१; मिण्यैर्यसिद्धि, १६२०-२०८; कृत्यशार समुच्चय, २०-२६; स्मृतिकीमुदी ३५८-४२७; सकृद-पुराण, वैष्णवकाण्ड; ६, नारदीय पुराण, उत्तराधि; २२. वैष्णवपुराण, ६.६२ ।

होता है ॥१७॥ ऐसे अवक्षर पर व्रत धारण करके, उपवास करके जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक सूर्य की पूजा करता है वह शेष गति को प्राप्त करता है ॥१८॥ यह यज्ञपुरुष सूर्य देवता लोकानुग्रह की आकांक्षा से प्रतिमा में स्थित होकर सदैव मनुष्यों द्वारा पूजित होता है ॥१९॥ स्नान, दान, जप, होम, देवकर्म के संयोग से और सिर मुड़ाकर मनुष्य दीक्षित हो जाता है ॥२०॥ सूर्यभक्त पुरुषों द्वारा सदैव केशों को मुड़ाये रहना चाहिए ॥ इसी प्रकार सूर्य के यज्ञ में मनुष्य पवित्र और दीक्षित होता है ॥ २२ ॥ चारों ही वर्णों में जो मनुष्य भक्तिपूर्वक दीक्षित होकर इस प्रकार नित्य सूर्य की उपासना करेंगे वे महात्मा व्रत पार करके शेष गति प्राप्त करेंगे ॥२२॥ इस प्रकार साम्बुद्धराण का पैलीसवाँ अध्याय<sup>१</sup> समाप्त होता है ।

१. यलोक १ब और २ब के अतिरिक्त समस्त अध्याय भविष्य-पुराण १.५८, २२ब, २३-२४, ३०ब-३१अ, ३२ब-३७अ और ३८-४५ में संग्रहीत है अस्तु इस अध्याय की तिथि ५००-८०० ई० के मध्य रखनी गई है देखिए हाजरा, वही.

को और मूँह करके पैर धोकर और दोनों हाथों को घुटनों के भीतर करके आचमन करना चाहिए ॥६॥ शुद्धि, शान्ति और प्रसन्न भाव से तीन बार जल पिंडे और दो बार हाथ धोये और तीन बार पुनः जल छिटकारे ॥७॥ क्रमशः मस्तक, नेत्र और हृदय को स्पर्श करके सूर्य की नमस्कार करके शौच के लिए इच्छुक व्यक्ति शुचिता को प्राप्त करे ॥८॥

जो नास्तिक व्यक्ति अज्ञानवश बिना आचमन किये यह क्रिया करता है उसको वह क्रियाएँ व्यर्थ हो जाती हैं इसमें कोई संशय नहीं है ॥९॥ वेदों में ऐसा समर्थन किया गया है कि देवगण पवित्रता की अपेक्षा करने वाले होते हैं देवता लोग नास्तिक और अपवित्र लोगों को सदैव दूर रखते हैं ॥१०॥ कृष्ण और पितृगण और भी पवित्र व्यवहार बाले हैं । वे शौच की प्रशंसा करते हैं क्योंकि शौच से ही ज्ञान बढ़ता है ॥११॥ आचमन करने के बाद मौन साधे हुए श्वास को अन्दर करने के निमित्त ही वस्त्र से प्राण को ढक कर मन्दिर में प्रवेश करना चाहिए ॥१२॥ बालों की नमी दूर करने के लिए सिर को ढंककर नाना प्रकार के पवित्र पुष्पों से सूर्य की पूजा करनी

१. पवित्रता, शुचिता, स्वच्छता व्यक्तियों के लिये अनिवार्य धर्म वैदिक, पौराणिक तथा आग्नेय साहित्य में दत्ताया गया है । योग-दर्शन के अनुसार मोक्ष के लिये प्रज्ञा, प्रज्ञा के लिये अष्टांग मार्ग आवश्यक है । इस अष्टांग मार्ग में नियम के अन्तर्गत प्रथम अंश शौच है जिसके दो भेद बताये गये हैं शारीरिक और मानसिक शुद्धि-देखिए । दत्त और चट्ठी, भारतीय दर्शन, पृ० १६२-६३ । यह ब्रह्मव्य है कि पूजा-विधि में पवित्रता की महत्व दिया गया है जो सौर धर्म के नीतिपरक स्वरूप को प्रकट करता है । देखिए श्रीबास्तव, सन्-वरंशिष इन ऐतिहासिक इण्डिया, पृ० ५३-५४, २६३, पाद-टिप्पणी, ४२५ ।

चाहिए ॥१३॥ संहिताओं में विद्यमान मन्त्र<sup>१</sup> से जप करे । जप करने के पश्चात् अग्नि को सर्वप्रथम गृणूल की आहृति के रूप में धूप देना चाहिए ॥१४॥ इसके पश्चात् पुष्पांजलि लेकर सूर्य के मस्तक पर उसे चढ़ाकर इस मंत्र का पाठ करना चाहिए ॥१५॥ “ब्रती देवता मनुष्य और समस्त पितृगण ब्रत करने वाले व्यक्ति की वृद्धि करते हैं इसलिए जो तेजस्वियों में प्रथम है, अजन्मा है, उस सूर्य की शरण में हम जाते हैं” ॥१६॥

इस प्रकार पाँच जपों में पाँच धूप वेलाएँ बताई गई हैं और महाविद्याओं में जो पाँच बताई गई हैं उन्हें मैं पुनः क्रम से कहूँगा ॥१७॥ दण्डनायक वेला उसे कहते हैं जो प्रदोष काल में तारकों के दर्शन होते ही हो । राज्ञी वेला भी भी में जाननी चाहिए ॥१८॥ सूर्य के दर्शन से लेकर आधा उदित होने पर, आकाश के मध्य स्थित होने पर और अस्तंगत होने पर इन तीनों वेलाओं में सूर्य की पूजा करनी चाहिए ॥१९॥ पूर्वान्ह में मिहिर के लिए, मध्यान्ह में ज्वलन (अग्नि) के लिए और सायं वेला में वरुण के लिए पूजा करनी चाहिए<sup>२</sup> ॥२०॥ रक्त चन्दन मिश्रित पदार्थ, सुगन्धित जलयुक्त पदार्थ

१. यह द्रष्टव्य है कि यहाँ पर वैदिक मन्त्रों के माध्यम से ही जप का विधान किया गया है जो मग-परम्परा को वैदिक परम्परा के अनुकूल बनाने को दिशा में एक सफल प्रयास था । देखिए हाजरा, स्टडीज, भाग १ पृ० ३२, तुलना के लिए देखिए विज्ञु-पूजा का वैदिक मन्त्रों द्वारा विधान, विज्ञुधर्मसूत्र, ६५.

२. सूर्य की पूजा पूर्वान्ह, मध्यान्ह और सायं तीन बार वैदिक काल से ही की जाती थी द्रष्टव्य ऋग्वेद, २.२७.८, ५.७६.३; ८.२२.१४, ऐतरेय ब्राह्मण, ३.४४ कौषीतक उपनिषद्, २.७ श्रीवास्तव, सन-वरशिष्ठ इन ऐन्सियन्ट इण्डिया, पृ० १७०-१७१

पद्म, करवीर तथा लाल<sup>१</sup> कमल ॥२१॥ रोली, जल; कुरुटक, गन्ध इत्यादि और भी अन्यान्य वस्तुयें लांबे के पात्र में रखकर समर्पित करना चाहिये ॥२२॥ इसके पश्चात् पुनः धूप, तदन्तर मंत्रोच्चारण सहित गुण्डुल की आहुति देनी चाहिए और इसके बाद पूजा का पात्र लेकर सूर्य का आवाहन करना चाहिए ॥२३॥ हे सहस्रांशु ! हे तेजोराशि ! हे जगत्पति ! आहए ! हे दिवाकर ! मुझ भक्त को ग्रहण कीजिए, मुझ पर कृपा कीजिए ॥२४॥

इस मंत्र से आवाहन करके और छुटने के बल पृथ्वी पर बैठकर सूर्य को अर्घ्यदान देना चाहिए और इस आदित्य-हृदय-स्तोत्र का जप<sup>२</sup> करना चाहिए ॥२५॥ ओम भगवान् आदित्य को नमस्कार है जो वरिष्ठ है, वरेण्य है, और ब्रह्म-लोक के एकमात्र कर्ता हैं ॥ ओम ईशान्, पुरातन और पुराण पुरुष सूर्य को प्रणाम है ॥२६॥ ओम जो सोम स्वरूप हैं, कृक् यजुष, साम और अथर्व स्वरूप है उस सूर्य को नमस्कार है ॥ २७ ॥ ओम भूलोक, ओम भुवलोक, ओम स्वर्लोक, ओम महालोक, ओम जनलोक, ओम तपोलोक ओम सत्यलोक ब्रह्मस्वरूप आदित्य के लिये स्वाहा ॥२८॥ इसके पश्चात् पहले सावित्री से पवित्र होकर बाद में जल से पवित्र होकर धूप के पात्र को ऊपर उठाना चाहिए ॥२९॥ और इस (गायत्री) मंत्र का उच्चारण करना चाहिए । सविता देवता का वह श्रेष्ठ तेजस जो भूलोक, भुवलोक और स्वर्गलोक में व्याप्त है हमारी रक्षा करें और हमारी बुद्धि को सन्मार्ग<sup>३</sup>

१. भारतीय देव-पूजा में विभिन्न देवताओं के लिए विशेष पुष्पों का विधान किया गया था देखिये बृद्धहारीति, ७, पृ० ५३-५६; बृद्धगौतम, पृ० ५६३, मदन-पारिजात, पृ० ३०३.

२. सूर्य के सम्मान में विहित द्वादश नमस्कारों से तुलना कीजिए काणे, पी०, वी०, हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, भाग (२) पृ० ७३५-७३६-हेमाद्रि, प्रत, २५२६, कृत्यकल्पतरु, १६-२०.

में प्रेरित करें ॥३०॥ इसके पश्चात् इस कृचा का पाठ करते हुए धूष-  
निवेदित करना चाहिए ॥३१॥ हे सूर्य देवता ! आप रुद्रों और वसु देवताओं  
में सर्वश्रेष्ठ हैं, पुरातन हैं, शाश्वत हैं, आकाश में देवताओं की वाणी द्वारा  
स्तवन किये गये हैं ॥३२॥

पूर्वान्ह में इस मन्त्र से और मध्यान्ह में भी इसी मन्त्र से धूप देना  
चाहिये ॥३३॥ ओम ज्वाला रूपी माला वाले उस सूर्य देवता को नमस्कार  
है, वह विष्णु का परम पद है जिसे बुद्धिमान व्यक्ति भद्रै देखा करते हैं ॥  
सायं वेला में इस मन्त्र से धूप निवेदित करना चाहिए ॥३४॥ ओम वरुण  
को नमस्कार है। अंधकारमय आकाश से चलता हुआ देवताओं और  
मनुष्यों में प्रवेश करता हुआ सुभहरे रथ से सूर्य देवता भूवनों की देखता  
हुआ जा रहा है ॥३५॥ इस प्रकार सूर्य को धूप-दान देकर भोजक<sup>२</sup> को  
चाहिये कि धूप को उठाए हुए ही मन्दिर के गर्भगृह में प्रवेश करें ॥३६॥  
मन्दिर में प्रवेश कर प्रतिमा को धूप निवेदित करना चाहिये ॥ और इस  
प्रकार मंत्रोच्चारण सहित नित्य मिहिर अर्थात् सूर्य को धूप देना चाहिए  
॥३७॥ इसके बाद राज्ञी को प्रणाम करके निक्षुभा को बारम्बार नमस्कार  
करना चाहिए ॥ तदन्तर दण्डनानक और पिंगल को नमस्कार करना  
चाहिये ॥३८॥ इसके पश्चात् तोष को, कल्माष को और गरुड को नमस्कार

१. गायत्री-मन्त्र के महत्व एवं स्वरूप के लिये देखिए श्रीवास्तव,  
विनोद चन्द्र, दी ओरिजनल नेचर-ऐण्ड सिर्नेफिकेन्स आफ नविश इन  
कृग्वैदिक रेलीजन, जर्नल आफ अन्ध्र हिस्टारिकल रिचर्स सोसाइटी,  
भाग २६, काणे, वही, भाग २ (१) पृ० ३०२-३०३.

२. स्टेटनकान वही, पृ० २७६ के अनुसार “भोजक” शब्द मूलरूप  
में नहीं था, प्रकाशक ने भविष्य-पुराण के प्रभाव में आकर “भोजक”  
शब्द को डाल दिया ।

करना चाहिये । तदन्तर प्रदक्षिणा<sup>१</sup> करता हुआ दिग्देवताओं को धूप निवेदित करनी चाहिये ॥३८॥ इसके बाद इण्डी को और तत्पश्चात रेवन्त के अनुचर को धूप दिखानी चाहिये । पूर्व दिशा की ओर से इन्द्र को, दक्षिण दिशा की ओर से यम को ॥४०॥

पश्चिम दिशा की ओर से जलेश वरुण को और उत्तर दिशा की ओर से कुबेर को और उत्तर ही दिशा की ओर से सौम को धूप निवेदित करनी चाहिये ॥४१॥ सौमनस्त्रुंग पर ईशान के लिये धूप देना चाहिए । अग्नि के लिए ज्योतिष्क श्रुंग पर और चित्रसंज्ञक श्रुंग की ओर पितरों को देना चाहिए ॥४२॥ इसके बाद वायु देवता को चन्द्रमास श्रुंग पर धूप देकर मध्य स्थान में नारायण नाम वाले परमात्मा सूर्य को धूप देनी चाहिए ॥४३॥ आदित्य, रुद्र, मरुत, अश्वनीकुमार जो भी आकाश में रहने वाले देवता हैं उन सबको भी नित्य नमस्कार करता चाहिए ॥४४॥ इस प्रकार सबका नामोदेश करके और सबको धूप दिखाकर जहाँ से धूप उठाइ गई थी वहाँ पुनः उसको छोड़कर ॥४५॥ सूर्य देवता को गोपनीय स्थितियों से समर्पित करके इस प्रकार विजापित करना चाहिये—हे भगवान् । विभावसु ! भक्ति पूर्वक यथाशक्ति मैंने आपकी समर्चना की है ॥४६॥ हे नाथ ! अब आप मुझे इहलोक और परलोक संबंधी कार्य-सिद्धि प्रदान करें । इस प्रकार तीन संघ्या वेलाओं में स्नान करके जो दत्तचित्त होकर विधिपूर्वक पूजा करता है । वह अश्वमेध यज्ञ के फल को प्राप्त करता है ॥४७॥ ऊपर वताए इस धूप-कर्म-विधि को जो नित्य इसी प्रकार करता है वह पुत्रवान और निरोग होकर सूर्य भूमि विलीन हो जाता है ॥४८॥

१. नमस्कार और प्रदक्षिणा अनेक अधिकारियों के अनुसार एक ही उपचार माना जाता है, काणे, वही, भाग २, (१), पृ० ७३५.

२. धूपविधि के विस्तार के लिए देखिए वीर०, पूजा-प्रकाश, १७-१४६.

विधिपूर्वक बताई गई क्रियाओं को पत्नपूर्वक करते हुए व्यक्ति के समस्त कर्म सिद्ध और सफल हो जाते हैं ॥४९॥ श्रेष्ठ पुष्प दान देना चाहिए, पुष्प की पत्ती ले आना चाहिए, पत्ती न हो तो धूप, धूप न हो तो जल ले आना चाहिए ॥५०॥ और यदि कुछ न हो तो सामने गिरकर पूजा मात्र करनी चाहिए और जो ज्ञाने में भी समर्थ न हो तो मन से ही पूजा करनी चाहिये<sup>१</sup> ॥५१॥ द्रव्य की संभावना न रहने पर पूजा की यह विधि बताई गयी है और द्रव्य की संभावना रहने पर सब कुछ ही उपहार रूप में प्रदान करना चाहिए ॥५२॥ पुष्प और धूप में जो मन्त्र इत्यादि अभी कहे गये हैं उनके उच्चारण अथवा स्मरण मात्र से सूर्य उन पर प्रसन्न हो जाता है ॥५३॥ इस प्रकार साम्ब-पुराण में छत्तीसवाँ अध्याय<sup>२</sup> समाप्त होता है ।

१. देव-पूजा के १६ अथवा १८ उपचारों का उल्लेख पुराणों और निवन्धों में हुआ है किन्तु यह भी निर्देश दिया गया है कि वस्त्र, अलंकार आदि सम्भव न हो तो केवल पाद से नैवेद्य तक १० उपचारों को ही करना चाहिए, यदि यह भी सम्भव न हो तो गन्ध से लेकर नैवेद्य तक की पंचोपचार पूजा की जानी चाहिए, यदि यह भी सम्भव न हो तो केवल पुष्प से पूजा करनी चाहिए देखिए नित्याचारपद्धति, पृ० ४४६ जयवर्मन द्वितीय के मानधाता अभिलेख में पंचोपचार पूजा का उल्लेख किया गया है, हुपीग्राफिया इण्डिका, ६, पृ० ११७, ११९ सांस्कारित्तमाला, पृ० २७ में भी इसी प्रकार का विधान मिलता है यह द्रष्टव्य है कि साम्ब-पुराण में देव-पूजा को इतना सरल बना दिया गया है कि पुष्पादि के अभाव में केवल आत्मसम्पर्ण द्वारा मन से पूजा का विधान बताया गया है ।

२. इस अध्याय को तिथि ५००-८०० ई० के मध्य निश्चित की गई है देखिए हाजरा, वही श्लोक १-४८, १०८-११८, ३० और ४० व-४४ को को छोड़कर यह सम्पूर्ण अध्याय भविष्य-पुराण, १.१४३.५-व १३, १४८-४१८ और ४६-५५ अ में ग्रहण किया गया है ।

## अध्याय ३७

**विशिष्ठ बोले—** अब मैं आगे क्रमशः वह शास्त्रीय विधान बताऊँगा जिससे कि सूर्य के लिए अग्नि में धूप दिया जाना है ॥ १ ॥ पवित्र अग्नि को सूर्य कहा गया है<sup>१</sup> और वायु उसका पुत्र बताया गया है ॥ चौकि वह अग्नि सदैव सूर्य के समीप रहने वाली है इसीलिए वह पवन के भी समीप रहती है ॥ २ ॥ इसलिए अग्नि के तेज को उत्थापित करके सूर्य को धूप निवेदित करना चाहिए । विधिपूर्वक अग्नि का उत्थापन करके पवित्र स्थान में उसे निविष्ट करके ॥ ३ ॥ मञ्चोच्चारण सहित रवि देवता को निरन्तर प्रसन्न करें । शमी अथवा पीपल की जरणी<sup>२</sup> में वायु ॥ ४ ॥ को मंथन करके अग्नि को पैदा करे और पंखे से हवा करे, तत्पश्चात् कुशे से सूर्य की मूर्ति का चित्र बनाकुर विधिपूर्वक अग्नि की संस्थापना करे ॥ ५ ॥ इसके पश्चात् खुच और

१. सूर्य एवं अग्नि की एकात्मकता के लिए देखिए मैकडानल, वेदिक माइथालाजी, पृ० ६३-६४. दृष्टव्य है कि सूर्य एवं अग्नि के संयुक्त स्वरूप की पूजा मग-परम्परा की एक विशेषता थी । देखिए मोलटन, अली जोरोष्ट्रायानिज्म, पृ० १८२-२५३.

२. यज्ञाग्नि प्रज्वलित करने के लिये लकड़ी की दो समिधायें-आटे, संस्कृतहिन्दी-कोश पृ०, ६१.

३. दर्भ एक व्रकार का कुण्डाघास जो यज्ञानुष्ठानों के अवसर पर प्रयुक्त किया जाता है देखिए शकु०, १.७, रघ०, १६.३१, मनुस्मृति, २.४३, ३.२०८, ४.३६.

स्त्रूव<sup>१</sup> इन दोनों प्रणीता और आज्यभाजन<sup>२</sup> को पर्वेशकर अग्नि से स्पर्श कराये और कुश से अग्नि का स्पर्श करे ॥६॥ हाथों में कुश लेकर पहले घृत छोड़े । न तो अग्नि को मुँह से फूँके और न ही पैर सेके ॥७॥ न ही अग्नि को नीचे रखे और न ही उसे लाँधे । जब अग्नि भली भाँति बढ़ जाए तब अग्नि में होम करना चाहिए ॥८॥

यज्ञ की लकड़ियों को अग्नि-कुंड की माप के प्रमाणानुसार ही रखना चाहिए । इंधन प्रमाणानुसार देवदारु का होना चाहिये ॥९॥ पलाश, मदार, चिचड़ा, शमी, पीपल, विकंकत, ॥१०॥ गूलर, बेर, चन्दन, सरल, देवदारु, शाल और खदिर —ये जो यज्ञ के लिये उचित लकड़ियाँ बताई गई हैं प्रमाणानुसार इनकी मात्रा अधिक भी हो सकती है ॥११॥ समिघा के लिए ये वृक्ष अत्यंत प्रशंसनीय बताये गये हैं । इसी प्रकार श्लेषमातक (लिसोड़े का पेड़), नक्तमाल<sup>३</sup>, कैथा, सेमल, ॥१२॥ बेल, कोविदार<sup>४</sup> (कचनार), करुज<sup>५</sup> शलकी<sup>६</sup>, चिरबिल्व, क्रोन्ट; तिकतक, अमरख ॥१३॥ नीम और बेहडा-

१. लकड़ी, प्रायः ढाक या खदिर, का बना हुआ एक प्रकार का चमचा जिसके द्वारा यज्ञाग्नि में धी की आहृति दी जाती है देखिए रघु०, ११.२५, मनुस्मृति, ५.११७, याज्ञवल्क्यस्मृति, १.१८३.

२. यज्ञ के लिये पिघलाये हुये धी का बर्तन—‘तपिविलीनमाज्यं स्वाद धर्नीभूतं घृतं भवेत्’ आप्टे, संस्कृत-हिन्दी कोश, पृ० १४२.

३. एक वृक्ष विशेष देखिए रघु०, ५.४२।

४. सुन्दरता के लिए प्रसिद्ध—“चित्तं विदारयति कस्य न कोविदारः” ऋतु०, ३.६।

५. एक वृक्ष विशेष जिससे औषधियाँ बनती हैं ।

६. एक वृक्ष विशेष जो हाथियों को बहुत प्रिय है देखिए उत्तर० २.२१, ३.६, मा०, ६.६, विक्रम, ४.२३।

इन वृक्षों की लकड़ियाँ होम कार्य के लिये निन्दित बताई गई हैं। इस प्रकार अग्नि की लपटें बढ़ जाने पर उसके चारों ओर कुश का उत्तम बिछौना बिछाकर ॥१४॥ तब उसे परिमार्जित करे। परिमार्जन शायत्री-मंत्र से पवित्र किये जल से तीन बार चारों ओर किया जाना चाहिये ॥१५॥ इसके पश्चात कुश की अंगूठी बनाकर अग्नि के दाहिनी ओर ब्रह्मा की मूर्ति कल्पित करनी चाहिए ॥१६॥

तत्पश्चात सुच और सुव इन दोनों प्रणीतों और आज्यभाजन को धोकर अग्नि से स्पर्श कराए और सुवा को पिघलाये हँये धी से सम्यक प्रकार से स्पर्श कराए ॥१७॥ इसके पश्चात घुटने के बल जमीन पर बैठकर दत्तचित्त होकर दोनों हाथ जोड़कर अग्नि-देवता को प्रणाम करे ॥१८॥ एकाग्र चित्त होकर हाथ जोड़कर इस पुराणोक्त मन्त्र<sup>१</sup> द्वारा सूर्य देवता का आवाहन करे ॥१९॥ उस शाश्वत सूर्य देवता को प्रणाम है, प्रणाम है, जो संसार के कल्याणार्थ निरन्तर उद्दित होता है। आज मैं उसी भादि देवता का आवाहन कर रहा हूँ, वह मेरे इस यज्ञाभिन में निवास करे ॥२०॥ हे अक्षय ! विश्वमूर्ति ! हे पवित्र नाम बाले ! हे सूर्यदेव ! आप औम है, हे देव ! मेरे द्वारा हवन की जाती हुई हवन-सामग्री को देखकर अपने शरीर

९

१. मत्स्य-पुराण, २६५.३१.३२. के अनुसार पलाश, उदुम्बर, अङ्गवत्थ, अपामार्ग और समी की समिधाओं का यज्ञ में प्रयोग करना चाहिये।

२. यह द्रष्टव्य है कि प्रतिमा-प्रतिष्ठा और उससे सम्बंधित अनुष्ठानों में पुराणोक्त मन्त्रों (नमोनमः) के प्रयोग का विवान किया गया है क्योंकि प्रतिमा-पूजा पूर्तधर्म के अन्तर्गत आती है। पूर्तधर्म सभी वर्णों के लिये विहित था जब कि इष्ट-धर्म केवल द्विज के लिये था इसिए काणे, हिस्ट्री आफ धर्मी शास्त्र; भाग २ (१) पृ० १५५, १५७, पादटिप्पणी, ३७०

अग्नि में आप प्रवेश करें ॥ २१ ॥ इस प्रकार अग्नि का संस्कार करके और आवाहन सहित सूर्य-देवता की उपासना करके इस ऋचा का पाठ करते हुये अग्निदेवता से कहे ॥ २२ ॥ हे अग्नि-देव ! इहलोक में हमारी तेजस्विता बढ़े हम यज्ञ करते हुए तुम्हारे शरीर का पोषण करे । चारों दिशायें मुझे नमन करे और आप जैसे अध्यक्ष द्वारा हम लडाइयों को जीतें ॥ २३ ॥ हे पुरुष-श्रेष्ठ ! सिंह के समान पीली और चमकदार जीभ वाले ! हे लाल नेत्र वाले अग्नि देव ! उठो ! मुझे स्मृद्धियाँ दो, हम तुम्हें द्रव्य दे रहे हैं—स्वाहा ॥ २४ ॥

इसके पश्चात् अग्निहोत्र के मंत्र से उच्चारण करते हुए अग्नि को अन्तिम आहुति देनी चाहिए ॥ २५ ॥ इसी प्रकार पलाश की लकड़ियों से ॥ २६ ॥ देवदारु, शभी इन दि की समिधाओं से धी में डुबो दूबोकर अग्नि-देवता का हवन करना चाहिए ॥ २७ ॥ रत्न<sup>१</sup> के बराबर लूँवा लेकर धी से ही होम करना चाहिये । इसके बाद दूध से, फिर गध्य से, फिर अन्त में अन्न से होम करना चाहिए ॥ २८ ॥ तदन्तर नौ औषधियों से, तिल, चावल और जौ से शाली (एक विशेष प्रकार के चावल से), तथा फलक, साढ़ी और गेहूँ से, हीम करना चाहिए ॥ २९ ॥ विशेष करके पूर्णिमा और अमावस्या के दिन हवन करना चाहिए । चैत्री-पूर्णिमा और कार्तिकी-पूर्णिमा के दिन हवन कार्य करना चाहिये ॥ ३० ॥ जब अग्नि भली भाँति प्रदीप्त हो जाए, धूम-रहित हो जाए, दहकने लगे, तब अपने कर्म की सिद्धि के लिए प्रभूत हवा और ईंधन से हवन करना चाहिए ॥ ३१ ॥ जब तक अग्नि प्रबुद्ध न हुआ हो तब तक उसमें हवन नहीं करना चाहिए<sup>२</sup> क्योंकि ऐसा-सुना जाता है कि ऐसा करने से यजमान अंधा और पुत्रहीन होता है ॥ ३२ ॥

१. एक हाथ का परिमाण, आष्टे, संस्कृत-हिन्दी कोश, पृ० ८४६.

२. पूजा में अपराधों के लिये देखिए वीर० पूजा-प्रकाश, १६६-१८८, वराह-पुराण, १३०-५.

लपटों से युक्त, नुकीली शिखा वाली, इहके हुए स्वर्ण के समान प्रभासित<sup>१</sup> ऐसी अग्नि कार्यसिद्धि के लिए होती है ॥३३॥ दुर्भाग्यशालिनी स्त्री, अशिक्षित व्यक्ति, मूर्ख, आत्म और असम्यव्यक्ति यज्ञ में हवन करने वाला नहीं होना चाहिये ॥३४॥ ऐसा करने वाले नरकगामी होते हैं। और उनके हवन से धन का क्षय होता है इसलिए होता को वेद में पारंगत और ज्ञान में कुशल होना चाहिए ॥३५॥ ऐसे यज्ञ-कर्म का जो फल है वह मेरे द्वारा कहा जाता हुआ सुनो-इस यज्ञ का अध्यक्ष अश्वमेघ यज्ञ के फल को प्राप्त करता है ॥३६॥ इस प्रकार साम्ब-पुराण में अग्निविधान नामक सौतीसवाँ अध्याय<sup>२</sup> समाप्त होता है ।

१. स्तिर्ध के अर्थ प्रभासित के लिये तुलना कीजिए—“कनकनिकष-स्तिर्धा विद्युतप्रिया नममोर्वशी” विक्रम, ४.१., मेघ, ३७, उत्तर, १.३३, ६.२१,

२. इस अध्याय की तिथि ५००-६०० ई० के मध्य निश्चित की गई है देखिए हाजरा, वही ।

## अध्याय ३८

बशिष्ठ बोले— हे राजन ! अब मैं तुम्हें उस बात को बताऊँगा जिस बड़े भारी सन्देह को साम्ब ने परम उदार नारद से पूछा था ॥ १ ॥ साम्ब बोले— मैंने लकड़ी की परीक्षा, मूर्ति का लक्षण, सूर्य की रथ-यात्रा का विधान और होम की विधि सुनी ॥ २ ॥ हे विष्णु ! अब इसके बाद मेरे द्वारा पूछे जाने पर भली भाँति मुझे सूर्य देवता की पूजा का फल बताइये और दिये गये दान का फल बताइए ॥ ३ ॥ साष्टीग्र श्रणाम, नपस्कार, प्रदक्षिणा, धूप, दीप, दान, सम्मार्जन विधि ॥ ४ ॥ उपदास—इन सबके विषय में जो फल बताया गया है उसे और रात्रि के भोजन के विषय में बतायें ॥ किस प्रकार का अर्थ होना चाहिए और कहाँ निवास कराना चाहिए ? ॥ ५ ॥ कैसे भक्ति करती चाहिए और कैसे देवता प्रसन्न होता है ? नारद बोले—साम्ब ! अब मैं भक्ति, श्रद्धा और समाधि के विषय में बता रहा हूँ मुझसे मुमझे ॥ ६ ॥ मन की भावना ही भक्ति कही जाती है और मन की इच्छा श्रद्धा कही जाती है । निरन्तर चिन्तन समाधि है । अब तुम भक्ति की विकल्पता<sup>१</sup> (के विषय में) सुनो ॥ ७ ॥ जो सूर्य देवता की कथा-वार्ता में रम जाये वही उसका सनातन भक्त है, जो निरन्तर तन्मय हो उत देवता की पूजा में सदैव रह हो ॥ ८ ॥

जो उनके यज्ञ के कार्य को करे वही उनका सनातन भक्त होता है ॥ उस सूर्य देवता के लिये किये जाते हुए अनुष्ठानों को जो व्यक्ति अनुमोदित करता है ॥ ९ ॥ और उनके गुण-कीर्तन से जिसे आसू निकल आए, रोम

१. भक्ति की परिभाषा, भेद एवं साधन के लिए देखिए नारदभक्ति सूच्चास, स्वामी त्यागीशानन्द, (मद्रास, १९७२) पृ० १-५४।

पुलकित हो उठे वही मनुष्य उनका भक्त है । जो व्यक्ति सूर्य देवता के भक्तों की निन्दा न करे, जिसके लिए अत्य कोई देवता वन्दनीय न हो, ॥ १० ॥ आदित्य के व्रत<sup>१</sup> को धारण करने वाला वही मनुष्य उनका भक्त है । इस प्रकार को सूर्य सम्बन्धी क्रियाओं में भक्ति रखने वाला ॥ ११ ॥ चलते हुए, खड़े हुये, सोते हुये, सूंधते हुए और पलक झपकते हुए जो निरन्तर सूर्य का स्मरण करता रहे वही मनुष्य उनका भक्त है ॥ १२ ॥ भक्ति, समाधि और विशुद्धि मन से जो नियम किया जाता है अथवा जो दान दिया जाता है उसी की देवता, मनुष्य और पितर ग्रहण करते हैं, जो भी पत्र, पुष्प, फल और जल भक्तिपूर्वक दिया जाता है ॥ १४ ॥ उसी की देवता ग्रहण करते हैं, और नास्तिकों को वर्जित कर देते हैं । नियम और आचरण से संयुक्त भावशुद्धि का होना अत्यंत आवश्यक है ॥ १५ ॥ भाव-शुद्धि के साथ जो कुछ भी किया जाता है वह सब सफल होता है ॥ स्तुति, जप और उपहार तथा सूर्य की पूजा से ॥ १६ ॥ तथा षष्ठी की उपवास करने से समस्त पापों से मुक्ति हो जाती है, जो पृथ्वी पर ज्ञुकर सूर्य को नमस्कार करता है ॥ १७ ॥ वह तत्क्षण समस्त पापों से मुक्त हो जाता है इसमें कोई सशय नहीं । जो मनुष्य भक्ति भावना से युक्त है उसे सूर्य की प्रदक्षिणा करनी चाहिए ॥ १८ ॥ ऐसा करने वाला व्यक्ति सात द्विषों वाली पृथ्वी<sup>२</sup> की परिक्रमा कर लेता है । सूर्य को मन में रखकर जो प्रदक्षिणा करता है ॥ १९ ॥ उस व्यक्ति द्वारा समस्त देवता प्रदक्षिणीकृत हो जाते हैं, जो व्यक्ति एकाहारी बनकर षष्ठी तिथि के

१. अनेक आदित्य-व्रतों का उल्लेख पुराणों एवं निबन्धों में किया गया है जैसे आदित्यवार व्रत, आदित्यमण्डलविधि, आदित्यव्रत, आदित्यशयन, आदित्यशाल्तिव्रत, आदित्यहृदयविधि, आदित्यभिमुखविधि, देखिए काणे, वही (हिन्दी), भाग ४, पृ० १०५-१०६.

२. अली एस०, एम०, दी जियागरफी इन दी पुराणज, पृ० २६-४६.

दिन सूर्य की अर्चना करता है ॥२०॥ अथवा नियम और व्रत व्यारण करके सूर्य की भवित से समन्वित होकर सप्तमी के ही दिन जो महाभाग सूर्य की अर्चना करता है वह अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है ॥२१॥ जो व्यक्ति रात और दिन उपवास करके सप्तमी अथवा षष्ठी<sup>१</sup> के दिन सूर्य की पूजा करता है वह सूर्य-लोक जाता है ॥ २२ ॥ शुक्ल पक्ष की सप्तमी<sup>२</sup> के दिन उपवास करके जो मनुष्य लाल रंग के समस्त उपहारों से सूर्य की उपासना करता है ॥२३॥ वह समस्त पापों से मुक्त होकर सूर्यलोक को जाता है, जो व्यक्ति सूर्य के समक्ष हाथ जोड़कर जल पीता है ॥२४॥

क्रमशः बढ़ाते हुए चौबीस तक ले जाकर फिर एक एक करके क्रमशः सक्षिप्त करता है। इस व्रत की समाप्ति का नियम दो वर्षों में होता है ॥२५॥ सूर्य का यह सप्तमी व्रत समस्त कल्पनाओं की सिद्धि करने वाला होता है।

१. कृत्यकल्पतरु, व्रत, ३८८-३८९ में षष्ठी पर उपवास तथा सप्तमी पर ‘भास्कर-प्रसन्न हो’ के साथ पूजा रोगों से मुक्ति का कारण बताया गया है। षष्ठीव्रत के विस्तृत विवरण के लिये देखें भविष्य, १.३६-४६, भविष्योत्तर, ३८-४२, कृत्यकल्पतरु, व्रत, ६८.१०३. हेमाद्रि; चतुर्वर्गचिन्तामणि, व्रत १.५७७-६२६, तिथि-तत्त्व, ३४-३५, कालनिर्णय १८४-१२. व्रतरत्नाकर, २२०-२३६, समयमयूख, ४२-४३, पुरुषार्थचिन्तामणि, १००-१०३, सूर्य-षष्ठी के लिए देखें हेमाद्रि, चतुर्वर्गचिन्तामणि, व्रत, १.६०८-६१५. निर्णयसिन्धु, १३४.

२. सप्तमी व्रत के विस्तृत विवरण एवं तुलनात्मक अध्ययन के लिए देखिए भृत्य, ७४-८०, पद्म, ५.२१.२१५-३२१; भविष्योत्तर, ४३-५३, नारदपुराण, १.११६. १-७२, कृत्यकल्पतरु, व्रत, १०३-२२५; चतुर्वर्गचिन्तामणि, १.६६२-८१०, वर्षक्रियाकौमुदी, ३५-३८, तिथितत्त्व, ३६-४०. व्रतरत्नाकर, २३१-२५५, विष्णुधर्मोत्तर, ३.१६६.१.७.

माघ महीने के शुक्ल पक्ष की सप्तमी का दिन सदैव सूर्य का दिन होता है ॥ २६ ॥ उसे विजया सप्तमी<sup>१</sup> कहते हैं और उसका महान कल बताया गया है । विजय सप्तमी में स्नान, दान, जप, ह्रोम और उपवास ॥ २७ ॥ सब कुछ महापातकों को नष्ट करने वाला होता है । जो मनुष्य आदित्य के दिन में शाहकर्म करते हैं ॥ २८ ॥ और महाश्वेता का जप करते हैं वे मनोवाञ्छित कल पाते हैं । जिन मनुष्यों को समस्त किया सदैव सूर्य को उद्देश्य करके सम्पन्न होती है ॥ २९ ॥ उनके बंश में क्रोई दरिद्र अथवा रोगी नहीं उत्पन्न होता । जो व्यक्ति इबेल, रक्त अथवा पीली मिट्टी से ॥ ३० ॥ उपलेपन करता है वह अभीष्ट कल प्राप्त करता है ॥ जो व्यक्ति विचित्र सुगच्छित पुष्पों से चित्रभरनु की ॥ ३१ ॥ पूजा करता है, उपवास करता है, वह मनचाही इच्छाओं को प्राप्त करता है ॥ जो व्यक्ति धी अथवा तिल के तेल से उस दिन दीप जलाता है ॥ ३२ ॥

वह दीपयु होकर स्वास्थयुक्त रहता है और आँखों से हीन नहीं होता । जो व्यक्ति दीप-दान<sup>२</sup> करता है वह निरन्तर ज्ञान रूपी दीपक से स्वयं प्रकाशित होता है ॥ ३३ ॥ वह व्यक्ति बुद्धि और इन्द्रियों से कभी भी मूर्ख नहीं बन पाता ॥ तिल अत्यंत पवित्र है इसलिये तिलदान अत्यंत श्रेष्ठ है ॥ ३४ ॥ इसी तिल से हवन करने पर अथवा दीप जलाने पर बड़े से बड़े पाप

\*

१. इस नाम के तीन व्रतों का उल्लेख किया गया है रविवार से युक्त शुक्ल पर सूर्य देवता तिथिव्रत, देलिए कृत्यकल्पयत्तर, व्रत, १२७-१२९ हेमाद्रि, चतुर्वर्गचिन्तामणि, व्रत, १.६६३-६६४. भविष्योत्तरपुराण, ४३. १.३०; द्वासरा माघ शुक्ल ७ पर सूर्य देवता के लिये उपवास, सूर्य सहस्र नामोच्चारण, हेमाद्रि, व्रत, १.७०७-७१६; तीसरा व्रत गरुडपुराण १.१३०-७.८ में किया गया है जो सात सप्तमियों में किया जाता है उस दिन उपवास गेहूँ, माघ, यव, स्वस्तिक, पीतल, पत्थरों से पिसा भोजन, आदि का विधान है ।

का नाश हो जाता है ॥ जो व्यक्ति निरन्तर देवमन्दिरों में ॥३५॥ चौराहो पर, गलियों में दीप<sup>१</sup> जलाता है वह सौभास्यशाली और रूपवान् होता है ॥ दीप सदैव हविष्य से दीप्त करना चाहिए ॥ दूसरा स्थान औषधियों के रस का है ॥३६॥ परन्तु चर्बी, मज्जा और हड्डियों के रस से कभी भी दीप नहीं जलाना चाहिए ॥ दीप की लौ उच्चगामिनी होनी चाहिए, कभी अधोगामिनी नहीं होनी चाहिए ॥३७॥ इसी प्रकार दीपदान तिरछा नहीं होना चाहिए । जलते हुए दिये को कभी न चुराना चाहिए और न तष्ट करना चाहिए ॥३८॥ दिया चुराने वाला व्यक्ति अंधा हो जाता है । उसकी मति अधकार के समान प्रभाहीन होती है और दीपदान करने वाला व्यक्ति शीप-माला के समान स्वर्गलोक में शोभा पाता है ॥३९॥ जो व्यक्ति सदैव चन्दन, अगुरु और कुंकुम से सूर्योपासना करता है वह मनुष्य निरन्तर धन, कीर्ति और लक्ष्मी से पूजा जाता है ॥४०॥

लाल चन्दन से मिश्रित लाल फूलों से जो पुण्यात्मा मनुष्य उदीपमान सूर्य को अर्घ्य प्रदान करता है वह सूर्य से सिद्धियाँ प्राप्त करता है ॥४१॥ उदयवेला से प्रारम्भ करके अस्त वेला तक किसी मन्त्र अथवा स्तोत्र का सूर्य के समक्ष मुँह करके जप करता हुआ व्यक्ति सिद्धि प्राप्त करता है ॥ यह उत्तम आदित्य-ब्रत<sup>२</sup> महान् पातकों का नाश करने वाला है ॥४२॥ उदय

१. प्रत्येक पुण्य काल जैसे संक्रान्ति ग्रहण, एकादशी विशेषतया अश्विन पूर्णमासी से कातिक पूर्णमासी तक किसी मास भर धृत अथवा तेल के दीपों को मन्दिरों, नदियों, चौराहों आदि में जलाने से पुण्य प्राप्त होता है देखिए अग्नि पु०, २००, अपराक्ष, ३७०-३७२, हेमाद्रि, ब्रत, २.४७६-४८२, कृत्यरत्नाकर, ४०३-४०५, दान्तसागर, ४५८-४६२.

२. आदित्याभिमुख ब्रत की ओर संकेत है देखिए कृत्यकल्पतरु, ब्रत, १८-१९, हेमाद्रि, चतुर्बांशचिन्तामणि, ब्रत, २.५२५-५२६, कृत्यरत्नाकर ४६४-४६५

काल में अर्ध्य के साथ ही साथ बछड़े सहित गाय को भी दिलाना चाहिए । इस प्रकार की श्रद्धा से युक्त मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है ॥४३॥ सुवर्ण, धेनु, वृषभ, वस्त्र सहित पृथ्वी और अर्ध्य प्रदान<sup>१</sup> करके सदैव मनुष्य जन्म जन्मान्तर का फल प्राप्त करता है ॥४४॥ मनुष्य को चाहिए कि अग्नि, जल, आकाश, पवित्र भूमि, प्रतिमा और पिण्डी में विविष्टपूर्वक अर्ध्य छढ़ाए ॥४५॥ न पौछे मूँह करके और न तिरछे अपितु सदेव अभिमुख होकर अर्ध्य देना चाहिए और भवितसहित धी तथा गुणगुल का होम करना चाहिए ॥४६॥ ऐसा मनुष्य तत्काण समस्त पापों से मुक्त हो जाता है इससे संशय नहीं है । श्रीवास्क, तुरुष्क, देवदारु ॥४७॥ कपूर और अगुरु की धूप देने वाले स्वर्ण-गामी हीते हैं । सूर्य चाहे उत्तरायण हो, चाहे दक्षिणायन विशेष रूप से उसकी पूजा करने वाले समस्त पापों से मुक्त हो जाते हैं ॥४८॥

विषुवीय विन्दु<sup>२</sup> सूर्य ऋहण, षडशीति मुख के अवसरों पर भवितपूर्वक सूर्य की पूजा करने वाला व्यक्ति किर कभी अपने को चिन्तित नहीं करता ॥४९॥ इस प्रकार समस्त अवसरों पर अथवा बिना अवसर के ही जो व्यक्ति सूर्य की भवितपूर्वक उपासना करता है वह सूर्यलोक में सुशोभित होता है ॥५०॥ खिचड़ी, खीर, मालपुआ और मांस मिश्रित चावल से बलि प्रदान करके मनुष्य समस्त कामनाओं को प्राप्त कर लेता है ॥५१॥ वृत्त से तर्पण करके मनुष्य कार्य सिद्ध हो जाता है । दूध से तर्पण करके मनस्ताप से मुक्त हो जाता है ॥५२॥ दही से तर्पण करके मनुष्य कार्य सिद्धि प्राप्त करता है और मधु से तर्पण करके सूर्य से सिद्धि प्राप्त करता है ॥५३॥ जो समा-

१. दान की वस्तुओं के लिये देखिए अष्टराक, २८६-६० हेमद्रि, चतुर्वर्गचिन्तामणि, दान, पृ० १६०.

२. मेष राशि या तुला राशि का प्रथम विन्दु जिसमें सूर्य शारदीय या वासन्तिक विषुव में प्रविष्ट होता है ।

हित चित्त होकर सूर्य के स्नान के लिए तीर्थ से पवित्र जल ले आता है वह श्रेष्ठ गति प्राप्त करता है ॥ ५४ ॥ छत्र, छजा, वितान, पताका और चंद्र को श्रद्धापूर्वक सूर्य को निवेदित करके मनुष्य अभीष्ट वस्तु को प्राप्त करता<sup>१</sup> है। मनुष्य भवितपूर्वक जो द्रव्य सूर्य को प्रदान करता है सूर्य देवता उसे उसका सौ हजार गुना अधिक उत्पन्न करके देता है। मनुष्य का जो भी मन, वाणी अथवा शरीर का जो भी पाप होता है सूर्य को प्रणाम करने से उसका ल ही नष्ट हो जाता है ॥ ५५ ॥

सूर्य की एक ही दिन की पूजा करने से जो फल प्राप्त होता है वह फल यथोक्त दक्षिणा वाले सैकड़ों यज्ञों से भी नहीं मिलता ॥ ५६ ॥ इस प्रकार साम्बपुराण में अड़तीसवाँ अध्याय<sup>२</sup> समाप्त होता है ।

१. सूर्य-त्रितीयों के फलों के विस्तृत ज्ञान के लिए देखिए विष्णु ध्वमोक्षार-पुराण, ३.१७१.१-७. भविष्य-पुराण, १.६८-८-१४.

२. १-३अ, ४ब, १६अ, २१अ, २४-२६अ, ३२-३५अ, ३६ब-३८, ४०ब-४६अ, ४७ब-४८अ, ५०, ५२ब और ५५ब-५८ श्लोकों को छोड़कर यह पूरा अध्याय भविष्यपुराण, १-८०, ८-११, १४ और १६-१८; १-८१ २-३ और १५ब-१६अ; १-८२-३अ, ६अ, १-९३; १-३-५अ, ७-९अ, १५ब-१६अ, २६अ, २८, ३०, ३२अ, ४०अ-६४ और ६५ में ग्रहण किया गया है। अस्तु इस अध्याय को मूल भाग का अंश माना गया है और इसका रचना काल ५००-८०० ई० के मध्य रखा गया है। श्लोक संख्या १-२, ३४अ और ५३ ब के अतिरिक्त यह पूरा अध्याय ब्रह्मपुराण, २६, ३-३१ में संग्रहीत है। देखिए हाजरा, दो साम्ब-पुराण श्रू दो ऐजस, जर्नल आफ एशियाटिक सोसाइटी, लेटर्स, भाग १८ (२)।

## अध्याय ३६

बृहद्बल बोले—हे ब्रह्मन ! हे गुरुदेव ! आपने परम कल्याणब्रह्म अनश्वर पुराण को संक्षेप और विस्तार दोनों ही विधियों से मुझे सुनाया ॥१॥ फिर भी हे प्रभो ! साम्ब के प्रति मेरा संशय अभी भी नहीं हूरं हो सका । हे महाभाग । हे महामुनि ! आप उसे मुझे बताएं ॥२॥ महात्मा भास्कर द्वारा परम धर्मात्मा वे साम्ब किस प्रकार दीक्षित किए गए यह आप मुझे बताये ॥३॥ वशिष्ठ बोले—मन को एकाग्र करके और मनोवृत्ति को सम्यक रूप से व्यवस्थित करके परम शद्गा से युक्त होकर उस अभीष्ट (विषय) को सुनो ॥४॥ हे राजन ! अब इस पुराण का जो उत्तर भाग भास्कर द्वारा उपदिष्ट किया गया उस श्रेष्ठ दीक्षा-मण्डल को मैं तुम्हें बता रहा हूँ ॥५॥ हे महाबाहु ! साम्ब के लिए जो उपदेश सूर्य ने दिया उस महामण्डल नाम वाले मन्त्र से विभूषित तत्त्व को मैं तुम्हें बता रहा हूँ ॥६॥ यथा व्यवस्थित स्थान से निकलकर पहले क्रमशः दक्षिण, पूर्व, पश्चिम और उत्तर में भूमि का शोधन करना चाहिए ॥७॥ पूर्व दिशा में भूमि शोधन करने पर सदा विजय होती है

१. दीक्षा की परम्परा वैदिक-उत्पत्ति को है देखिए तैत्तिरीय संहिता, ६.१.१.३; ७.४.८. ऐतरेयब्रह्मण; १.३. शतपथ ब्राह्मण, ३.२.१.१६. एवं २२. अथर्ववेद, ७.१.१, किन्तु तात्त्विक परम्परा ने इसका विस्तार किया देखिए प्रपञ्चसार, ५ एवं ६, कुलार्णवतन्त्र १४३६; शारदा तिलक, पटल ४; नित्योत्सव, ४-१०, ज्ञानार्णव, पटल, २४, विष्णु-संहिता १०, महानिवर्णितन्त्र, १०. ११२-११६. लिङ्गपुराण, २-२१- रघुनन्दन, दीक्षातत्त्व, २, ६४५-६४६.

और अटल धन प्राप्ति होती। दक्षिण दिशा में शोधन से शत्रुओं का निधन और मित्रों का लाभ होता है ॥८॥

पश्चिम दिशा में भूमिशोधन करने पर शत्रुओं की वृद्धि होती है और रोग मिलता है। सौम की दिशा में भूमि-शोधन करने पर शान्ति एवं पुत्र की प्राप्ति होती है और प्रजा मानसिक दुःख से विहीन होकर प्रसन्न रहती है ॥९॥ अर्जित की दिशा शोषण करने वाली कही गई है। दक्षिण-पश्चिम दिशा पाप मिथित है। वायु की दिशा अव्यवस्था देने वाली तथा ईशान की दिशा ज्ञान प्रदान करने वाली है ॥१०॥ अपनी अपनी इच्छा के अनुसार दक्षिण होकर साधक लोग दोषयुक्त भूमि को लावंकर निरुपित स्थान वाली पृथ्वी का शोध करते हैं ॥११॥ नीचे रत्न मात्र खोद करके और चारों ओर पचोस अगुल खोदकर स्थान की समतल बनाकर सर्वप्रथम उस पर पानी बहा देना चाहिए ॥१२॥ सर्वप्रथम उस स्थान पर बह्य वृक्ष (डाक अथवा गूलर) के समान पवित्र बांस गाढ़ देना चाहिए, चारों तरफ की भूमि को भली भाँति समतल और सुन्दर बना देना चाहिए ॥१३॥ शान्तचित्त होकर गूलर की लकड़ी का हल बनाकर और सौने का फाल लगाकर उस जमीन को जाते ॥१४॥ उसके उपरान्त समतल करके चूने के लेप से लेप कर देना चाहिए तदुपरान्त लाल चन्दन के जल से तथा पंचगच्छ<sup>१</sup> से सींचना चाहिए ॥१५॥ लाल चन्दन से ही लेप किये जाने का विधान है ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि भूमि चिटकने न पाए ॥१६॥

चिटकने पर भूमि दूषित हो जाती है और यदि वह नीची रह गई हो तो दरिद्रता होती है। यदि कहीं उठी रह गई हो अथवा उसमें छेद हो गए हों तो समस्त आपत्तियों को ले आने वाली होती है ॥१७॥ इस प्रकार मन को आहलादित करने वाली पवित्र पृथ्वी को समुचित करके थत्नपूर्वक उसकी रक्षा करनी चाहिए ॥१८॥ उस पृथ्वी के उत्तरी ओर पर विशाल

१. “कीरं दधि तथा चाज्यं भूत्रं गोमयमेव च”

गुरुभवने बनाना चाहिए समृद्धियों से परिपूर्ण शिष्य गुरु को स्वयं को समर्पित कर दे ॥१६॥ गुरु<sup>१</sup> विशुद्ध कुल में पैदा हुआ हो, वेद-वेदांग में पारंगत हो, आत्मविद्या में निरत हो, इन्द्रियों का दमन किये हो, देवताओं और ब्राह्मणों में भक्ति रखने वाला हो ॥२०॥ सन्यासी हो और वेदव्रथी में विहित मार्ग का अनुसरण करने वाला हो, मानवधर्म को जानने वाला हो, ब्राह्मण हो<sup>२</sup> त्रिकालवेत्ता हो, इसी प्रकार का गुरु होना चाहिये । अब इसके आगे सर्व श्रेष्ठ शिष्यों के विषय में कहूँगा ॥२१॥ गुरु के ही गुणों के समान शिष्य भी हो, उसके कार्य में लगा हुआ हो, भक्तिभावना से प्रेरित हो और धर्मप्राप्ति के फल के प्रति लगा हुआ हो<sup>३</sup> ॥२२॥ ऐसे व्यक्तियों को छोड़ देना चाहिये जो हीन जाति के हों, नास्तिक हों, अपवित्र हो । देवता, ब्राह्मण अथवा गुरु की सर्वदा निन्दा करते हों ॥२३॥ जिस व्यक्ति की सगुण अथवा निर्गुण भक्ति प्रतिष्ठित हो वही व्यक्ति तत्त्वज्ञ गुरु द्वारा अनुग्राह्य होता है ॥२४॥

महामण्डल वेत्ता आचार्य जहाँ बैठता है वही वह जगतपति लोकनाथ

१. गुरु की योग्यताओं और शिष्य के गुणों का सुन्दर विश्लेषण तत्त्वसार, १ में मिलता है । गन्धवत्तन्त्र, २. शारदातिलक, २-१४२-१४४ सर्वांगमानां सारज्ञः सर्वशास्त्रार्थं तत्त्ववित । अमोघवचनः शान्तो वेदवेदार्थं, पारगः योगमार्गनुसन्धायी देवता हृदयाङ्गमः ।” तुलना कीजिए कुलार्णवतन्त्र, उल्लास १२ एवं १३, शारदातिलक, १.१४५-५२, ज्ञानसिद्धि, १३-६-१२ प्रज्ञो प्राय विनिश्चय सिद्धि, ३, ६, १६;

२. अग्रजन्म का अर्थ ब्राह्मण लिया गया है देखिए दशकुमारचरित, १३.

३. शिष्य की शुद्धात्मा, एवं पुरुषार्थ के प्रति अनुरक्त होना चाहिये देखिये मत्स्यसूक्त तत्त्व, १३; शुण तोषिणी, १०८.

सूर्य<sup>१</sup> निवास करता है ॥२५॥ उस प्रदेश में पवित्र जनपद होते हैं । प्रजाएँ उपद्रवविहीन होती है । वहाँ के नराधिप कृतकृत्य होकर आदर प्राप्त करते हैं ॥२६॥ इस प्रकार समस्त दीक्षाओं से समन्वित, समस्त वेदों से पवित्र गृह्यशास्त्रों से युक्त वह व्यक्ति परमज्ञान को जानकर ॥२७॥ तथा सर्वधि साधक अविकल्प और विकल्प योग को समझकर, कन्या द्वारा काते गए सूत से अथवा मन्दार की सुई से ॥२८॥ तिहरे गए सूत्र को लपेटे जिसमें कि न गाठे हों और न बाल इत्यादि मिले हुये हो 'देवस्यत्व' इस मन्त्र द्वारा तीन बार उच्चारण करके तिहरे हुए सूत्र को सूर्य को समर्पित करे । इसके बाद कार्य प्रारम्भ करे ॥२९॥ सोने का पात्र सर्वप्रथम लेकर तदन्तर चाँदी और गूलर का पात्र क्रमशः लेकर दिभदेवताओं को अनुसार अर्घ्य प्रदान करे ॥३०॥ तदुपरान्त नारायण नाम बाले परमात्मा तथा तेजज्ञान स्वरूप सूर्य को अर्घपात्र निवेदित करे ॥३१॥ इसी क्रम से धूप दिखाए और सुसंस्कृत बलिकर्म करे । कर्म-सिद्धि के लिए तीन मीठी वस्तुओं से युक्त तिलो का हवन करे ॥३२॥

(हवन का मंत्र इस प्रकार है) ओम परमात्मा इन्द्र के लिए स्वाहा । ओम शुचिमृति अग्नि के लिए (ठः ठः<sup>२</sup>) हविष्य प्रदान, ओम धर्मात्मा यमराज के लिए (ठः ठः) हविष्य प्रदान, ओम कालात्मक नैऋत्य के लिए (ठः ठ ) हविष्य प्रदान, ओम स्पशीत्मा वायु के लिए (ठः ठः) हविष्य दान, ओम अमृतात्मा चन्द्रमा के लिए (ठः ठः ) हविष्य प्रदान ओम ज्ञानात्मा ईशान के

१. तान्त्रिक परम्परा के 'अनुसार गुरु और देवता एक ही होता है देखिये योगिनीतन्त्र -१ सर जान वुडरफ, हन्डोडकशन टू तन्त्रशास्त्र, पृ० ६६ लिङ्ग-पुराण १,८५ "यो गुरुः स शिवः; प्रोक्तोयः शिवः स गुरुः स्मृतः" प्रपञ्चसार ६ १२, शारदातिलक; ५-११३-११४; देवीभागवत, ११.१.४६. ब्रह्माण्ड-पुराण ४३-६८-७०.

२. 'ठ' विपत्तिनाशक वर्ण है साम्ब-पुराण, ४०, ६.

लिए (ठः ठः) हविष्य प्रदानं, औम तेजोरूप उस शेषठ परमात्मा की हम शरण में जाते हैं वह हमें तेजस्वी बनाये ॥३३॥ हे राजन् ! महामण्डल से उत्पन्न इस पवित्र महामंत्र को, जो निरन्तर स्परण करते हैं वे द्विजों के लिये हितकारी होते हैं ॥ ३४ ॥ इसे शरीर-मण्डल का महामन्त्र कहा गया है । इसीलिए प्राचीन ऋषियों द्वारा मण्डल<sup>२</sup> का महत्व बताया गया है ॥ ३५ ॥ आठ अंगुन की कणिका होनी चाहिए और उसी के बराबर केसर । कर्णक और केसर के ही बराबर पद्म होना चाहिये ॥ ३६ ॥ पद्म के बराबर द्वार होना चाहिये और प्रकोष्ठ द्वार के बराबर होना चाहिये, वीथि को प्रकोष्ठ के बराबर होना चाहिए ॥३७॥ यही मण्डल की स्थिति है । गायत्री मन्त्र से चारों ओर मन्त्रित सूर्यमण्डल का चित्र सफेद, लाल, पीला, हरा अथवा काला

१. वैदिक गायत्री के अनुकरण पर तांत्रिक गायत्री मन्त्र का विवरण किया गया है जो शूद्र एवं स्त्रियाँ जप सकती थी, तुलना कीजिये महानिवार्णतन्त्र के ब्रह्म गायत्री मन्त्र से, ३.१०६-१११ “यरमेश्वराय विद्धहे परतत्काय षीमही, तत्त्वो ब्रह्मा प्रचोदयात् ।”

२. तांत्रिक पूजा का एक अभिन्न अंग मण्डल था यद्यपि इसकी उत्पत्ति वैदिक साहित्य में देखी जा सकती है—ऋ०, ४.२८. २, ५.२९.१०; तै० स० ५.३.६.२ शा० ब्रा०, ४.१-१.२५, बृह० उष० ५.५.२; २.३.३ तथापि मण्डलों के माध्यम से देवता की पूजा पौराणिक एवं तांत्रिक साहित्य की देन है । देखिए मत्स्य पू०, ५८.२२, ६४०१२-१३, ६२.१५, ७२.३०, ७४.६-८; बृहतसंहिता, ४७.२४. ब्रह्म-पुराण, २८.२८, ६१.१-३; ब्राह्म-पुराण, ६६.६.११ अग्निपुराण, ३२०. हृष्णचरित, ३, शारदातिलक, ३.११३-११८, १३१-१३६, ज्ञानार्णवतन्त्र २६०-१५-१७. महानिवार्णतन्त्र, १०. १३७-१३८ विस्तार के लिए देखिए एरिक हाई, काण्ट्रीव्यूशंस दू वी स्टडी आफ मण्डल ऐ०८ मुद्रा पृ० ५७-६१.

बनाना चाहिये ॥३८॥ चारों ओर बाहर से मण्डल की आकृति आठ हथि की होनी चाहिये । उसके आधे भाग में मध्यवापी के समान पुर का चित्र बनाना चाहिए ॥३९॥ और उसके भीतर बारह पत्रों से विभूषित कमल<sup>२</sup> बनाना चाहिए । विधान जानने वाले को उन्हीं पत्रों में सूर्य की बारह मूर्तियों को बैठाना चाहिए ॥४०॥

पुनः एक वर्ग का निर्माण करके उसमें वज्र, शक्ति, दण्ड, खंग, पाश, पताका, गदा, त्रिशूल यथोचित रूप से बनाना चाहिये ॥४१॥ नर, विश्वात्मक, शश्मभु, नमस्कार, वषट्कृत, संबुद्ध, विश्वकर्ता, निष्कल, ज्ञानसम्भव, ॥४२॥ मान, उन्मान, महानस्त्व ये आधारभूत बारह जगन्नाथ बताये गये हैं ॥४३॥ वेदों के बारह मंत्रांश सूर्य देवता की बारह मूर्तियाँ हैं जो इस प्रकार हैं अभौषवे, विष्णुधामच्छंदो मनोज्योतिः, चत्वारि शृंगा आदि, ते प्राणाय आदि, अग्नि मीढे आदि, इषे त्वा ऊर्जे आदि, अग्नि आयाहि आदि, शब्दो देवो आदि, कृत्यवासा आदि तथा ब्रह्मायज्ञानम आदि ॥ ४४ ॥ इन सबके बीच मेरुहाकली कल्पिका, प्रबोधिनी, लीलाम्बरा, धनान्तस्था और अमृता नाम से प्रसिद्ध जूति का निर्माण होना चाहिये ॥४५॥ शुक्ल, जयन्त, विजय, अनैकवर्ण,

१. मण्डल के माध्यम से सूर्य की पूजा पूर्वकालीन “पुराणों में भी उल्लिखित हैं मत्स्य-पुराण, ७२.३०, ७४.६,८, तुलेना कीजिए—ब्रह्मपुराण २८-२९, ६१.१.३

२. मत्स्य-पुराण ६७.५-६ में १२ पत्रों वाले कमल के माध्यम से द्वादश सूर्यों की पूजा का उल्लेख किया गया है किन्तु यह द्रष्टव्य है कि प्रारम्भिक पुराणों में द्वादश सूर्यों के जो नाम दिये गये हैं वे यहाँ पर नहीं हैं उनके स्थान पर नर, विश्वात्मक, शश्मभु, नमस्कार, वषट्कृत, संबुद्ध, विश्वकर्ता, निष्कल, ज्ञानसम्भव, मान, उन्मान, महानस्त्व ये १२ जगन्नाथ बताये गये हैं ।

हुताशन, हुतार्चि, व्यापक-ये सात (सूर्य के) अश्व<sup>१</sup> बताये गये हैं ॥४६॥ (इन सबके लिये इस प्रकार यज्ञ करना चाहिये ) ओम हारिणी के लिये स्वाहा, यह इडा<sup>२</sup> है, ओम विहारिणी के लिये स्वाहा, यह सुपुम्ना है । ओम आनन्दा के लिये स्वाहा, यह बिन्दु है । ओम भाविनी के लिये स्वाहा, यह संज्ञा है । ओम मोहनी के लिये स्वाहा, यह प्रभदिनी है । ओम ज्वलिनी के लिये स्वाहा, यह प्रकषिणी है । ओम तापिनी के लिये स्वाहा, यह महाकाली है । ओम कल्पा के लिये स्वाहा, यह कलिपका है । ओम कुद्धा के लिये स्वाहा, यह प्रबोधिनी है । ओम मृत्यु के लिये स्वाहा, यह नीलाम्बरा है । ओम हराति के लिए स्वाहा यह घना है । ओम द्रूम के लिये स्वाहा, यह शुक्ला है । ओम शुद्ध के लिये स्वाहा, यह जयन्त है । ओम महाघोरण के लिये स्वाहा, यह विजय है । ओम चित्र के लिये स्वाहा, यह अनेकवर्ण है । ओम रुद्र के लिये स्वाहा, यह हुताशन है । ओम संबलित के लिये स्वाहा, यह हुतार्चि है । ओम महाशिखा के लिए स्वाहा, यह व्यापक है । ओम ज्वलिन-चण्ड-लोकन के लिये स्वाहा, यह सारथि के स्थान पर बैठा अरुण है । इस प्रकार शास्त्रपूर्वक पूरे सूर्यमण्डल का आलेखन करके यज्ञ-कुंड में पहले से ही प्रतिष्ठित की गयी अग्नि में पुनः संस्कार करे ॥ ४७ ॥ गायत्री मंत्र का पाठ करके परिसमूहन और उपलेपन करे । 'शज्ञो भवन्तु वनस्पत' इस उल्लेखन बिन्दु के द्वारा ॥४८॥

१. यह अनाहत चक्र (हृदय के पास) का स्मरण दिलाते हैं जिसमें १२ पत्रों वाले कमल का विधान है, जिसमें वायुमण्डल और सूर्यमण्डल होते हैं और मध्य में शक्तिकाकिनी पाश, कपाल आदि से युक्त बैठी हैं; देखिये बुडराफ, दी सरपेन्ट पावर, पृ० ३८२-३८३.

२. मानव शरीर में अनेक नाडियाँ हैं जिसमें प्रमुख है इडा (ब्रायी ओर बायें अण्डकोष से लेकर बायें नासिका तक), सुपुम्ना (शरीर के मध्य में रीड की नाड़ी में) एवं पिगला (दाहिनी ओर दाहिने अण्डकोष से लेकर दाहिनी नासिका तक) देखिये बुडराफ, इन्द्रोडक्षन टू तत्त्वशास्त्र, पृ० ४८-५०

अश्युक्षण बिन्दु<sup>१</sup> द्वारा अ.बा.अर से इस प्रकार इस अग्नि की स्थापना करना उत्तम होता है उसके मध्य में प्रणव<sup>२</sup> होना चाहिये। अग्नि-त्रिया करके तब पूर्वोक्त विधि से बारह नाम वाले दूष निश्चित हवन सामग्री का हवन करे और आधी हवन सामग्री गायत्री मंत्र से अभिमंत्रित करके अग्नि में प्रदान करे ॥४९॥ पूर्वोलिखित मंत्र<sup>३</sup> द्वारा सबको हविष्य देना चाहिये। यज्ञ के अंत में अग्न ग्रहण करके गुरुदेव की पूजा करें। गुरु की पूजा विशेष प्रकार के कहे गये विधान के अनुसार करनी चाहिये ॥५०॥ उस विधि के साथ ही साथ प्रभात-वेल, में पुण्याह वाचन किये हुये दोनों व्रत परायण गुरु-शिष्यों को धर्मसंलग्न होना चाहिए ॥५१॥ सर्वप्रथम बितान, घ्वजा, मालाओं और कलशों से विभूषित पूर्वोक्त ढंग से सूर्यमण्डल का चित्र बनाना चाहिये ॥५२॥ तद तर विमल दर्पण, छत्र, वस्त्र से अवगुणित नाना प्रकार के पूजोचित उपहारों से ॥५३॥ गुरुमंत्र परायण होकर पूजा करनी चाहिये। कुश से युक्त चार अंगूल ऊँची वेदी बनाकर ॥५४॥ पश्चिमी मण्डल द्वार पर शिष्य को ठहराना चाहिये ॥५५॥ तदन्तर सूर्य की पूजा करके, मन्त्रोक्त अभिषेक करके

१. बिन्दु शिर्वशक्ति की एकात्मकता<sup>४</sup> से उद्भूत परम तत्त्व है। उससे सृष्टि का क्रम चलता है, उसे एक वृत के रूप में चित्रित करते हैं जिसके मध्य में ब्रह्मपद होता है देखिए कालीचरण, टीका, षट्कक्ष निरूपण, ३७. शारदातिलक, अध्याय १.

२. पवित्र अक्षर 'ओम'; परम पुरुष, ब्रह्म, रघु ० १०११, मनु० २.७४. कुमार० २.१२. छान्दोग्य ऊ० ५.

३. मन्त्र शब्द सात्र नहीं है वह परमात्मा का स्वरूप है। देवता, मन्त्र एवं गुरु में कोई अन्तर नहीं है। समान्य व्यक्ति के लिये तात्त्विक मन्त्र अर्थहीन शब्द मात्र लगते हैं किन्तु साधक को गुरु की कृपा से मन्त्र का प्रतीकात्मक अर्थ और उसके माध्यम से परमात्मा का स्वरूप प्रकट होता है देखिये काणे, हिंस्ट्रौं ओफ धर्मशास्त्र, ५वंश० ५१-५६

और प्रदक्षिणा करके ॥५६॥

शिष्य के मण्डल में प्रविष्ट हो जाने पर वह तत्त्वन्यास<sup>१</sup> सम्पन्न करना चाहिये ॥५७॥ ओम औं द्वारा शिरस्पर्श, ओम औं द्वारा हृदय स्पर्श । ओम ईं द्वारा नाभिस्पर्श । ओम ईं ओम द्वारा अक्षुस्पर्श । ओम ईं ओम द्वारा नामिकास्पर्श । ओम फट् ओम द्वारा कर्णों का स्पर्श । ओम हूँ ऊँ द्वारा मुख का स्पर्श ओम क्षं ऊँ द्वारा जिह्वास्पर्श, ओम क्षं द्वारा शिखा का स्पर्श और पुनः ओम ईं द्वारा पूरे शरीर का स्पर्श । इस विधि से न्यास सम्पूर्णित करके अष्टपुष्पिक देना चाहिए, ओम पद्म के बीच में भूतात्मा किरणपत्रि के लिये स्वाहा, ओम पूर्व दिशा के खद्योति के लिये स्वाहा, ओम ! दक्षिण दिशा में सप्तस्त्र के लिये स्वाहा, ओम वेदिकम् दिशा में अमृत के लिये स्वाहा ओम ! उत्तर दिशा में बक्षस्तम् के लिये स्वाहा, ओम अग्निकोण में अव्यक्त के लिये स्वाहा, ओम नैरित्य में क्षय के लिये स्वाहा, ओम वायव्य कीरण में अक्षय के लिए स्वाहा, ओम ईशानकोण में संघाति के लिये स्वाहा, इस प्रकार पूर्वोक्त मंत्रों द्वारा अष्टमूर्तियों के लिए हविष्य प्रदान करे और

१. न्यास एक तान्त्रिक पूजा क्रत्य है जिसका तात्त्वर्य है शरीर के कुछ अंगों पर अवस्थित होने के लिये किसी देवता या देवताओं, मन्त्रों का भानसिक रूप से आह्वान करना, जिससे शरीर पवित्र हो जाय और पूजा एवं व्यान करने योग्य हो जाये और शरीर में देवता का निवास हो । न्यास के कई प्रकार हैं जिसमें तत्त्वन्यास भी एक है देवप्रतिष्ठात्मन्, पु० ५०५.

२. यहाँ अ से क्ष तक के अक्षरों का न्यास किया गया है जो अन्तर्मातृका न्यास में प्रयुक्त होताँ हैं, काणि, हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, ( हिन्दी सं ) ५. पृ० ६५. 'क' से नित्य का क्षय द्योतित होता है, साम्ब-पुराण, ४०-१६.

मन्त्रन्यास<sup>१</sup> किए हुये अभिषिक्त व्रतकि को दीक्षायोग से पूकत करना चाहिये । ओम विन विन के लिये स्वाहा करके यज्ञोपवीत देना चाहिए, ओम धर्मराज के लिए स्वाहा कहकर दण्डकाठ देना चाहिये । ओम वारबार किये गये पापों के समृह के लिये स्वाहा । मेखलां का यज्ञोपवीत बृक्ष की त्वचा से बना होना चाहिए और दण्डकाठ पलाश, गूलर और खदिर के दण्ड का होना चाहिए । मेखला कुश, मूँज, मौर्वी अथवा बेन की बनी हाँनी चाहिये । (पुनः इस प्रकार यज्ञ किया जाय) ओम सरस्वती के लिए स्वाहा, ओम वेदवती के लिए स्वाहा, ओम चर्यावती के लिये स्वाहा, ओम सत्यवती के लिये स्वाहा, ओम ध्रुदावती के लिये स्वाहा, ओम स्वाभावती के लिये स्वाहा, ओम प्रतिष्ठावती के लिये स्वाहा इस प्रकार इन मंत्रों से प्रज्वलित की हुयी अग्नि में घी की आहुतियाँ देकर पाक यज्ञ पात्र से पूर्वोक्त मंत्र द्वारा सात आहुतियाँ दे । इस प्रकार विधान पूर्ण करके गुरु अग्निकुर्ंड में भस्म लेकर शिष्य की देह में पात्र स्थानों पर लगाये (और इस प्रकार मंत्रों का उच्चारण करें) । ओम पूर्वमध्य में चिन्त के लिये स्वाहा, ओम पूर्व में खम के साथ विष्णु के लिये स्वाहा, ओम दक्षिण में हिंसा के लिये ठः ठः के साथ स्वाहा, ओम पश्चिम में विष्णान के लिए ठः ठः के साथ स्वाहा, ॥५८॥ ओम । उत्तर में लिखन के लिये ठः ठः के साथ स्वाहा, इस प्रकार शरीर के समस्त अंगों में भस्म का लेप करे और कहे-ओम-सोमवती के लिए स्वाहा, ओम सुभगा के लिये ठः के साथ स्वाहा, ओम प्रेमवती के लिए ठः ठः के साथ स्वाहा, ओम वाजिनवती के लिए ठः ठः के साथ स्वाहा, इन आहुतियों

१. मन्त्रन्यास न्यास का एक भेद है अत्य प्रकार है हंस न्यास, प्रणवन्यास, मातृकान्यास, करन्यास, अंगन्यास, पीठन्यास—देखिये ज्यात्यर्थांहिता, पठल ११, प्रपञ्चसार, ६, कुलाणवतन्त्र, ४.१८ शारदातिलक, ४.२६-४१, ४०५-७, महानिविगितन्त्र, ३.४१-४३; ५, ११३-११८.



को देकर होम के अंत में गृह-समेत समस्त उपकरणों को बिना प्रार्थना किये हुये विधान-पूर्वक दीक्षा करने वाले गुरु को दे देना चाहिये ॥५६॥ इस प्रकार साम्ब-पुराण में इहां अध्याय<sup>२</sup> समाप्त होता है ।

१. तुलना कीजिये शारदातिलक, ५.११३-११४ "...शरीरमर्थं प्राणं च सर्वं तस्मै निवेदयेत् ।"

२. यह अध्याय साम्ब-पुराण के उल्लं भाग का श्री गणेश करता है अध्याय ३६-४३, और ४७-५३ तक को साम्ब-पुराण में उत्तर काल (१२५०-१५०० ई०) के मध्य प्रकाशित किया गया । प्रस्तुत अध्याय की उत्तरकालीनता के पक्ष में अनेक आन्तरिक सम्बन्ध हैं जैसे इस अध्याय की विषय-वस्तु तान्त्रिक परम्परा के गृहदीक्षा, मण्डलनिर्मण, न्यास एवं प्रतीकात्मक मन्त्रों से सम्बन्धित है, जब कि मूल भाग (१-३८ अध्यायों) में वैदिक एवं पौराणिक परम्परा के माध्यम से सूर्यपूजा का विधान है । इस अध्याय के प्रारम्भ में ही कहा गया है कि वृहदवल्ल ने संक्षेप एवं विस्तार से साम्ब-पुराण को सुना, इसके उपरान्त भास्कर द्वारा उत्तर भाग के कथन का उल्लेख है देखिए हाजिरा, दी साम्ब-पुराण ए सौर वर्क औफ डिफरेन्ट हैन्ड्स, अनाल्स आफ भण्डारकर ओरियन्टल रिचर्स इन्स्टीच्यूट, ३६, पृ० ८१० ।

## अध्याय ४०

इसके उपरान्त मैं कल्याणकारी यज्ञ-स्थान की विवि बताऊंगा, जो कि यज्ञो का परम यज्ञ है, यज्ञ का अग है, यज्ञ से उत्पन्न हुई है ॥१॥ यज्ञमूर्ति (सूर्य देवता) को नमस्कार करके यज्ञ द्वारा आपको हविष्य प्रदान कर रहा है। ज्वालासमूह से युक्त, समस्त कारणों को उत्पन्न करने वाले, ॥२॥ देवाधि-देव (सूर्य देवता) के विग्रह<sup>१</sup> में जो वर्णस्थान<sup>२</sup> है अब उनको मुझसे सुनो-

१. रूप, आकृति अथवा शरीर, देखिए 'त्रयीविग्रहवत्येव सममध्यात्म-विद्या; मातृविकारिन्मित्रम्, १.१४.

२. तान्त्रिक परम्परा में सृष्टि का विकास अर्थप्रपञ्च और शब्द-प्रपञ्च इन दोनों के माध्यम से बताया गया है। शब्द-प्रपञ्च के दृष्टिकोण से परमेश्वर शब्द ब्राह्मण है यह सम्पूर्ण सृष्टि शब्द प्रभव से निकली है। इससे ५ शुद्ध सृष्टियाँ होती हैं—परा, (शिव तत्त्व-नादतत्त्व), गश्वती (शक्ति-तत्त्व बिन्दुतत्त्व), मध्यमा (सदाशिव), त्रैखरी और उससे वर्ण शब्द और वाक्य निकले। नाद और बिन्दु से त्रिबिन्दु अथवा काम-कला निकले। काम-कला से मातृकों का जन्म हुआ और उससे वर्ण, पद और वाक्य। वर्ण से मञ्च बनते हैं। मन्त्र शब्द मात्र नहीं है अपितु देवतत्व है प्रत्येक वर्ण का अर्थ होता है। शरीर में ६ चक्रों के लिये वर्णमाला के अक्षर (५०) निर्धारित किये गये हैं ह और अ (२) आज्ञा के लिए, १६ स्वर विशुद्ध के लिये, क से ठ तक (१२) अनावृत के लिए, ड से फ तक (१०) मणिपुर के लिये, ब से ल तक (६) स्वाधिष्ठान के लिए तथा व से स तक (४) मूलाधार के लिये। वर्णमाला के स्वरूप एवं महत्व के लिये देखिये सर जान बुडराफ, दै गारलैन्ड आफ लेटर्स पृ० २१४-२२७।

मिद्दि के प्रारम्भ में सूर्य के सकल एवं निष्ठल रूपों की हृदय में कल्पना करे ॥३॥ अ और अः कर्म-निर्वाण करने वाले बताये गए हैं। इ और इं विद्येश और योगीश बनकर उस सूर्य देवता की नाभि में विद्वत्तान हुई ॥४॥ उ और ऊ भावादि बीज बनकर उस प्रतिभाशाली सूर्य देवता की दोनों जंघाए बनी। क्रु और क्रु ऋत और सत्य के रूप में उसके दो चरण हुए ॥५॥ लूकार घमादिवर्ग से विपुल बना, ए और ऐ ये दोनों सूर्य देवता की माताएँ हैं ॥ अ और अः यह दोनों विशाल व्योम-मूर्तियाँ हैं ॥६॥ क और ख इसके रथ कहे गये हैं ग और घ उसके मण्डल कहे गये हैं छकार साक्षात् देवाधि-देव बुद्धिमान सूर्य के सारथी हैं ॥७॥ चकार मित्रगण हैं। छकार देवता और दानव हैं। जकार सम्पूर्ण जगत् है, जंकार बन्धन किया है ॥८॥

और अकार सूर्य की पातन-सम्भूति कही जाती है। टकार बन्धन तोड़नी है। ठकार विपत्ति छेदक होता है ॥९॥ डकार अनुग्रह स्थान है और ढकार क्रोध कहा जाता है। णकार बालखिल्य<sup>१</sup> और भूगु<sup>२</sup> आदि महातपस्वी गुण है ॥१०॥ तकार सिद्ध<sup>३</sup> और गत्धर्व<sup>४</sup> है। थकार पुण्य उत्पन्न करने वाला है।

१. वरणों के अर्थ के लिए देखिए सरजान बुडराफ, तात्रिक टेक्सट्रूस, भाग १, तत्त्वाभिधान.

२. ब्रह्मा के रोम से उत्पन्न अंगूठें के समान आकार वाली दिव्य मूर्तियाँ जो संख्या में ६० हजार बतायी जाती हैं सुलना कीजिये रघु०, १५.१०.

३. एक क्रषि, भूगु वंश का पूर्वपुरुष, इस वंश के विवरण के लिये देखिए बनु० १.३५.

४. अर्ध दिव्य प्राणी जो अत्यन्त पवित्र एवं पुण्यात्मा माना जाता है प्रधानतया देवयोगि विशेष जिसमें आठ सिद्धियाँ हो ।

५. अर्थ देवों का समूह जो देवताओं के गम्यक एवं संगीतज्ञ माने जाते हैं।

दकार इन्द्रियों का दमन<sup>१</sup> कहा जाता है। धकार ब्रह्मगोचर है ॥११॥ नकार सर्वत्र व्याप्त अनन्त है। पकार अक्षर संभव है। फकार अशुभ को नष्ट करता है। बकार शुभ का परिचायक है ॥१२॥ भकार भेदक है और मकार नदियों का स्वामी है। यकार अह और नक्षत्र हैं और र प्रदाहक बताया गया है ॥१३॥ लकार विषयों का आस्वादन करने वाला है और वकार भवोद्भव है। शकार दोषों का शोषण करता है और पकार बीज कहा जाता है ॥१४॥ सकार में छन्दों का जन्म हुआ है और हकार में शाश्वत ब्रह्म है। क्ष और त्र परम निर्वाण देने वाले, भय दूर करने वाले, इच्छा पूर्ण करने वाले और प्रभु स्वरूप हैं ॥१५॥ सम्यक रूप से प्रतिष्ठित वह जो शान्त एकाक्षर ज्ञान है उस क्षकार के द्वारा उस स्थावर और जगंम जगत का क्षय होता है ॥१६॥

उस क्षकार को अक्षय और अव्यय कहा गया है। इस प्रकार यह सूर्य के सञ्चातन कल्याणकारी बीज<sup>२</sup> अर्थात् वर्ण तुम्हें बताये गये ॥१७॥ योग-यूक्त क यथोचित कार्यों में प्रथुक्त किए जाने पर सम्यक रूप से पूजित होने पर यह समस्त कहे हुए वर्ण फल प्रदान करने वाले होते हैं ॥१८॥ बृहदबल बोलि—वर्ण जातियों के कर्म से उत्पन्न होने वाले जो फल बताये गये हैं उन्हें अस्थिर वृत्ति वाले मन से मैं बताने मैं असमर्थ हूँ ॥१९॥ साम्ब की दीक्षा

१. देखिए “कुत्सितात्कर्मणीविप्र यच्च चित्तनिवारणं स कीर्तितो दमः” आठ्टे, वही, पृ० २४५.

२. ओम अथवा प्रणव से अभिप्राय है आदिशक्ति जो रुद्रयामलतन्त्र और त्र्याम्लज्ञार के अनुसार ब्रह्मा, विष्णु और शिव का दीतक है किन्तु यह एक है—“एका मूर्तिसत्रयो देवा ब्रह्मा विष्णु महेश्वरः”। क्योंकि ये तीनों आद्या शक्ति से उपहित तुरीय ब्राह्मण के रूप हैं। अस्तु प्रणव से अभिप्राय मूल प्रकृति से युक्त ब्राह्मण से है जो एक है। देखिये महानिवर्णितन्त्र, स०। बुडशफ, पृ० ३२, पाद टिप्पणी ३.

३. एक देवता के सम्ब्र के गुण अक्षरों को बीज कहते हैं। देखिए बुडर क दो गारलौण्ड आफ लेटरस, पृ० २५७.

समर्पित हो जाने पर, सूर्य देवता ने कुमार साम्रज से जो उपदेश कहा समस्त कामनाओं को सिद्ध करने वाले उस महामंत्र को आप मुझे बताए ॥२०॥ ब्रशिष्ठ बोले—हे राजन ! अब उस महामंत्र को तुम सुनो जो कि जीव के संहार का कारक है, जो जन्म का प्रतीक है और जगत के पराभव का कारण है ॥२१॥ जिसमें पूर्व और पश्चिम तक व्याप्त सूर्य ही कणिका है । यम और सोम की दिशा में विष्णु है । ईशान और नैरित्य दिशा में ब्रह्मा है ॥२२॥ अग्नि और वायु की दिशा में रुद्र है । इसी को पञ्च कहा जाता है । और यह है साम्रज के कारण उद्धत वह महामंत्र ॥२३॥ ओम अं ओम हैं जूँ हूँ हूँ और ओम यह मंत्र अत्यन्त गोपनीय है और परम पद है तथा सर्वश्रेष्ठ ज्ञान है और यहीं परम गति है ॥२४॥

सर्व व्यापक अभय से संयुक्त सूर्य आयु देने वाला है । रुद्र से युक्त होने पर सूर्य रोग हरने वाला है और विष्णु से युक्त होने पर धन देने वाला है ॥२५॥ ब्रह्मा से युक्त होने पर समस्त अर्थों की सिद्धि करता है । आकाश मध्यलोक और पाताल इत्यादि सब पर प्रकाश देता है ॥२६॥ रुद्र से युक्त होने पर यह शशुओं में अय बढ़ाने वाला होता है । विष्णु से युक्त होने पर बृत्सना की वाणी की भी यह मन्त्र तत्काल स्तम्भित करने वाला होता है ॥२७॥ यह मन्त्र सूर्य का अमोघास्त्र है । जिसके (शरीर के) ६ वर्ण हैं ६ अंगों को मैं बता रहा हूँ यथाक्रम उसे समझिये ॥२८॥ ओम हुं और हूँ ओम यह दोनों हृदय के लिए है । ओम हुं अौं ओम यह शिर के लिए हैं हसी प्रकार ओम ! ओम, हूँ, अौं, कैं हूँ और हं ओम शिखा के परिचायक हैं । ओम ! ओ

१. शरीर में ६ चक्र बताये गये हैं जो शक्तिस्त्व के अंग हैं इनकी कल्पना पद्म के रूप में की गई है—मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, ब्रिंशुद्ध, आक्षा, इन सबके ऊपर (परम व्योम में) सहस्रारं पद्म है । विस्तार के लिए देखिये सर जान बुडराफ, दो सरपेण्ट पावर, पृ० ४१६.

और क्षू औम् यह दोनों कवचे<sup>१</sup> के प्रतीक हैं, अन्त में 'हुम'<sup>२</sup> होना चाहिए। हु औम् और क्षू यह दोनों नेत्र के प्रतीक हैं और औम् क्षू यह नेत्र, ब्रह्म रुद्र और विष्णु रुद्र का प्रतीक है और देवाधिदेव भासकर जगत्पति के हृदय का प्रतीक है ॥२६॥ इस प्रकार व्यक्तिस्थित वह स्वर्यभूत, व्यापक देवता सूर्य सदैव त्रैलोक्य के प्रधान देवता के रूप में सदा युज्यनीय है ॥३०॥ रुद्र, विष्णु तथा ब्रह्मा ये सूर्य के आदि और अन्त में रहने वाले देवता हैं ॥ इस दुःसह और दहन करने वाले मंत्र को ही सूर्य की शिखा कहा गया है ॥ ३१ ॥ व्यापक विष्णु सहित यह आदित्य मन्त्र व्यक्तिस्थित किया जाया है, देवताओं द्वारा निर्मित यह कवच समस्त विघ्नों को नष्ट करने वाला है ॥३२॥

इसके आदि और अन्त में सूर्य विद्यमान है त्यापक मध्य में ब्रह्मा है और यह अस्त्रसूटि का संहार करने वाले रुद्र से भी युक्त है ॥३३॥ यह अक्षर और अव्यय मन्त्र एक नेत्र के समान है युगान्तकालीन अग्नि के समान रंग वाला है तथा अनेक सूर्यों के तेज से पूर्ण है ॥ ३४ ॥ अस्तु यह छः प्रकार का सूर्य मन्त्र<sup>३</sup> बताया गया है प्रारम्भ में १२ प्रकार के सूर्य को बताया गया है ॥३५॥

१. रहस्य पूर्ण अक्षर जो कि रक्षा कवच की भाँति प्ररक्षक समझे जाते हैं विस्तार के लिए देखिए सरजान वुडराफ, शक्ति ऐण्ड शाक्त

२. मन्त्र-शास्त्र के अनुसार मन्त्र पुलिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग और नपुंसक लिङ्ग होते हैं, पुलिंग मन्त्र का अन्त हुम् अथवा फट से होता है, स्त्रीलिङ्ग मन्त्र का अन्त स्वाहा से होता है, नपुंसके लिङ्ग वाले मन्त्रों का अन्त नमः से होता है ।

३. इन मन्त्रों की व्याख्या के लिए देखिए तन्त्राभिधान, सम्पादित वुडराफ, तात्त्विक टेक्टूस, भाग १ इन मन्त्रों के माध्यम से ब्रह्मा, विष्णु, शिव को सूर्य का ही रूप माना गया है और सूर्य को परमब्रह्म का पद दिया गया है ।

पहले एक-एक मनके का आवर्तन करके इस सूर्य मंत्र का समाहित चित्त से एक लाख जप करे ॥३६॥ और तीन मीठी चीजों से मिश्रित तिल का अग्नि में हवन करे और इस सूर्य-मन्त्र का पाठ करके सायं हविष्य दे ॥३७॥ होम के अत में होम भाग बनाया जाता है । तत्पश्चात् साधक पुरुष देवदर्शन करके कृतार्थता को प्राप्त होता है ॥३८॥ त्रिकालवेत्ता, तत्वज्ञ और गृणन्त्रय से विविजित-ऐसा व्यक्ति इस यज्ञ से अग्नि और वायु से विहीन परम स्थान<sup>१</sup> को प्राप्त करता है ॥३९॥ मंत्र पाठ करने वाला वही व्यक्ति देवता के समान भलोक में मानवों द्वारा पूजा प्राप्त करता है । और वही लोकों का रक्षक होता है व्याधि और दुख का विनाश करने वाला भी होता है ॥४०॥

यह प्राचीन शास्त्र जो कि पहले भी कहा जा चुका था और अप्रमेय था द्वापर युग में देवर्षि नारद द्वारा पुनः साम्ब के लिए कहा गया ॥४१॥ उसी समय से संसार में सूर्य-छवजा का प्रचलन हुआ जो कि समस्त पापों को नष्ट करने वाला है, पवित्र और समस्त कामनाओं को सिद्ध करने वाला है ॥४२॥ इस प्रकार साम्ब पुराण में चालीसवाँ अध्याय<sup>२</sup> समाप्त होता है ।

•

१. परम स्थान का तन्त्रों में सुन्दर विश्लेषण किया गया है देखिए षट्क्रन्तिरूपण, पद्म ४४-४८.

२. यह अध्याय तात्त्विक परम्परा से पूर्णतया प्रमाणित है और भविष्य पुराण में ग्रहण नहीं किया गया है अस्तु इसकी तिथि १२५०-१५०० ई० के बीच निश्चित की गई है देखिये हाजरा, वहीं ।

## अध्याय ४९

वशिष्ठ वोले—इसके पश्चात् पूर्व आदि के दिक्पालों<sup>१</sup> की पूजा करनी चाहिए (और ऋमशः इस प्रकार ओम<sup>२</sup> प्रारम्भ में, तडुपराम्ब नाम और तत्त्व

१. यहाँ पर चार दिशाओं-पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर के देवताओं को तान्त्रिक मन्त्रों द्वारा वलि प्रदान करने का विवान किया गया है। दिक्पालों की पूजा वैदिक उत्पत्ति की है तैत्तिरीय संहिता, ५.५-१०, विभिन्न गृह्य सूत्र, १४.४.७.३७-४१, सामविधान ब्राह्मण, ३.३.५. परन्तु पौराणिक पूजा में इसका विस्तार हुआ। बौद्ध एवं जैन परम्परा में भी दिक्पालों की पूजा का विवान था। परन्तु विभिन्न लोतों में इनकी सँख्या (४, ६, ८, १० आदि) एवं नाम आदि भिन्न-भिन्न बताये गये हैं नाम ही एवं सँख्या के लिए देखिए बनर्जी, जे०, एन०, डेब्लेपमेन्ट आफ हिन्दू आइकानोग्राफी, पृ० ४१६-४२६.) यह दृष्टव्य है कि यहाँ पर केवल चार दिशाओं के दिक्पालों का वर्णन किया गया है यद्यपि ब्रत्येक दिशा के दिक्पालों के अनेक नाम दिये गये हैं जो उनके विभिन्न रूपों का प्रतिनिधित्व करते हैं। महभारत, (गीता) द. ४५.३१-३२. में अग्नि, यम, वरुण और सोम पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर के दिक्पाल नेता बताये गये हैं इसी परम्परा का यहाँ पालन किया गया था। महानिवणितन्त्र (वुडरफ, पृ० १८४) में द, अथवा १० दिक्पालों का वर्णन किया गया है।

२. तान्त्रिक मन्त्रों में ओम का अर्थ है आद्या शक्ति और उसकी तीन क्रियात्मक शक्तियाँ रुद्र, ब्रह्म और विष्णु जो पाँच तत्त्वों के माध्यम से प्रकट होती हैं। देखिए वुडरफ, दी गारलैण्ड ब्राफ लेटरस, पृ० २२५-३३.

ठः ठः<sup>१</sup> के साथ हविष्य प्रदान करना चाहिए) विकट, वामन, लम्बोदर, हेमगर्भ, भीमवेग, सौम्यरूप, पंचात्मक, विदेह, धर्म-विग्रह, अहिरबुद्ध्य, काल, उपकाल इन सबको हविष्य दान देकर इस प्रकार पूर्व दिशा में इनकी पूजा करके पाँच रूप वाले स्तंष्ठादिक से प्रत्येक देवता को बलि प्रदान करे। दक्षिण दिशा में ओम प्रारम्भ में बाद में ठः ठः के साथ अधीर, बटुक, ऊर्ज्वरोम, मृत्युहस्त, ऐवनाद, कौस्तुभ, धूमकाल, उप्रजिह्वा, मांस-मूर्ति बलकलि, दण्डी और कर्म-साक्षी इन सबको हविष्य दे। इन सबको मछली, मांस और वूलिका आदि से बर्ण देनी चाहिये। तदन्तर पश्चिम दिशा में सूर्य-मूर्ति, गुहाशय, ठंक-पान, महाबल, वायुमक्ष, पंचमूर्ति, अग्निपाश, पशुपति, महाआश, कृष्णदेह, आमोघ और अच्युत इन्हें ओम प्रारम्भ में और बाद में ठः ठः के साथ बलि प्रदान करे। इन सबको दूध, धी से पूर्ण पात्र द्वारा बलि प्रदान करना चाहिए। उत्तर दिशा में शिखिलिङ्ग, योगेश्वर, विशाखा, शतकलु, पंचशिख, सहस्र-किरण, सुवर्ण केतु, पञ्चकेतु, पञ्चरूप, भुवनादिपति, पश्चनाभ इन सबको प्रारम्भ में ओम और बाद में ठः ठः के साथ हविष्य दे। इन्हें सोने, चाँदी और वस्त्र द्वारा बलि प्रदान करनी चाहिए। हे राजन ! इस प्रकार शास्त्रों में कही गई पूजा को जो व्यक्ति करता है उस मनुष्य की प्रारम्भ की हुई समस्त क्रियायें स्वर्ग और पृथ्वी लोक में सफल होती हैं। सूर्य के पूजा निवेदन में और कोई शास्त्र उपदिष्ट नहीं है। हे राजन ! समस्त वेदों से संकलित पुराणों में कही गई इस पूजा को अन्य तंत्रों को जानने वाले जो कोई लोग मूर्खता-पूर्वक करते हैं उनकी भक्ति और श्रद्धा का फल इस मन्त्र से नहीं मिलता। इस निरन्तर पाद-नाश करने वाले शास्त्र का अध्ययन करना चाहिये। यह पुराण आयु, आरोग्य, विजय, यश और कौति प्रदान करने वाला है। इन समस्त दिक्पालों की पूजा सम्पन्न करके पुनः आगे कहे जाने वाले मध्यों द्वारा धी अथवा खीर सहित पाँच-पाँच आहुतियाँ एक-एक को देना पूर्वदिशा में शिति के लिए विकट को, अश्विति के लिए चामन को,

१. "ठ" विपत्तिनाशक वर्ण है।

अप्रवहित के लिए लम्बोदर को, संहृत के लिए हेमगर्भ को, सर्वग के लिए विदेह को, स्थिर के लिए भीमवेग को, शान्ति के लिए सौम्यरथ को, सर्वहर के लिए पंचात्मक को अजरूप के लिए धर्मविग्रह को, विरध्र के लिये अहिवृद्य को, मनु के लिए काल को, किञ्चर के लिए उपराल को, प्रारम्भ में ओम और बाद में ठः ठः के उच्चारण के साथ हविष्य देनो चाहिए। दक्षिण दिशा में संस्तुत के लिए अधोर को; अनन्त के लिए वडवामुख को, ऋुद्र के लिए ऊर्ध्व-रोमा को, सम के लिए मूल्युहस्त को, अनन्तजिह्वा के लिए ऐश्वनाद को, स्फूरित के लिए कौस्तुभ को, कूर के लिए वर्षकाल को, समोनवाङ् के लिए उग्रजिह्वा को, करभ के लिये मासमूर्ति को, अग्नि के लिए बल्कली को, रक्तवर्ग के लिये दिणी की सुरक्ष के लिए कर्मसाक्षी को, प्रारम्भ में ओम और बाद में ठः ठः उच्चारण के साथ हविष्य देना चाहिए। पश्चिम दिशा में सरसवती के लिए वायुभक्ष को, कारु के लिये पंचमूर्ति को, कीड़ता के लिए अग्निपाश को, विक्रीड़िता के लिए पशुपति को, हृत के लिये महापाश को, विहृत के लिए कुषग्रदेह को, ध्रुव के लिए अमोघ को, विशिखा के लिए अचयुत को, प्रारम्भ में ओम और बाद में ठः ठः उच्चारण के साथ हविष्य देनी चाहिए। उत्तर में सवित्र के लिये शिखिलिङ्ग को, मध्यगत के लिए पंचशिख को, कनिष्ठ के लिए सहस्र किरण को; सत्रैराग्य के लिये पद्मकेनु को, कातर के लिए यज्ञरूप को, युग के लिए भूवताधिप को, अनन्तशक्ति के लिये पश्चनाभ को प्रारम्भ में ओम और बाद में ठः ठः उच्चारण के साथ हविष्य देनी चाहिए। हे राजन ! वेदों से उद्घृत इस पुरातन ग्रन्थ की अव्यग्र मन से तीनों वेलाओं में प्रजन करता हुआ व्यक्ति समस्त इच्छाओं को प्राप्त करता है ॥१८॥ यही सर्वश्रेष्ठ ज्ञान है, यही निष्कल<sup>१</sup> कर्मयोग है। इसे मैंने तुम्हें उसी प्रकार दिया जैसे साम्ब को भगवान् सूर्य ने दिया था ॥ २ ॥ सर्वप्रथम दिशाओं और दिक्पालों को बलि प्रदान करे, उनका हीम करके तब सूर्य का आवाहन करे

१. शूद्रों के निष्कल रूप के लिए देखिये श्रीवास्तव, सन-बरशिप इन ऐसियन्ट इण्डिया, पृ० २३९.

॥३॥ देवताओं से आवृत शब्द-मूर्ति<sup>१</sup> वाले हे सूर्य देवता ! आओ आओ मेरे इस यज्ञ को भलीभांति देखो, तुम्हीं देवताओं और राक्षसों के पूजनीय हो, धर्मादि वर्ग के समूहकों के तुम्हीं पूज्य हो ॥४॥ इसके पश्चात् पुनः ज्ञान मंत्र से अवित करके दिधिपूर्वक पुष्पों से समर्चन करके पुनः यह कहना चाहिये— हे देव ! अपनी इच्छानुसार आप जाए और पुनः आवाहन करने पर आए ॥५॥ यही सर्वश्रेष्ठ सत्य है, यही सर्वश्रेष्ठ तप है, यही सर्वश्रेष्ठ देवता है जो कि सुरों और असुरों द्वारा नमस्कृत है ॥६॥ पुराणों में कहे गये इस शास्त्र का जो दत्तचित्त होकर पाठ करता है वह सहस्र किरणों वाले सूर्य देवता में विलौन<sup>२</sup> हो जाता है इसमें कोई शंका नहीं है । यह शास्त्र तीर्थों में धेष्ठ तीर्थ है, मंगलों का भी मंगल है, पवित्रों का भी पवित्र है और सर्वश्रेष्ठ गति है ॥७॥

इस प्रकार साम्ब-पुराण में दीक्षाविधान नामक एकतालिसवाँ<sup>३</sup> अध्याय समाप्त होता है ।

१. तान्त्रिक परम्परा के अनुसार देवता का अभिव्यक्तिकरण वर्णों एवं शब्दों के द्वारा होता है, मन्त्र और देवता एक ही है इसी कारण सूर्य को शब्द मूर्ति वाला कहा गया है देखिये बुडराफ, दी गारलैंड आफ लैटरस, पृ० २१४-२२७.

२. हाजरा, स्टडीज, भाग १, पृ० ५७ के अनुसार अध्याय ३६-४१ तक को एक विशिष्ट इकाई माना जा सकता है जिसे साम्ब-पुराण में १२५०-१५०० ई० के मध्य कभी प्रक्षिप्त किया गया था ।

३. प्रारम्भिक पुराणों में सूर्य-व्रतों एवं पूजा का फल सूर्य-लोक की प्राप्ति बताया गया है देखिए मत्स्य-पु., ७८.७-८. परत्तु यहाँ पर सूर्य में आत्मलीनता का आदर्श रखा गया है । सम्भवतः वेदान्त के प्रभाव के कारण आत्मा-परमात्मा की लीनता का उद्देश्य यहाँ बताया गया है ।

## अध्याय ४२

**विशिष्ठ लोगे—**इस प्रकार देव-मन्दिर बनवाकर और याजकों<sup>१</sup> को ले आकर साम्ब वहाँ आए जहाँ नर धमतिमा सूर्य सज्जिहित थे ॥१॥ इन लोगों को मित्रवन<sup>२</sup> में आया सुनकर देवता, मनुष्य, सर्प, क्रष्ण, सिद्ध, विद्याधर, गन्धर्व, नारा, गुह्यक ॥२॥ दिग्घाल, लोकपाल, गृहस्थ, पश्च, धार्मिक और प्रजापति सब लोग वहाँ जाने के लिये तत्पर हो गये ॥३॥ कुछ लोग उपवास किये हुये थे । कुछ लोग आत्म-निग्रह में लगे थे और कुछ लोग त्रिवृताद्व

१. स्टेटकान, इन्हिङ्क सोनेल प्रोस्टेर साम्ब अण्ड देई शाक-दीपीथ ब्राह्मण, सारांश, पृ० २७६ के अनुसार मग को ही याजक अथवा पूजक कहते थे जो भोजकों से भिन्न थे किन्तु यह द्रष्टव्य है कि साम्ब-पुराण, २७ में मग और याजक को भिन्न-भिन्न बताया गया है । इस आन्तरिक प्रमाणानुसार मग 'म' वर्ण का व्यान करते हैं जब कि याजक धूप, माला, जप, उपहार ओंडि से यज्ञ करते हैं । हाजरा, स्टहोज, पृ० ६७ के अनुसार भोजक ही कालान्तर में पतित होकर याजक कहलाये । द्रष्टव्य है कि यह अध्याय उत्तरकालीन है और भोजक परम्परा से सम्बन्धित है अस्तु स्टेटकान की अपेक्षा हाजरा का विचार अधिक समीचीन लगता है ।

२. इस मित्रवन का तादात्म्य कोणार्क से किया गया है जब कि पूर्व-कालीन अध्यायों में मित्रवन को पंजाब में स्थित बताया गया है विस्तार के लिए देखिए हजारा, दी साम्ब-पुराण, ए सौर वर्क आफ डिफरेन्ट हैन्ड्स, अनाल्स आफ भण्डारकर औरियन्टल रिसर्च हैन्डीच्यूट; भाग ३६ पृ० ७७-७८ ।

में रत थे तथा कुछ लोग मंत्र-जाप से समन्वित थे ॥४॥ कुछ लोग लकड़ी का धनुष लिए हुये थे । कुछ लोग सवार्थगामी थे । अन्य लोग नियमित आहार वाले थे और अन्य लोग निराहार थे ॥५॥ देहगत चिन्ता को छोड़कर रवि के ध्यान में तल्लीन होकर महीने और पञ्चवारे के उपवास से युक्त ॥६॥ थोड़े ही समय में लवण-सागर के सभीप आकर उस लवणोदधि में स्थित रमणीय तपोवन को देखा ॥ ७ ॥ जो नाना पुष्पों और फलों से युक्त था, देवताओं और गन्धर्वों से सेवित था और सदैव जिसमें ऋषिगण पर्युपासना कर रहे थे ॥८॥

वह तपोवन अपने लादृश्य के कारण पृथ्वीलोक में विद्यमान एक दूसरे सूर्यलोक के समान प्रतीत हो रहा था । उस रमणीय तपोवन को देखकर वे सब हर्ष-विभोर हो उठे ॥९॥ वह तपोवन समस्त जीवों का उपकार करने वाला, समस्त कायों में रमणीय, समस्त प्राणियों के लिए सुखमय आवास वाला विश्वकर्मा द्वारा नियमित किया गया था ॥१०॥ वशिष्ठ बोले—बुद्धिमान नारद

१. मार्कण्डेय-पुराण, १०६.५६-६१ एवं ७५-७८ में भी राज्यवर्धन तथा उनकी प्रजा द्वारा सूर्य-पूजन में इसी प्रकार के विभिन्न व्रत वाले तपस्त्रियों का उल्लेख किया गया है । देखिए अग्रवाल, वासुदेव शरण, मार्कण्डेय-पुराण, एक सांस्कृतिक अध्ययन ।

२. उपवास स्वयं एक व्रत है एक पक्ष अथवा एक मास का उपवास अनेक व्रतों में किया जाता है जैसे एकादशी-व्रत देखिये विष्णुधर्मोत्तर १.५९.३-५, हेमाद्रि, ब्रतुर्बर्गचिन्तामणि, व्रत, २, ७७६-७८३. एक मास से अधिक उपवास विजित हैं । व्रतों का श्रेणी विभाजन अनेक आधारों पर किया गया जैसे एक विभाजन है मानस, कायिक, और वाचिक । उपवास कायिक व्रत के अन्तर्गत आता है । काल के आधार पर यहाँ पांक्षिक एवं मासिक उपवास का उल्लेख किया गया है, काणे, हिस्ट्री आफ धर्मशासन, (हि०) भाग ४, पृ० २२ तथा पृ० २६१. कृत्यरत्नाकर, ४७५-४७६.

## साम्ब-पुराण

३५०

भी उस शास्त्र को सदैव पढ़ते हैं और कहते हैं—हे यादव ! हे महाभाग ! साम्ब तुम बड़े अच्छे हो । भक्तिमान हो ॥११॥ जो कि तुमने इस प्रकार की सनातनी सूर्य-मूर्ति यहाँ बनवाई और उसी के प्रसाद से सूर्यमय तपोवन<sup>१</sup> को हम लोग देख रहे हैं ॥ १२ ॥ नारद के उस निर्मल वाक्य को सुनकर परम धर्मवान साम्ब ने भूमि पर सिर टेक कर सूर्य देवता की प्रार्थना की ॥१३॥ हे देव ! मेरे ही ऊपर कृपाभाव से जो पूजा के कारण अनुग्रह करने वाले आपने पूर्व में सानिध्य वाले इस उत्तम स्थान का निर्देश किया ॥१४॥ कृपा करके हे सौम्य विभावसु ! कुछ बताइये । साम्ब का शरीर, इन्द्रिय और प्राण अत्यन्त क्षीण थे वाणी भी मन्द थी ॥१५॥ इस प्रकार साम्ब को भक्ति से अन्वित देखकर सूर्य देवता ने वचन कहा—हे यदुनन्दन ! मेरे इस स्थान मे कीर्ति-विषयक चिन्ता को छोड़ दो ॥१६॥

हे यादव ! मेरी वाणी द्वारा पहले दिए गये उपदेश को तुम सुनो । इस लबण्य-सागर के तट पर प्राचीन काल में तपस्विजनों<sup>२</sup> ने ॥१७॥ कलेशपूर्वक मेरी कृपा चाहते हुये अनेक वर्षों तक तप किया । उन तपस्वियों को देखकर मेरे हृदय में कृपा का उदय हुआ ॥१८॥ मैंने कहा—हे वत्सो ! तुम लोग अपने मन की बातें कहो । सत्य, धर्म और अर्थ से युक्त श्रेष्ठ पदार्थों की प्रार्थना करो

१. इष्टव्य है कि मिश्रवन को वरावर यहाँ तीपीवन कहा गया है, और उन्हें पूर्व में सूर्य का सानिध्य प्राप्त कराने वाला कहा गया है, समुद्र के तट पर कहा गया है ये यथ्य इस स्थान की स्थिति कोणाकर्म में निश्चित कर देते हैं देखिए हाजरा, अनाह्लस आफ झंडारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीच्यूट, ३६, पृ० ७८.

२. पूर्वकालीन अध्यायों में सूर्य के मन्दिर बनवाने और मिश्रवन को प्रसिद्ध करने का श्रेय साम्ब को दिया गया है किन्तु उत्तरकालीन अध्यायों में यह बताया गया है कि साम्ब से भी पूर्व तपस्वियों ने वहाँ पर तपस्या की देखिए हाजरा, वही, पृ० ७२.

। १९॥ सूर्य देवता के मुह से निकले हुए उस निर्मल वाक्य को सुनकर, हृषित होकर आह्लादित मन वाले मनुष्यों ने कहा ॥२०॥ हे भगवान् ! यदि प्रसन्न होकर आप वर देने के लिए समुच्चित हैं तो आप सूर्य देवता में हमारी निर्विघ्न भवित करे ॥ २१ ॥ “ऐसा ही हो”—इस प्रकार कहकर वह भगवान् सूर्य भी बोले—हे मनुष्यों ! अब दूसरे भी वर की याचना करो ॥२२॥ हे साम्ब ! पुनः सन्तुष्ट होकर उन समस्त धर्म-परायण, प्रसन्न और उत्कुल्ल लोचन वाले व्यक्तियों ने परमश्रेष्ठ से कहा ॥ २३ ॥ मुनि ने कहा—पुनः सन्तुष्ट होकर महातेजस्वी आप वर देने के लिए समुच्चित हैं तो हे देवेश ! आपकी कृपा से इसके मृष्टा हम लोग हों ॥२४॥

वशिष्ठ बोले—तब प्रसन्न होकर महातेजस्वी (सूर्य) ने फिर यह बात कही—“ऐसा ही हो” । आप लोग प्रजाओं की सृष्टि करने वाले हों ॥२५॥ इस बन की कीर्ति का एक और कारण कहँगा और उसे सुनो, जिसके कारण कि यह रम्य लपोवन सर्वश्रेष्ठ माना गया है ॥२६॥ निर्मल वाक्य सुनकर उन ऋषियों ने दिवाकर से कहा—हे देव ! आपकी कृपा से हमारे लिये प्रीतिकारक कार्य हों । हे सुरु-प्रभु ! इस स्थान को प्राप्त करके हम लोग भवसागर से पार हो गये ॥२८॥ संतों के कल्याणार्थ और अपने ही अनुग्रह के जिये, हे भास्कर ! आपकी कृपा से यहीं आपकी कीर्ति करेंगे ॥२९॥ सूर्य देवता बोले—सातों द्वीपों<sup>१</sup> में दुर्लभ मेरे स्थान को देकर एक मन्त्रन्तर तक कीर्ति मान बने रहेंगे ॥३०॥ मन्त्र-सिद्धि जो अन्यान्य मुनि और श्रेष्ठ देवता मेरे

१. भक्ति का चरमादर्श है इष्ट देवता में एकात्मिका भक्ति देखिये नारदभक्तिसूत्रास,

२. पुराणों में सात द्वीपों वाली पृथ्वी का उल्लेख है विभिन्न नामों के लिये देखिये अली, एस०, एम० दी जियागरफी आफ दी पुराणज, पृ० २८-२९.

स्थान में लगे हुए हैं इसलिए मैंने अधिक नहीं कहा ॥३१॥ नारद बोले—“एक के पश्चात् १६ शून्य रखने पर उस प्रमाण से ब्रह्मा का एक गणक कहा जाता है ॥३२॥

एक लाख गणों का एक मनु<sup>१</sup> होता है पहले यम थे फिर स्वारोचिप मनु ॥३३॥ तृतीय मन्त्रन्तर में सूर्य देवता, चौथे में मनु, पाँचवे में सत्य, छठे में क्रतु ॥३४॥ सातवें<sup>२</sup> में सनत्कुमार और वर्तमान मन्त्रन्तर में वैवस्वत ॥३५॥ इसके पश्चात् शम्भु, उनके बाद महानस और महानस के बाद विष्णु होंगे। तदन्तर यह कल्प समाप्त हो जाएगा ॥३६॥ इस प्रकार साम्बपुराण में यात्रानियम नामक व्यालिसवाँ अध्याय<sup>३</sup> समाप्त होता है ।

१. यह द्रष्टव्य है कि सामान्यतः सातवें मन्त्रन्तीर में वैवस्वत को मनु बताया गया है किन्तु यहाँ आठवें को वैवस्वत मनु बताया गया है। मन्त्रन्तर की अवधि एवं १४ मनुओं की सूची के लिये देखिये आठे—संस्कृतहिन्दी कोश, पृ० ७७३, तथा दी वेदिक एज, पृ० २७१.

२. ३३ और ३४ पद्म दोष पूर्ण छन्दयोजना के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

३. इस अध्याय की तिथि १२५०-१५०० ई० के मध्य रखी गई है देखिये हाजरा, वही।

## अध्याय ४३

बशिष्ठ बोले—लवणोदधि के तट पर उस तपोवन क्षेत्र में (सूर्य) देवता के दर्शन की आकांक्षा से जो रहते हैं अथवा जो आते हैं ॥१॥ उनमें से कुछ लोग<sup>१</sup> पवित्रात्मा होकर ध्यान धारण करते हैं कुछ लोग सूर्य में संलग्न मन वाले होते हैं और कुछ सम्पन्न लोग यज्ञ करते हैं और कुछ लोग आत्म-तत्पर होकर चिन्तन करते हैं ॥२॥ सिद्ध और गन्धर्व गाते हैं, श्रेष्ठ अप्सराएँ नाचती हैं, कुछ लोग हाथ में बीणा लिए रहते हैं तथा अन्य लोग अर्धपात्र कुछ लोग अन्जलि बांधे रहते हैं और कुछ लोग सिर झुकाये रहते हैं। योगी, योगचित्त, मुनिगण और नियमित मन वाले ॥४॥ कृषिगण शान्तियुक्त होकर सूर्य देवता का स्तवन करते हैं। यातुधान<sup>२</sup>, यक्ष<sup>३</sup>, सिद्ध<sup>४</sup> और

१. सूर्य-भक्तों के विभिन्न प्रकारों का यहाँ उल्लेख किया गया, ध्यान, चिन्तन, यज्ञ, गीत आदि के माध्यम से भक्ति का प्रदर्शन किया गया है भक्ति के विभिन्न साधनों के विवरण के लिये देखिये नारदभवितसूक्तास, रामायण २.६५.७, ६.१०५.२९ तथा भारत-भारत, ३.३.३५-३६. में सूर्योपासना के विभिन्न साधनों का वर्णन है।

२. भूत-प्रेत, पिशाच, भट्टि०, २.२१, रघु०, १२.४५.

३. एक देवयोनि विशेष जो घन-सम्पत्ति के देवता कुबेर के सेवक है तथा उनके कोष और उद्यानों की रक्षा करते हैं, मेघ०, १.६६.

४. अत्यन्त पवित्र और पुण्यात्मा अर्द्ध दिव्य प्राणी, देवयोनि विशे जिसमें आठ सिद्धियाँ हों कु०, १.५.

बड़े बड़े नाग ॥ ५ ॥ दिग्पाल<sup>३</sup>, लोकपाल<sup>४</sup>, विष्णु-दिनायक<sup>५</sup> सब लोग  
भक्ति में लोन होकर उस सूर्यकानन<sup>६</sup> में निवास करते हैं ॥६॥ वे शरीर,  
इन्द्रिय और प्राण से क्षीण होते हैं, सूर्य देवता की आराघना में तत्पर होते  
हैं, जागरण के कष्ट से युक्त होते हैं, राह चलने से थके रहते हैं और पीड़ित  
होते हैं ॥७॥ सूर्य देवता के उदय की आकांक्षा करने वाले सभी लोग उनका  
स्तवन करते हुये प्रभात बेला में पश्चराग के समान लाल प्रकाश वाले सूर्य की  
ओर ध्यानस्थ हो जाते हैं ॥८॥

१. पुराणों में वर्णित मानव मुखवाला अर्थं दिव्य सौपि—“देव गन्धर्व  
मानुषोरगराक्षसान्” नल०, १.२८, मनु०, ३.१६६.

२. दिशाओं के स्वामी, चार, आठ अथवा दस, संख्या एवं नाम के  
लिए देखिए बनजी, जे० एन०, डेवलपमेन्ट आफ हिन्दू आइकलोप्राफी,  
पृ० ५१६-५२६.

३. लोकों के स्वामी, मनु०, ५.६६ के अनुसार द लोकपाल हैं सोम,  
अग्नि, अर्क, अग्निल, इन्द्र, वित्तपति, आपपति, और यम ।

४. प्रारम्भ में विष्णु डालने वाले देवता के एक समूह को विज्ञायक  
कहते थे । कालान्तर में इसे गणेश का पर्यायवाची माना जाने लगा देखिये  
सम्पूर्णनिन्द, गणेश, पृ० ५-७. तुलना कीजिये याज्ञवल्क्यस्मृति, १.२७१;  
महाभारत, बनुशासन, १५१.२६, मानवगृह्यसूक्त, २.१४, भंडारकर,  
बार०, जी०, बैष्णविस्म, शैविङ्गम एन्ड माइनर ऐलीजेस सिस्टम्स,  
पृ० १४७-१४८.

५. सूर्यकानन से अभिप्राय कोणार्क से है जिसे मित्रवन, सूर्यक्षेत्र, रवि-  
क्षेत्र आदि कहा गया है । देखिये श्रीधास्तव, सन् ब्रह्मशिप इन ऐन्द्रियस्ट  
इंडिया, पृ० २६६.

सूर्य के उदय की आकाशा वाले खड़े सभी द्वारा स्तुत्यमान सूर्य के किरण धौतन से समस्त दिशाएँ और पृथ्वी बिमल हो गई ॥६॥ समुद्र, आकाश और पृथ्वी लाल हो उठी, तत्काल ही समस्त ज्योतियाँ एक ज्वाला के रूप में बदल गई ॥७॥ उस उदय वेला में एक सूर्य दो स्थानीय हो गये और दिवाकर अद्भुत रूप वाले दिखाई पड़ने लगे ॥ ८ ॥ उनका दो प्रकार का, मण्डल दृष्टिगोचर हुआ एक अन्तरिक्ष में विद्यमान और दूसरा समुद्र में, भगवान् सूर्य की दूसरी मूर्ति जल के बीच में विराजमान है ॥९॥ उस अद्भुत दर्शन को देखकर सभी लोग विस्मित हो गए, कुछ मनुष्य बाहु के बल से तैरते हुये महोदधि में पहुंचकर ॥१०॥ जल में पड़ी हुई उस मूर्ति को हाथों से पकड़कर और तपोवन में लाकर प्रसन्न मन वाले मनुष्यों ने विधान-पूर्वक मूर्ति की स्थापना<sup>१</sup> की ॥११॥ उन लोगों ने सुसम्मित, सांगोपांग और विचित्र स्तुतियों से सूर्य की स्तुति<sup>२</sup> की । हे देव ! आप प्रलय हैं, काल हैं अथ हैं, सहिष्णु हैं, और रात्रि की अग्नि हैं ॥१२॥ आप सृष्टि एवं पालन की पूर्णता (अर्थात् संहार) हैं, प्रजा आपके ही अंगों से उत्पन्न हुई हैं । आप ही शोषण हैं, वर्षा हैं, शीत है, घाम है, आह्लादित करने वाले सुख शीतल हैं ॥१३॥

हे देव ! आप ऋषिकर्ता हैं, प्रकृति, पुरुष और प्रभु हैं, छाया और सज्ञा की प्रतिष्ठा के हीते हुये भी निरालम्ब और निराश्रय हैं ॥१४॥ आप समस्त जीवों के आश्रय हैं । आपको सदैव मेरा प्रणाम है, हे देव ! आप सर्वतः

१. यह द्रष्टव्य है कि पूर्वकालीन अध्यायों में सूर्य-मूर्ति की स्थापना का श्रेय साम्बद्ध को दिया गया है जब कि इस उत्तरकालीन अध्याय के अनुसार लोगों ने सूर्य-मूर्ति की स्थापना की देखिये हाजरा, स्टडीज, भाग १.

२. स्तुति में सूर्य के देवत्व की अवधारणा साम्प्रदायिक रूप में आदि शक्ति एवं परमेश्वर के रूप में की गई है तुलना कीजिये—आदित्यहृदयस्तोत्र रामायण, ६-३०५, देखिए श्रीवास्तव, वही, पृ० १८०, २३६-४०.

बलु हैं, सभी की गति हैं ॥१८॥ सर्वदाता हैं, सदा रहने वाले हैं, सर्वत्व हैं, और दुःख का नाश करने वाले हैं । हे देव ! आप व्याजियों के ध्यान हैं और योगियों के उत्तम योग हैं ॥ १९ ॥ आप अपनी कान्ति से फल देने वाले हैं, तत्काल पाप हरण करने वाले विभू हैं, समस्त अर्तियों का नाश करने वाले अनश्वर और करुणा के देवता हैं ॥२०॥ दया, शक्ति और क्षमा के निवास हैं, कृपायुक्त हैं और साक्षात् कृपा हैं । हे देव ! आप सूब्दि, मंहार और स्थिति रूप देवाधि-देव हैं ॥२१॥ ब्रह्म शोष,(सूखापन) ब्रह्म (अठरामण), बाह, तुषार दहन की आत्मा वाले, आत्म समर्पण किये हुये दुखी के रक्षक हैं, योगी, और योगमूर्ति हैं ऐसे आपको नमस्कार है ॥२२॥ हे देव ! आप हृदया नम्द हैं, शिरोरत्न की प्रभाषणि हैं, बोधक हैं पाठक हैं, अव्ययन करने वाले हैं, ग्राहक हैं ग्रहणात्मक है ॥२३॥ हे देव ! आप नियम हैं, न्यायी हैं, न्याय करने वाले और न्याय बढ़ाने वाले हैं, अनित्य हैं, नियत हैं, नित्य है और न्यायमूर्ति हैं, आपको नमस्कार है ॥२४॥

हे देव ! आप शरणागतों की रक्षा करते हैं; दुःख सागर में पड़े लोगों की रक्षा करते हैं । विदलित लोगों को ऊपर उठाते हैं ऐसे आप लोकचक्षु<sup>१</sup> को नमस्कार है ॥२५॥ आप दमन हैं, दुरान्त हैं, साध्यों के भी साधक हैं, बन्धुहीनों के बन्धु हैं ऐसे बन्धु-स्वरूप आपको नमस्कार है ॥ २६ ॥ हे दया-निधान! शान्ति करे । हे जगत्पति ! प्रसन्न हो, जी हमारा अभीष्ट था उन कल्याणकारी वाक्यों को हमने कहा ॥२७॥ इस प्रकार सुनकर तत्पश्चात् सब लोगों ने सूर्य-प्रतिमा के विषय में पूछा—यह मूर्ति किसके द्वारा बनाई गई, किसके द्वारा आपको मिली और हे देव ! किसलिये आप यहाँ आये—हमारा संशय दूर करें ॥ २८ ॥ देवता बोले—प्राचीन काल में समस्त संसार के कल्याणार्थ देवताओं द्वारा पूजित यह मूर्ति विश्वकर्मा ने समादेश द्वारा बनाई ॥२९॥ हिमालय पर्वत के ऊपर कल्पवृक्ष से निर्मित की गई और वहाँ से

१. सूर्य एवं चक्र के तादात्म्य के लिये देखिये श्रीवास्तव, बही, पृ० ५३.

चन्द्रभागा नदी में प्रविष्ट कराई गई ॥३०॥ चन्द्रभागा से व्यास में व्यास से सतलज में और सतलज से यह यमुना नदी में आ पड़ी ॥ ३१ ॥ और यमुना से यह धीरे-धीरे गङ्गा में ले आई गई और गङ्गा से मोदगङ्गा<sup>१</sup> नामक महानद में लाई गई ॥३२॥

मेरे ही अनुग्रह वश वह स्थान तीर्थों में शेष बलाया गया । उस मोदगङ्गा<sup>२</sup> से यह लवणसागर में प्रविष्ट हुई ॥३३॥ और इस समय प्रेरा स्थापन कार्य प्रवर्तित करो, तब उस निर्मल और प्रीतिवर्धक वाक्य को सुनकर ॥ ३४ ॥ देवगण हाथ जोड़कर प्रणत होकर स्तवन करते हुए सूर्य के चारों ओर खड़े हो गये । तब समस्त धर्मों के प्राणभूत वैवस्त्रत ने ॥३५॥ पवित्र देवालय स्थापित कराया । हे शेष देवगणों ! भक्तिपूर्वक सूर्य की स्थापना तीन स्थानों<sup>३</sup> में करके ॥३६॥ पवित्र देवकार्य में तत्पर लोग निवृत्ति प्राप्त करते हैं विद्वि जानने के इच्छुक भास्कर से दीक्षा प्राप्त करके उन लोगों ने जिसे प्रकार अन्तरात्मा आदि से युक्त अधिर्मडल बनाना चाहिये इस प्रकार

१. पूर्वकालीन अध्यायों में केवल उत्तरभारत की नदियों का उल्लेख हुआ है किन्तु यहाँ पर पूर्वी भारत की महानदी का भी उल्लेख किया गया है महानदी की स्थिति के लिए देखिए अली, एस० एम०, वही, पृ० ११८.

२. उत्तरकालीन पुराणों में सूर्य के इन तीन प्रसिद्ध स्थानों का भिन्न-भिन्न नामों से उल्लेख हुआ है ये तीन स्थान हैं मूलस्थान (पंजाब में मुलतान) कालप्रिय (काल्पी, अथवा उज्जैनी) कोणार्क (उड़ीसा) स्कन्द-पुराण, ६.७६. (मुण्डीर, कालप्रिय और मूलस्थान) साम्ब-पुराण, २६.१४. (कालप्रिय, सुतीर, मित्रवन); भविष्य पु०, १.७६. ४-६. (मुण्डीर, कालप्रिय और मित्रवन), वराह पु० १७७.५५. (उदयाचल, कालप्रिय, और मूलस्थान) देखिए श्रीवास्तव, वही, पृ० २६७-२७०. मिराशी, वी०वी०, श्री ऐन्सियन्ट कैम्पस टैम्पुल्स आफ दी सन, पुराणम्, ८. (१) पृ० ४२, हाजरा, आर०, सी०, श्री मोस्ट इस्पारटेन्ट लिसेज आफ सन वरशिप इन ऐन्सियन्ट इण्डिया; भारतीय विद्या, ४.

॥ ३७ ॥ सूर्य-देवता द्वारा यथोचित रूप से कहा गया दिव्य सूर्यभण्डल लिखा गया ॥३८॥ यथोचित विधि से बताई गयी सूर्य देवता की अर्चना किया को विश्वकर्मा ने सम्पन्न किया ॥३९॥ तदन्तर पुलकित होकर सब लोगों ने मन्दिर का नामकरण किया, जिसके द्वारा सब लोग मुण्डित किये गये, इसलिये वह मुण्डित कहा जाता है ॥४०॥

वेद-ज्ञानियों ने ऐसे व्यक्तियों को कृतार्थ संज्ञा दी है। मुण्डित वातु मर्दन के अर्थ में प्रयुक्त होती है और इसीलिए उसे मुडीर<sup>१</sup> कहते हैं ॥४१॥ वशिष्ठ बोले—इस प्रकार वह आदि-स्थान युग-युग में प्रशंसित होता है। यह समस्त पापों का हरण करने वाला पवित्र सर्वतोर्थमय और शुभ है ॥४२॥ इस संसार में भवितव्युक्त दुख समझने वाले जो व्यक्ति हैं वे सब इस मन्दिर के दर्शन से पापहीन हो जाते हैं ॥४३॥ कुछ व्यक्ति जो निबुद्धि हैं और अत्यंत अज्ञान से इस तीर्थ में पड़ गये उनकी सम्पत्तियों में स्थिरता नहीं होती ॥४४॥ जब तक सूर्य तपता हैं, जब तक श्रीरसागर है, जब तक भूमिधारण करने वाले पर्वत हैं, देवता हैं, तब तक सूर्य की कीर्ति रहेगी ॥४५॥ पृथ्वी में जो मनुष्य पाप-युक्त उत्पन्न होते हैं और जो इस द्येत्र का आश्रय लेते हैं उनका रक्षक सूर्य है ॥४६॥ इस प्रकार का यह सूर्य-देवता ज्ञानी पुरुष द्वारा सदैव आदरणीय है, हे देव ! इस पृथ्वी में कीर्ति एवं धन के आकाशो मनुष्य फिर क्यों है ॥ ४७ ॥ समस्त देवताओं द्वारा अधिष्ठित यह सुरेश का स्थान है, वह शान्ति, पुष्टि, सुख और काम देने वाला है, समस्त जीवों की विपत्तियों का नाशक है ॥४८॥

यही सूर्य का यश है जो कि प्राचीन-काल में मुनियों द्वारा कहा गया । इस

१. तुलना कीजिए स्कन्द पृ० ७ १३६ ११-१२अ, भविष्य बुराण, १.७६.४-६. मुण्डीर की पहचान सामान्यतः कोणर्क से की जाती है जो उचित प्रतीत होता है यद्यपि काणे ने मुण्डीर को मोढ़ेरा माना है देखिये श्रीबास्तव वही, पृ० २६६,

क्षेत्र में सूति में संस्थित उदीयमान सूर्य को जो देखते हैं ॥४६॥ वे मनुष्य पूतात्मा होकर अपना निस्तार कर लेते और गोत्रवर्धन करते हैं। इस सूर्य-क्षेत्र में मनुष्य जिस जिस कार्य को प्रारम्भ करता है ॥५०॥ इसलीक और परलोक में उस उस कार्य की सिद्धि प्राप्त करता है, यह जग्मू द्वीप महाद्वीप है और सर्वश्रेष्ठ कर्म-भूमि है ॥५१॥ जहाँ पर कि इस प्रकार की कीर्ति स्वयं सूर्य देवता द्वारा ही प्रकीर्तित है जहाँ सूर्य स्वयं देखते हैं और जनों को शुद्ध करते हैं ॥५२॥ सूर्य की एक ही सूति दो रूप में कल्पित करके भूतल पर उत्तारी गयी। प्रत्यष्ठ वेला में जो मनुष्य एक बार मुण्डीर<sup>१</sup> को देखते हैं ॥५३॥ उन्हें कभी भी भय, शोक और रोग नहीं होता। मध्याह्न वेला में जो सूर्य का दर्शन करते हैं ॥५४॥ शीघ्र ही उनके सुख का सूर्य उदित होता है। साम्ब द्वारा बसाये गये इस नगर में जो सत्य वेला में सूर्य का दर्शन करता है ॥५५॥ लक्ष्मी उसके धर्म, अर्थ और काम का साधन उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार की युक्ति समझकर सर्वधर्मपरायण समस्त जन सूर्य की कीर्ति गते हुए सूर्य-लीक को जाते हैं ॥५६॥

यह प्रजापतियों का आत्म है, सूर्य के लिये बनवाया गया है, उन्हीं देवता के बर से अनुकूलित है, यहाँ विघ्न उत्पन्न करने वाले लोग पतंगों की भाँति क्षण भर में अग्नि ज्वाला में गिरते हैं ॥ ५७ ॥ इस प्रकार साम्ब-पुराण में तैतालिसवाँ अध्याय<sup>२</sup> समाप्त होता है।

१. इस क्षेत्र की महत्ता के लिए देखिए स्कन्द-पुराण ६-७६, भविष्य पु. १.७६.४-६, १.१२६, १६-१७; ब्रह्म पु. १७७.५५-५६

२. इस अध्याय का रचनाकाल १२५०-१५०० ई.सि. के मध्य निश्चित किया गया है देखिये हाजरा, वही, पृ० ५७,

## अध्याय ४४

~ वैशिष्ठ बोले—उन सुरपतियों के स्वामी सूर्य की जय ही जिन्होंने अपने प्रभापटल से समस्त पाप की नष्ट कर दिया है; जो शाश्वत अमल नयन हैं और सम्पूर्ण भुवन रूपी भवन के दीप सदृश है ॥१॥ साम्ब बोले—हे देवपि धर्मवेत्ताओं ने कहा है कि आचार से आयु बढ़ती है और दुलक्षण द्वर होते हैं ॥२॥ आचार से मनुष्य सुखगामी होता है, आचार से लक्ष्मी का भोग करता है<sup>१</sup> इसलिए मैं तत्त्वतः आचार के विषय में सुनना चाहता हूँ ॥३॥ सूर्य के भक्त पुरुष को किस प्रकार का आचरण करना चाहिये जिससे कि वह सूर्यदेवता की प्रियता प्राप्त करे, समृद्धि और आयु प्राप्त करे ? ॥४॥ नारद बोले—जो तुम मुझसे पूछ रहे हो मैं तुम्हें वही आयु, लक्ष्मी एवं कीर्ति हेतु आचरण का सूत्र बता रहा हूँ ॥५॥ नास्तिक, श्रद्धाहीन, शास्त्र का उल्घन करने वाला गुरु नहीं होना चाहिए । मैथुन में वर्ण-संकर और मर्यादा भंग नहीं होनी चाहिए ॥६॥ मनुष्य को अकोषी, सत्यवादी, जीवों का अहिंसक, अनिन्दक, अकुटिल और आलस्यरहित होना चाहिये, तिनके नहीं तोड़ना चाहिए, नाखून नहीं बढ़ाना चाहिए<sup>२</sup> । अर्थकित मनवाला एवं सुन्दर केशों वाला होना चाहिए । ब्रह्म-वेला में उठकर धर्म के निमित्त भली-भालि

१. धर्म का आधार आचार है देखिए मनुस्मृति, १.१०८-११०.

२. देखिये मनुस्मृति, ४.१४५-१४६, १५६.

३. महाभारत, शान्ति, १६२.१३ ‘लोष्ट-मर्दी तृणच्छेदी नखखादी तु ग्रो नरः’ ये अत्पायु वाले होते हैं ।

चिन्ता करनी चाहिये, आचमन करके पूर्व और पश्चिम संघाओं का वन्दन करे<sup>१</sup>, उदित होते हुए, अस्त होते हुये, जल में प्रतिबिम्बत, और दोपहरी में, ग्रहण-वेला में सूर्य को नहीं देखना चाहिये। दूसरे की पत्नी से सबंध नहीं रखना चाहिये। दोपहरी की वेला में बाल नहीं संवारना चाहिये, दात नहीं धोना चाहिए, और अन्य देवता का पूजन नहीं करना चाहिये, मल और मूत्र वाले स्थान में शयन न करे और न देखे। रजस्वलां स्त्री से न बोले। गाँव के समीप, जुते हुए क्षेत्र में मलत्याग न करे, जल में पेशाब न करे<sup>२</sup>, भस्म के ऊपर अथवा हड्डियों के ऊपर नगन होंकर न चले, ऊपर मुँह करके न खाये और सड़े गले अन्त को न खाए, भोजन के पश्चात अग्नि स्पर्श करके समस्त अंगों का स्पर्श करे। भूसी, बाल, भस्म, कपास, हड्डी, विलेपन, जाख तथा स्वेदादि के ऊपर शयन न करे। पवित्र शान्ति होम इत्यादि पवित्र कार्य करे। सोते हुए, जाते हुए सन्यासी को न उठाए, न रोके, पैर धोकर भोजन करे और पैर सुखाकर शयन करे। अग्नि अथवा ब्राह्मण को जूठा न खिलाये। सूर्य, चन्द्रमा और तारों को न देखे, आते हुए सन्यासी को उठकर आदरपूर्वक अभिवादन करके आसन दे। जले हुये सन्यासी का पीछे से अनुसरण करे। टूटे हुये कंच के वर्तन<sup>३</sup> में भोजन न करे। एक बस्त्र पहनकर भोजन न करे। नगन होंकर स्नान न करे, न सोये और जूठे हाथ से सिर न छुये। चोटी पकड़ कर सिर पर न मारे, दोनों हाथों से सिर न खुजलाए, बार बार सिर न धोये, दो बार स्नान न करे। सिर से स्नान करने

१. महाभारत, शान्ति, १६३, ४-५.

२. महाभारत, शान्ति, १६३.३ “पुरीषं यदि वा मूत्रं येन कुर्वन्ति भानवाः। राजमार्गगवां मध्ये धान्यमध्ये च ते शुभाः।”

३. सन्यासियों के लिये विधान था कि धातुओं और टूटे हुये वर्तन में भोजन न करें देखिये मनुस्मृति, ६.५३.

के बाद तेल से किसी अंग को न छूआये । समान मात्रा में मिला हुआ धी और मधु विष है । नीचे गिरे हुए मूँग और तिल को न खाए, जूठे मुह न पढ़े और न ही पढ़ाये और दुर्गन्धित वायु से भी न पढ़ाये । इस सम्बन्ध में भगवान् यम ने यह गाथा कही है कि जो जूठे मुह पढ़ता<sup>१</sup> है अथवा स्वाध्याय करता है उसकी आयु नष्ट हो जाती है और उसकी संततियां नष्ट हो जाती हैं । सूर्य, अग्नि, पवन, चन्द्रमा, जल, गाय, ब्राह्मण और नक्षत्रों की ओर मूँह करके रास्ते में मूत्र न करे । दिन और संध्याओं में उत्तर की ओर मूँह करके और रात्रि में दक्षिण की ओर मूँह करके तृणों से ढकी पृथ्वी पर नीवि भाग को ढककर मल-मूत्र त्याग करे, माँस युक्त एवं शाद्व का भोजन करके संध्या बंदन न करे । ब्राह्मण, क्षत्रिय और नागों<sup>२</sup> का अपमान न करे । गुरु के साथ छल, और असत्य के साथ समझौता नहीं करना चाहिये । गुरु की निन्दा नहीं करनी चाहिए, गुरु की निन्दा के प्रसंग में दोनों कान बन्द कर लेना चाहिये । दूर से आने पर और लघुशकां के बाद पैरों पर पानी छिड़कना चाहिये और मूत्र के स्पर्श हो जाने पर मार्जन करना चाहिये । प्रातः, मध्याह्न, अथवा संध्या काल में नहीं चलना चाहिये, अकेले अज्ञात व्यक्ति के साथ तथा शूद्र के साथ नहीं चलना चाहिये तथा गाय, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वृद्ध, भार से थकी हुई, गम्भिणी और क्षीणकाय व्यक्तियों के लिये रास्ता दे देना चाहिए । धारण किये हुये वस्त्र को धारण न करना चाहिये, न पैर से पार करना चाहिये । अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावस्या इन तिथियों में ब्रह्मचारी हो जाना चाहिए । निरर्थक माँस और

१. महाभारत, शान्ति, १६३, १३, “नित्योच्छिष्टः शंकु शको नेहार्युविन्दते महत् ।”

२. नाग का सूर्य से निकटतम सम्बन्ध था देखिये महाभारत, शान्ति, ३५८-३६३, ओल्डम, सी०, एफ०, दी सन ऐन्ड दी सरपेन्ट.

सङ्ग मांस<sup>१</sup> नहीं खाना चाहिये । क्रोध, नित्या, दुर्भविना, नृशंसता और तीक्षणता से हीन नाम होना चाहिए । हीन व्यक्ति से उत्कृष्ट वस्तु भी नहीं लेना चाहिए । दूसरे के रहस्यों और दीषों को नहीं बताना चाहिए । जो हीन अंग के हों, जो अधिक अंग वाले हों, जो कुरुप हों, जो निर्धन हों, जो जातिहीन हों, जो झूठे हों, जो निन्दित हों, जो विगड़ित हों उनका अपमान नहीं करना चाहिये । नास्तिकता, वेद-निन्दा, द्वेष, दम्भ, अभिमान और तीखापन-इन्हें छोड़ देना चाहिये । दूसरे को दण्ड देने की इच्छा नहीं करनी चाहिये । कुछ होने पर भी भार्या, पुत्र, दास, दासी, शिष्य और भाइयों को मारना नहीं चाहिये । ब्राह्मण, अतिथि, क्षत्रिय एवं आड्यात्मिक गुरु का निन्दक नहीं होना चाहिये । चल-मूल के पश्चात् अथवा गन्दी गली पार करने के पश्चात् पैर धो सेना चाहिये । जौ से तैयार किया हुआ आहार, खिचड़ी, मांस, बरा और खीर अपने लिए नहीं बनाना चाहिए । सन्यासियों की जित्य भिक्षा देनी चाहिए । प्रातः बेला में पूर्वमुख होकर दालौन करना चाहिए । सूर्योदित होने पर सोना नहीं चाहिए<sup>२</sup> । प्रातः उठकर पिता और आचार्य का अभिवादन करना चाहिये । बिना दन्त धावन किये हुए देवपूजा कार्य में गमन नहीं करना चाहिये । गुरु, वृद्ध और धार्मिकों की अपेक्षा दूसरे स्थान पर शयन नहीं करना चाहिए । गन्दी दिशा को देखकर उत्तर-पश्चिम को सिर करके नहीं सोना चाहिए । सूर्य

१. महाभारत, शान्ति, १६३.१४. “न भद्रेद् वृथामासं पृष्ठमासं च वर्जयेत् ।”

२. ‘अस्युदित’ एक पारिभाषिक शब्द है जिसका अर्थ है सूर्य के उदित होने पर सीने वाला व्यक्ति, देखिए अमरकोश, २.८.५४; महाभारत, शान्ति, १६३.५.

की पूजा-कथा में भवित करावे । ऐसे लोग यम<sup>१</sup> का वर्म प्राप्त करते हैं । नित्य ब्राह्मण को भोजन कराये विशेष कर कथा वाचक को और अन्त में बचे समग्र भोजन को खाना चाहिये । रात्रि में स्नान न करे । स्नान करके शरीर को न रगड़ें । स्नान करके अनुलेपन न करे । स्नान करके गोले वस्त्रों में न खड़ा रहे । वस्त्र को फटकना नहीं चाहिये । मालाओं को अन्दर नहीं रखना चाहिये और न बाहर रखना चाहिये । लाल माला नहीं पहननी चाहिए । स्नान किये हुए व्यक्ति को सुगन्धित द्रव्य नहीं प्रदान करना चाहिए । कमल, कुवलय और ताजे असन पुष्पों<sup>२</sup> को छोड़कर इवेत माला पहननी चाहिये । स्नान किये हुए व्यक्ति को रंग नहीं देना चाहिये । स्नान किये हुये व्यक्ति को सुगन्धित द्रव्य नहीं प्रदान करना चाहिये । साँस को नहीं रोकना चाहिए । अन्य द्वारा धारण की गई वस्तु को नहीं धारण करना चाहिये । जीर्ण एवं भलिन (वस्त्र) को भी नहीं धारण करना चाहिए । सम्भव होने पर भी दूसरे की शैश्या पर, दूसरे की धन-सम्पत्ति पर और दूसरे देवता की अर्चना पर अधिकार नहीं जताना चाहिए । कीड़े पड़े हुए, केश पड़े हुए और तत्त्व निकाले हुए अन्न को नहीं खाना चाहिए । दूसरे समय पर रहने पर दाल, शरक, गूलर न खानी चाहिए । बकरी, गाय, मयूर, सूखे हुए और बाँसी मांस को नहीं खाना चाहिए । हाथ पर नमक नहीं लेना चाहिए । कुत्ते आदि हिंस जन्तुओं के द्वारा चाटे हुए अथवा सूंधें हुये पदार्थ को नहीं खाना चाहिए । रात में दही और सनू का भोजन नहीं करना चाहिए । बच्चे अथवा दूसरे के पुत्र के साथ नहीं खाना चाहिए । केवल शाम सबेरे भोजन करना चाहिए, दीच में<sup>३</sup> नहीं । हडबडा

१. शरीर साधन के लिए किए गए नित्य कर्म को यम कहते हैं अमर कोण २.७.४८, याजू० ३।३।३ ने निम्नलिखित यम बतलाए हैं—ब्रह्मचर्य, दया, शान्तिदानं सत्यमकल्पता, अहिंसाऽएतेयमाध्युर्ये दमश्चेति यमाः स्मृताः ।

२. पीतसाल नमक वृक्ष, शिशु०, ६.४७.

३. महाभारत शान्ति, १६३.१० “सायं प्रातर्मनुष्याणमशनं वेद-नमित्तम् ।”

कर भोजन नहीं करना चाहिए। मौन धारण करके खाना चाहिये। केवल एक बर्तनमें भोजन नहीं करना चाहिए। नग्न होकर अथवा लेटकर अथवा बात करते हुए नहीं खाना चाहिए। किसी के बचे हुये अन्न-जल का उपयोग नहीं करना चाहिए। बिना अतिथियों को दिए हुए नहीं खाना चाहिए। एक पंक्ति में अपने खाने से बचे हुए अन्न को किसी और को नहीं देना चाहिये। दधि का अनुपान शुक्ल भोजन से करना चाहिये। दधि, मधु, सत्तू, खीर जल आदि बैठकर खाना चाहिये। एक हाथ से आचमन करना चाहिये और तदुपरान्त जल पीना चाहिये। दाहिने पैर के अंगूठे में जल छिड़कना चाहिये ॥७॥ जो व्यक्ति हाथ को सिर से लगाकर दत्तचित्त होकर अग्नि स्पर्श करता है वह व्यवहार कुशल व्यक्ति स्वजातियों में श्रेष्ठता प्राप्त करता है ॥८॥

गीले हाथ से नाक को न छुए। पतित व्यक्तियों के वृत्तान्त, दर्शन और ससर्ग को छोड़ दे, दूसरे की निन्दा और अप्रिय वचन न बोले। किसी का कोध न उत्पन्न करे। दिन में सम्भोग नहीं करना चाहिये। कन्या, बाँझ, अज्ञात, गभिरी, अंगहीन, वृद्धा, सन्यासिनी, पतिव्रता, अपने से ऊँचे वर्ण वाली, अत्यंत निकूर्ष वर्ण वाली, पीलिया रोग वाली, कोदिन, योगिनी, चक्षों के दाग वाली, अपने ही कुल में उत्पन्न हुयी जाति-संबन्ध-हीन, और मिर्गी के रोग वाली लड़की<sup>१</sup> को छोड़ देना चाहिए। जो अगम्य स्त्री है उसे पाने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए। राजा की स्त्री, अपनी सखी, वैद्य की स्त्री, कन्या, वृद्धा, मृत्यु की शरण में गई हुयी ब्रह्मणी और बन्ध्या इनसे संबंध न करे। थूक से शुद्ध हो जाना चाहिये। पुण्यात्मा व्यक्ति के घर में वृद्ध, विपक्ष, और मित्र, शुक, सारिका और कबूतर और तैलपायिका को रहना चाहिये। संध्या काल में स्वाध्याय और भोजन न करे। रात्रि वेला में पितृ कार्य, शृंगार और क्र्यविक्र्य का कार्य नहीं करना चाहिये। देवकार्य, पितृकार्य और अपने जन्म-नक्षत्र में सिर से स्नान करना चाहिये। पैर के पीछे अग्नि नहीं देना चाहिये। संध्या में दिवंगत का हवन नहीं करना चाहिये। इच्छा

होते हुये भी स्त्री की रक्षा करनी चाहिए । दिन में नहीं सोना चाहिये । रात्रि में सोने से आयु एवं बुद्धि में वृद्धि होती है । बिना आमन्त्रित दर्शनार्थ दूसरी जगह यज में नहीं जाना चाहिये । रात में अकेले नहीं चलना चाहिये । जब तक पश्चिम की संध्या न आ जाये तब तक घर में रहे । माता और पिता के बच्चन को चाहे हित हो चहे अहित करना ही चाहिये । धनुवेद, हाथी छोड़ा के पीठ की सवारी और रथचर्या में प्रयत्न करना चाहिये । मुक्ति शब्द, कला, गायन, पुराण, इतिहास, आख्यान, माहात्म्य एवं चरित इनके ज्ञान से सम्पन्न होना चाहिए । सूर्य का व्रत सप्तमी<sup>१</sup> को करना चाहिए ॥ गाय को पैर से न छुए, गाय की रसी को न लावें । किसी की धरोहर का अपहरण न करे । गाय, ब्राह्मण और स्त्रियों से वीरता न दिखाये ॥ अकृतज्ञ<sup>२</sup> नहीं होना चाहिये । अकेले मिठाई नहीं खानी चाहिये । स्त्रियों और स्त्री के भाइयों की नौकरी नहीं करनी चाहिए । इस विषय में ये गाधायें मिलती हैं—निन्दक के समान मित्र संसार में दूसरा नहीं है क्योंकि वह आपके पापों को लेकर के पुण्य देता है । झूठी साक्षी नहीं देना चाहिए । शरणागत को नहीं छोड़ना चाहिये । किये हुये दान का वर्णन नहीं करना चाहिये । मोटी घास को देकर, कसि के पात्र से और दूसरे बछड़े से गाय नहीं दुहनी चाहिये । रजस्वला स्त्री से सम्भोग नहीं करना चाहिये । चौथे अथवा छठे दिन स्नान से शुद्ध स्त्री<sup>३</sup> से समविषम दिन

१. सूर्य के लिये सप्तमी पर व्रत के लिये देखिये विष्णुधर्मोत्तर पु०, ३.१७१, १.-१७, भृत्य पु०, ७४-८०, यश्चपुराण, ५.२१.२१५-३२१, भविष्योत्तर पुराण, ४३-५३, राजमातृण्ड, श्लोक ११७२-७३.

२. कृतज्ञ की गति और प्रायश्चित के लिये देखिये महाभारत, अनुशासन, १२,

३. महाभारत, शान्ति, १६३.११

में पुत्र पुत्री की कामका करता हुआ निकितार होकर सम्भोग करे । अग्नि में अपवित्र वस्तु न फेंके । वर्षा हीने पर न दौड़ें । हाथ से हवा देकर अथ न ही पकाना चाहिये । बिना यज्ञ किये नया अन्न न खाएं । सदैक सप्तेव वस्त्र पहने । दाढ़ी, केश और नखों को बड़ा न होने दें । पानी में परछाई ब देखें । पत्नी के साथ बैठ कर नहीं खाना चाहिये<sup>१</sup> । सुखपूर्वक सौई हुए भोजन करती हुई, जम्हाई लेती हुयी, रति कीड़ा में लिन्त युक्ती स्त्री को एव नग्न स्त्री को नहीं देखना चाहिये । आग में मुँह से हवा न करें न पैर सेकें, उसे नीचेन नहीं रख देना चाहिये । अग्नि को न लांघे न पैर से स्पर्श करे । जमीन न खोदें । जल में न थूकें । गन्दी चीजें न फेंके, खून, पशुमज्जा और हड्डियाँ जल में न फेंके । सूने घर में अकेले न सोये । अध्ययन एवं भोजन में अग्नि, गुरु, देव, द्विज, पति एवं गाय को दाहिने हाथ से न उठाना चाहिये<sup>२</sup> । चरती हुये गाय को और दूसरे के फसल को कुचलती हुयी गाय को रोकना नहीं चाहिये<sup>३</sup> । इन्द्र घनुष देखकर दूसरे को नहीं दिखाना चाहिये । अधमियों के देश में नहीं रहना चाहिये । रोग की दशा में अकेले गली में नहीं चलना चाहिये । पर्वत पर अधिक समय तक न रहे । ब्यर्थ की चेष्टायें न करे । अञ्जलि से पानी न पिये, पोदो में बैठ कर न खाएं । विरक्त हो जाने के बाद नृत्य, गीत, वादन आदि न देखें । कासे के बर्तन में पैर न धोएं । पैर से एवं अत्यन्त वाचाल घोड़े से जहो चलना चाहिए । सबेरे की धूप, प्रेत-धूम (चिता से उठता हुआ धुआ) और झाड़ू की धूल बचानी चाहिये । जुआं न खेले ।

१. महाभारत, शान्ति, १६३-२४. “सहस्रियाथ शयनं च भोज्यं च वर्जयेत् ।”

२. तुलसी कीजिये महाभारत, शान्ति १६३, २०.

३. गाय को न मना करने के विधान के के लिये देखिये मनुस्मृति, २१.११५. याज्ञवल्क्यस्मृति, ३.२६३-२६४.

अपने आप जूता नहीं उठाना चाहिये । सोते हुए नहीं खाना चाहिये । न हाथ के स्थान से, न आसन के स्थान से, न बाहुं से नदी में उतरे । वृक्ष पर न चढ़े, संदिग्ध नाद पर न चढ़े, कुएँ में न उतरे । देवता ब्राह्मण गुरु, राजा, स्नातक, एवं आचार्य के साथ मैथुनवास न करे, भोजन के बाद स्नान न करें । बीमार होने पर और बड़ी रात में न नहाये और अनजाने जलाशय में न नहाये, न निरन्तर रहे । शत्रु, उसके सहायक, अधार्मिक एवं चोर की सेवा नहीं करनी चाहिये । प्रिय सत्य बोले, अप्रिय सत्य और प्रिय असत्य न बोले । शुष्क कलहू उत्पन्न करने वाले वचन न बोले । समस्त शुभ आचरणों में लगे रहना चाहिए । शरीर के सभी अंगों, नखों, नाभि को हथेली से विना मन्त्र के नहीं छूना चाहिये, प्रच्छन्न गुप्त बालों को छोड़ देना चाहिये । देवताओं, श्वेष्ठ ब्राह्मणों और गुरुओं की सेवा करनी चाहिये । अपनी रक्षा के लिए ईश्वर की सेवा करे । परब्रह्म कार्य को छोड़ दे । सुख की इच्छा करने वाला अपने वश के कार्य करे । आत्मा में संतोष धारण करने वाला धार्मिक बने । गर्थ और काम यदि धर्महीन हों तो त्याग देना चाहिये । बाणी, हाथ, चरण और नेत्र से चंचल नहीं होना चाहिये । परदोही, ऋत्विक्, पुरोहित, आचार्य, मामा, अतिथि, शरणागत, बृद्ध, बालक, रोगी वैद्य, जाति विरादर-संबंधी, भाई-बन्धु, माता-पिता, भाई, पत्नी-पुत्री और जौकरों से झगड़ा नहीं करना चाहिये । जो व्यक्ति विद्यबान न हो उसे गाय, सोना, भूमि, अश्व, गृह, अन्न तिल और घृत दान में नहीं लेना चाहिये । दूसरों के तालाब में नहीं नहाना चाहिये । सप्तपिंडों को लेकर नदी, देवनिमित्त खोदे गये तालाब और ज्ञरनों में स्नान करना चाहिये । क्रोधी, मूर्ख, रोगी, जौकर, मणिका और विद्वानों द्वारा निन्दित तथा बढ़ई, गायक और कायर द्वारा दीक्षित सरोवर में स्नान न करे । कल्याण की कामना वाले व्यक्ति को निन्दा, प्रारणदण्डप्राप्त व्यक्ति, कलञ्जित, ठग, वैश्यापुत्र, कैदी तथा वैद्य<sup>१</sup> के अन्त और शूद्र द्वारा

१. तुलना कीजिये महाभारत, अनुशासन, १३५, ११, १४, १५, में चिकित्सक, वैश्या, कलञ्जित व्यक्तियों के अन्त को खाने का निषेध है ।

जूठा, सूखा, बासी और अधपका अब नहीं खाना चाहिये। ध्यानमग्ना निर्भया ब्राह्मणी को यथाशक्ति दान देना चाहिये। प्रजाको अतिशय तृप्त करके तथा चन्द्रसूर्य को देखकर इष्टभायी, सनातन ऐश्वर्य एवं ब्रह्मलोक को प्राप्त करने के इच्छुक को सूर्य के लिये छत्र और दो उपान हैं देना चाहिये। अत्युत्तम सम्बन्ध, धन, कुल की उन्नति के इच्छुक को इथ्या, गृह, कुशबंध, पुष्प, उदक, मणि, दधि, मत्स्य, पश्च, मांस, शाक आदि को देना चाहिये। शत्रु और सुनार का अब कभी न खायें। अपढ़ व्यक्ति का साथ न दे, उनका जल, अब, तिल, दीप, भूमि, स्वर्ण, गृह वस्त्र, और गाएं न ग्रहण करे।

आध्यात्म ज्ञान में निरत होकर देवता, अतिथि, गुरु और भूत्य की संस्तुति करनी चाहिए। इस प्रकार पवित्र लक्षण वाला सम्यक आचार तुम्हे बताया। सूर्य-भक्त का यह ब्रह्मा द्वारा निर्मित लक्षण आयु, लक्ष्मी, यश और समृद्धि का कारण है ॥११॥ आचार युक्त पुरुष लोक में और परलोक में प्रसन्न होता है। आचारण से ही आयु बढ़ती है और अशुभ लक्षण मिट जाते हैं ॥१२॥ दुराचारी पुरुष संसार में निन्दित होता है वह निरन्तर दुर्भाग्य, व्याधि और अल्पायु वाला होता है ॥१३॥ इसलिये सूर्य-भक्त को सदैव सदाचारी<sup>२</sup> होना

१. महाभारत, अनुशासन, १३६.१० में आद्व में जूता और छाता ग्रहण करने का विधान है, अनुशासन ६६ में जूते के दान का महत्व बताया गया है। सूर्योपासक के लिये इनके दान का औचित्य महाभारत, १३-८५ एवं पुराणों में आये जमदग्नि-रेणुका-आख्यान में देखा जा सकता है। श्रीवास्तव, सत्त्वरशिष इन्स्टिट्यूट इण्डिया, पृ० १६७, साम्बिपुराण, ४५.

२. महाभारत, शान्ति १६३. भट्टाचार्य, बी०, दो कलि वर्ज्याज्ज्ञ काण, हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, ३, ६२६-६६८.

चाहिये। ऐसा व्यक्ति सूर्य देवता की प्रियता को प्राप्त करता है और अचल वैभव को प्राप्त करता है ॥१४॥ इस प्रकार साम्ब-पुराण का चौबालीसवां अध्याय<sup>१</sup> समाप्त होता है ।

---

१. यह अध्याय १५०-१०५० ई० के मध्य साम्ब-पुराण, में प्रकाशित किया गया, देखिए हाजरा, स्टडीज, भाग १, पृ० ६३.

## अध्याय ४५

साम्ब बोले—हे ब्रह्म ! आपने सूर्य द्वारा निर्मित छत्र का वर्णन किया । जो छत्र एवं पादुका का दान देता है वह इन्द्रलीक की जाता है । हे भगवन् ! आप यह रहस्य बताये कि किस प्रकार सूर्य-विनिर्मित छत्र और पादुका का दान किसी ब्राह्मण को देना चाहिये ॥२॥ नारद बोले—प्राचीन काल में जैसे यह घटना हुई वैसे मैं तुम्हें बता रहा हूँ, प्राचीन काल में ऋड़ा में भृगुवंशीय जमदग्नि<sup>१</sup> ने बाण चलाये ॥३॥ छोड़े गये उन बाणों को उनकी पत्नी रेणुका ने सूर्य के देवीप्यमान तेज से ले आकर शीघ्र दे दिया ॥४॥ तदन्तर उस धनुष की डोरी के और बाण के मनोहर शब्द से प्रसन्न होकर उन्होंने पुन बाण छोड़े और उसने फिर उन्हें लौटा दिया ॥५॥ इसके पश्चात ज्येष्ठामूल नक्षत्र में सूर्य के मध्यान्ह में होने पर पुनः बाणों को छोड़कर महर्षि जमदग्नि ने रेणुका से यह कहा ॥६॥ हे विशालाक्षि ! हे सुध्र ! जाओ धनुष से निकले हुए इन बाणों को ले, आओ ताकि मैं उन्हें फिर छोड़ू—इस प्रकार मुनि ने कहा ॥७॥ इस कार्य के लिये जाती हुई वह व्याकुल सुन्दर तरुणी रेणुका वृक्ष की छाया में खड़ी हो गयी, उसके दोनों कमल तुल्य पैर और सिर सूर्य की किरणों से संतप्त हो गये ॥८॥

१. जमदग्नि की यह कथा महाभारत, अनुशासन, ६५-६६ से ग्रहण की गई है । इस अध्याय के श्लोक संख्या ३८-६, १०-२५, २७-२६-३१अ, ३२, ३४ब, ३५ब-३८ तथा ३९ क्रमशः महाभारत, अनुशासन, ६५, ६-८३, १५-१७अ, १६, २०ब-२८ तथा ६६, १-२अ, ३अ, ४-८अ, १२, १३ब-१५ १८-१९, २०-२१ से ग्रहण किये गये हैं ।

मुहूर्त भर वहाँ रुककर पति के शाप के भय से विकल होकर उस कल्याणी यशस्विनी ने पुनः बाणों को ले आकर पति को दे दिया ॥ ६ ॥ पसीने में नहाई हुई रेणुका को देखकर कुद्धि से कष्ट की जात कर जमदग्नि ने रुष्ट होकर कहा—क्यरों देर से आयी हो ? ॥ १० ॥ रेणुका ने उत्तर दिया कि मैं सूर्य की किरणों से पीड़ित हो गयी । अत्यधिक तीखे सूर्य के तेज से मेरा सिर और पैर संतप्त हो गया था<sup>१</sup> ॥ ११ ॥ इसलिए वृक्ष की छाया में बैठकर मैंने इतनी देरी की । इस बात को सुनकर जमदग्नि ने कुद्धि होकर संतप्त करने वाले सूर्य को ललकारा ॥ १२ ॥ उन्होंने चढ़े हुए घनुप को तथा अनेक बाणों को लेकर उसी ओर मुँह किया जिस जिस ओर सूर्य जाते थे ॥ १३ ॥ तब ब्राह्मण का रूप धारण करके सूर्य जमदग्नि के पास पहुँचकर बोले—आप कुद्धि क्यों हैं ? सूर्य ने आपका क्या अपराध किया है ? ॥ १४ ॥ सूर्य तो सम्पूर्ण संसार में विद्यमान जल की किरणों के द्वारा ग्रहण करता है और जल ग्रहण करके वर्षा काल में बरसाता<sup>२</sup> है ॥ १५ ॥ उससे अन्न पैदा होता है जो है विप्र ! मनुष्यों के लिये सुखदायक है । वेद में ऐसा कहा और पढ़ा जाता है कि अन्न ही प्राण है ॥ १६ ॥

हे ब्रह्मन ! इसलिये संसार के कल्याणार्थ रथिमयों से भिरा हुआ वह सूर्य सातों द्वीपों वाली पृथ्वी को जल की वर्षा से आप्लावित करता है ॥ १७ ॥

१. सूर्य के तापनशील स्वभाव का प्रकटीकरण महाभारत एवं पुराणों में किया गया है देखिये श्रीवास्तव, सन्-वरशिष्ठ इन ऐन्सियन्ट इण्डिया, पृ०, १६५-६६.

२. सूर्य के वर्षकारक पक्ष का वर्णन महाभारत, (३.३-६७, ७१, १४६); बिष्णु-पू, २.६-७, ६, १२, १३, १४, १६, माल्क-पद्मेष-पू०, २७.२३. रामायण, ६.१०५.१३, मनु-स्मृति, ३.७६. वशिष्ठधर्मसूत्र, ११.१३, औदि में लिखता किया गया है तुलना कीजिये बायु पू०, ३१.३७, ब्रह्माप्ति पू०, २.१३.१२५, ऋग्वेद, १.१६४.१४.

हे ब्राह्मण ! उसी जल से औषधियाँ, लतायें, पत्र और पुष्प आदि उत्पन्न होते हैं और वर्षा से ही प्रायः सभी प्रकार के अन्न उत्पन्न होते हैं ॥१८॥ उसी से जातकर्म, व्रत, उपनयन, गोदान आदि तथा समस्त वर्णों की समृद्धियाँ होती हैं ॥ १९ ॥ यज्ञ और दान कार्य होते हैं लीजसंचय आदि समुच्चय अन्न से अच्छी प्रकार चलते हैं । हे भार्गव ! आप तो सब जानते ही हैं ॥ २० ॥ संसार में जितने भी रमणीय कार्य हैं वे सब अन्न से ही होते हैं ॥२१॥ हे विप्र ! आप सब जानते हैं जो कुछ मैंने कहा है । इसलिये हे भृगुवंशश्रेष्ठ ! मैं आपसे याचना करता हूँ । आप सूर्य पर कुछ व्यर्थ में हैं ॥ २२ ॥ इस प्रकार महात्मा सूर्य के कहे जाने पर महातेजस्वी जमदग्नि ने उनका दास्य भाव स्वीकार कर लिया<sup>१</sup> ॥२३॥ तब वह भगवान् सूर्य देवता ने अग्नि समान उन मुनि से मीठी वाणी में पुनः बोले ॥२४॥

हे विप्र ! निरन्तर संचरण करने वाले सूर्य का आधार संचरणशील है । यह बताए कि निरन्तर चलते हुये सूर्य को आप कैसे जान पाते हैं ? ॥२५॥ इस प्रकार कहने वाले ब्राह्मण रूपवारी सूर्य देवता को पहचानकर जानयुक्त आत्मा उन महर्षि जमदग्नि ने यह बचन कहा ॥ २६ ॥ मैं ज्ञान नेत्रों द्वारा रवि को अचल अधिक चल जान लेता हूँ, हे पाप रहित, अतः आज मैं दण्ड देकर अवश्य विनय का पाठ पढ़ाऊगा ॥२७॥ हे दिवाकर ! अपरात्मा वेला में आप निमेष भर ठहरते हैं वहाँ मैं आपको जान लूँगा इसमें विचारने की कोई बात नहीं है ॥२८॥ सूर्य बोले—हे श्रेष्ठ धनुर्धर ! विप्रश्रेष्ठ ! निश्चय ही आप मुझे जान लोगे किन्तु आप मुझे अपना उपकारी समझे आपके समक्ष दृष्टिगोचर हुआ हूँ ॥२९॥ समस्त लोक की रक्षा के लिए प्रवृत्त दुष्प्राप्य दीप्त

१. महाभारत, अनुशासन, १६ में इस कथा में कहा गया है कि सूर्य द्वारा प्रार्थना किये जाने पर भी जमदग्नि का क्रोध शान्त नहीं हुआ । साम्ब-पुराण साम्प्रदायिक सौरोपासना से सम्बन्धित है अस्तु सूर्य की श्रेष्ठता सुन कर जमदग्नि को शान्त होते हुए यहाँ बताया गया है ।

रशिमयों वाले ऐसे मुझको अपने ज्ञान नेत्रों से जाग लिया ॥३०॥ तब हँसकर भगवान् जमदग्नि ने लोकप्रकाशक सूर्य को प्रेमभरते दृष्टि से देखकर कहा ॥३१॥ इस तप के चले जाने का समावान सौचो जिससे सुखपूर्वक मार्गांशम हो और परम अक्षय की प्राप्ति हो ॥३२॥

ब्राह्मण को छत्र<sup>१</sup> देना चाहिये इससे वह सुखी होता है । हे सुरोत्तम ! आपके ऊपर मेरा ऋषि नहीं है ॥३३॥ समस्त लोकों का कल्याण करने वाले मुझे दिखाई पड़ने वाले आप हैं । जमदग्नि के ऐसा कहने पर भगवान् सूर्य ने उन्हें छाता और पादुका दिया ॥३४॥ उन्होंने मुनिश्रेष्ठ जमदग्नि से यह उत्तम वचन कहा — हे महर्षि ! मस्तक की रक्षा करने वाला यह छत्र मेरी रशिमयों का निवारण करने वाला है ॥३५॥ इसे ग्रहण कीजिये और पैरों में पहनने के लिये ये जूते हैं । आज से इस संसार में छाते और जूते का प्रचार होगा ॥३६॥ जो लोग ब्राह्मण को छत्रदान<sup>२</sup> देंगे वे पुण्यात्मा परलोक में परम आयु एवं सुख प्राप्त करेंगे ॥३७॥ उनका निवास इन्द्रलोक में होगा । अप्सराओं से घिरे रहेंगे ॥३८॥ और जो चिकने तेल से उपलिप्त जूते दान देगा वह मनुष्य मरने के बाद गोलोक में निवास करेगा ॥३९॥ इस प्रकार कहकर लोक पावन भगवान् सूर्य उन महर्षि को शान्त करके वही पर अन्तघ्यनि हो गये ॥४०॥

१. द्रष्टव्य है कि मग-परम्परा के प्रभाव में भारतीय सूर्य-मूर्तियों को पादुका-युक्त बनाने की प्रथा प्रचलित हो गई थी इसी विदेशी परम्परा का भारतीयकरण इस आख्यान के माध्यम से किया गया है देखिये बनर्जी, जे०, एन०, मिथ्स एक्सप्लेनिंग सम ऐलियन ट्रैट्स आफ नार्थ इण्डियन सन आइकन्स, इण्डियन हिस्टोरिकल क्वाटर्ली, २८, (१९५२).

२. छत्र एवं उपानहू के महत्व के लिये देखिये महाभारत, अनुशासन, ४५, १७-१८.

हे युद्धेष्ठ साम्ब ! मैंने भी पुण्य बढ़ानी वाली छत्र और पाण्डुका-दान को वह कथा उनसे कही जैसे सूर्य ने कही थी ॥४१॥ इस प्रकार साम्ब-पुराण में पैतालीसवां अध्याय<sup>१</sup> समाप्त होता है ।

१. हाजरा, स्टडीज, भाग १ पृ० ६३ के अनुसार ४४-४५ अध्यायों को ६५०-१०५० ई के मध्य प्रक्षिप्त किया गया परन्तु ये अध्याय साम्ब-पुराण के प्रारम्भिक भाग के अंग हैं ।

## अद्याय ४६

साम्ब ने कहा—हे भगवान् ! मैं सप्तमी-तिथि<sup>१</sup> का विधिक्रम सुनना चाहता हूँ, आप महामुनि ! सम्यक्पूर्वक क्रमशः कहें ॥१॥ नारद ने कहा—महाबाहु साम्ब ! सप्तमियों का श्रेष्ठ विधान सुनो ! भक्तिपूर्वक तुम पूछ रहे हो तुम्हे बताऊँगा ॥२॥ हे यदुकुलश्रेष्ठ ! जैसा कि विवस्वत् सूर्य ने बताया है शुक्ल पक्ष में रविवार के दिन जब सूर्य उत्तरायण हों ॥ ३ ॥ और जब पुन्नामधीय नक्षत्र हो तब ज्ञानियों एवं क्रृषियों के द्वारा सप्तमीव्रत ग्रहण करता चाहिये । यह व्रत समस्त कामनाओं के फल को प्रदान करने वाला है ॥ ४ ॥ सप्तमियाँ सात बताई गई हैं उनके नाम मुझसे सुनो, पहली मन्दार के पत्तों से, दूसरी काली मिचों से ॥ ५ ॥ तीसरा नीम के पत्तों से, चौथी फलों से, पाँचवी अनोदना<sup>२</sup> है और छठी विजय सप्तमी, सातवीं

१. विभिन्न प्रकार के सप्तमी व्रतों का निरूपण अन्य पुराणों एवं निबन्धों में भी आता है—सत्य पृ०, ७४-८०, ईश पृ०, ५.२१.२१५-२२१, भविष्योत्तर पृ०, ४३-५३, नारद पृ०, ११६.१-७२. कृत्यकल्पतरु, व्रत, १०३-२२५. हेमाद्रि, चतुर्ब्जचिन्तामणि, व्रत १०६३२-८१०. वर्षक्रिया-कौमुदी, ३५-३८, तिथितत्त्व, ३३-४०, व्रतरत्नाकर, २३१-२५५.

२. यि० में अनादिनी अशुद्ध है इसके स्थान पर अनोदना होता चाहिये ।

कामिका<sup>१</sup> नाम की सप्तमी है अब इनकी विधि सुनो ॥ ६ ॥ (इन समस्त सप्तमियों में) मनुष्य ब्रह्मचारी बने, जितेन्द्रिय हो, शौचयुक्त हो, जप एवं होम से समन्वित हो और सूर्य-पूजा में लीन हो ॥ ७ ॥ पंचमी में पुरुष अपना निर्यास करे, षष्ठी के दिन सम्भोग न करे, मदिरा और मौस का त्याग करे ॥ ८ ॥

एक एक करके मन्दार<sup>२</sup> के पत्तों को समर्पित करता हुआ सप्तमी के दिन भक्षण करे ॥ ९ ॥ तदनन्तर एक एक करके बढ़ाए गए मिचों<sup>३</sup> का भक्षण करे,

१. कामिका अशुद्ध प्रतीत होता है, कामदा होना चाहिये क्योंकि कामिका व्रत सप्तमी पर न होकर मार्ग कृष्ण २ पर होता है जिसमें स्वर्णचक्र प्रतिमा का पूजन होता है, अहित्याकामधेनु०, २५१. जब कि कामदा सप्तमी व्रत का फाल्गुन शुक्ल सात पर विधान है जिसमें सूर्य-पूजा होती है। भविष्य-पु०, १.१०५. १-६. उद्धरित हेमाद्रि, व्रत, १०७२८-७३१, कृत्यकल्यतर०, १६६-७२.

२. मन्दार सप्तमी व्रत माध शुक्ल सात पर होता है, पंचमी पर हल्का भोजन, षष्ठी पर उपवास, सप्तमी व्रत, मन्दार की पूजा, मन्दार पुष्प को खाना, अष्टदलकमल बनाना, और सूर्य की विभिन्न नामों से पूजा, मन्दार स्वर्ग के पाँच वृक्षों में परिगणित हैं; विस्तार के लिए देखिए हेमाद्रि, चतुर्वर्ग-चिन्तामणि, व्रत, १.६५०-६५२, पद्म पु० ५.२१. २६२-३०६, कृत्यकल्प-तर०, व्रत २१६-२२१, मत्स्य पु०, ७६. १.१५.

३. मरिचसप्तमी व्रत में शुक्ल सप्तमी सात पर सूर्य पूजा, ब्राह्मण भोजन, 'ओं खखोलकाय' मन्त्र के साथ १०० मिचों खाने पड़ते हैं। हेमाद्रि व्रत, १.६६६,

इसी प्रकार नौमी<sup>१</sup> के पर्ती को भी एक करके बढ़ाना चाहिये ॥१०॥ इसी प्रकार फल नाम आली सप्तमी<sup>२</sup> में फल के ढारा ही विधान होता है और अनोदना-सप्तमी<sup>३</sup> के दिन भी इसी प्रकार ओदनरहित भोजन आना चाहिये ॥११॥ रात दिन केवल वायु का भक्षण करके विजयसप्तमी<sup>४</sup> का पाल

१. निम्बसप्तमीव्रत वैशाख शुक्ल सात से प्रारम्भ कर एक दिन तक किया जाता है। कमल के चित्र पर 'खोल्क' नामक सूर्य की स्थापना मूलमन्त्र है 'ओं खखोल्कायनमः', सूर्य-प्रतिमा के समक्ष १२ आदित्य, ज्यू, विजय, शेष, वासुकि, विनायक, महाश्वेता एवं सुवर्च्छा की स्थापना, सफरी की निम्बदलों का सेवन तथा सूर्य-प्रतिमा के समक्ष शब्द, कर्ता समस्त पाणी से मुक्त हो जाता है देखिये कृत्यकल्पतरु, व्रत, १६८-२०३, हेमाद्रि, चतुर्वर्ग, चिन्तामणि, व्रत, १.६६७-७०१. निर्णयमृत, ५२.

२. फलसप्तमी आद्रपद शुक्ल सात एवं मार्गशीर्ष शुक्ल सात पर होती है। इन दोनों तिथियों की फलसप्तमी के विस्तृत विवरण के लिये देखिये क्रमशः कृत्यकल्पतरु, व्रत, २०४-२०५, हेमाद्रि, व्रत, १.७०१-७०२, अविष्यपुराण १.२१५. २४-२७. तथा मत्स्य पु० ७६-१.१३, कृत्यकल्पतरु; २१३-२१४, हेमाद्रि, व्रत, १-७४३-७४४, पश्च प०, ५.२१.२४६-२६२.

३. अनोदनासप्तमीव्रत के विस्तार के लिये देखिये हेमाद्रि, चतुर्वर्ग, चिन्तामणि, व्रत, १.७०२-५; कृत्यकल्पतरु, व्रत, २०५-२०८, कृत्य-रत्नाकर, १२१-१२३.

४. ओदन में भक्ष्य, भोज्य एवं लेह्ण (चाटना) सम्बलित है किन्तु जल औदन नहीं है अस्तु जल ग्रहण किया सकता है।

५. रविवार से युक्त शुक्ल सात पर होती है विस्तार के लिए देखिये हेमाद्रि, व्रत, १, प० ७०७-७१६, गरुड पु०, १.१३००-७०८, ८

६. विस्तार के लिए देखिये कृत्यकल्पतरु, व्रत, १६१-१७२, हेमाद्रि, व्रत, १.७२८-७३१.

करता चाहिये ॥१२॥ इसी प्रकार कामिका (कामदा) सप्तमी<sup>१</sup> का पालन करके अलग अलग पत्तों पर इन सप्तमियों का नाम लिखकर ॥ १३ ॥ उन वडे में उन पत्तों को जल दे । उन पत्तों के रहस्य के विषय में जो बिलकुल न जानता हो ऐसे किसी वच्चे या मनुष्य से किसी एक पत्ते को निकलवाए और इसी रीति से प्रत्येक पक्ष में करे ॥१४॥ जब वे सातों पत्ते प्राप्त हो जाएं तो वही कामिका है । इस प्रकार ये सात-सप्तमियां स्वयं भगवान् सूर्य द्वारा बताई गई हैं ॥१५॥

हे साम्ब ! जो व्यक्ति ऐसा करता है वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है । मन्दार के पत्तों से वन मिलता है और मिठ्ठों से श्रिय व्यक्ति का संगम । नीम के पत्तों से रोग का नाश, फल से अभीष्ट पुत्र-लाभ, अनोदन से वनधार्य और विजय से विजय, कामिका से समस्त कामनाओं को प्राप्त करता है जो भी मनुष्य अथवा स्वी यह सप्तमी-ब्रत करे इसमें कोई संशय नहीं ॥१६॥ जो लोग निरन्तर इस सप्तमी-ब्रत का पालन करें उन्हें सूर्य-लोक प्राप्त होगा । उनके लिये त्रैलोक्य में कुछ भी हुल्लभ नहीं है ॥२०॥ जो ब्रती संयतेन्द्रिय सूर्य के भक्त है वे प्रभूत दक्षिणा वाले यज्ञों द्वारा प्राप्त होने वाले फल को प्राप्त करते हैं ॥२१॥ इस प्रकार के ब्रतों से मनुष्य अन्य तपस्याओं से न प्राप्त होने वाले फलों को ॥२२॥ सप्तमी-ब्रत का पालन करके प्राप्त करता है और निश्चित रूप से उसका निवास सूर्य-लोक में होता है ॥२३॥ ब्रह्मा, इन्द्र और रुद्र के लोक में उसकी अप्रतिहत गति होती है । वह व्यक्ति कभी भी अंघा, कोढ़ी, पुरुषार्थीहीन (नपुंसक), अंगहीन और तिर्थन नहीं होता ॥२४॥

जो व्यक्ति सप्तमी-ब्रत<sup>२</sup> का पालन करता है उसके वंश में उत्पन्न होने वाला प्रत्येक व्यक्ति पत्नी, हाथी, धोड़ा सवारी ऐसे विविध तत्वों को अवश्य

१. देखिये पृ० २०८, टिप्पणी ६.

२. सप्तमी-ब्रत की महिमा के लिए देखिये विष्णुधर्मोत्तर पृ० ३.

ही प्राप्त करता है ॥२५॥ हे साम्ब ! जो सप्तमी-व्रत करता है निश्चय ही विद्यार्थी विद्या प्राप्त करता है, धन का इच्छुक सम्पत्ति प्राप्त करता है और स्त्री-इच्छुक व्यक्ति रूपवती भार्या प्राप्त करता है और पुत्र-चाहने वाला व्यक्ति वेद-ज्ञान-सम्पन्न चिरंजीवी पुत्र-पुत्री को प्राप्त करता है ॥२६॥ हे साम्ब ! भोगार्थी व्यक्ति इस व्रत के करने से तरह तरह के वैभवों को प्राप्त करता है, जो व्यक्ति अज्ञान, प्रमाद, अथवा लोभ के कारण व्रत भंग करे ॥२८॥ वह या तो तीन रात तक भोजन न करे अथवा केश का मुँडन करे-इस प्रकार प्रावश्चित करके पुनः व्रत प्रारम्भ करे ॥२९॥ जब सात सप्तमियाँ समाप्त हो जायें तब व्यक्ति को सूर्य की अभ्यर्चना माला और वूप आदि से करता चाहिये ॥३०॥ ब्राह्मणों को भक्तिपूर्वक भोजन कराना चाहिये, ऐसा व्यक्ति अक्षय स्वर्ग प्राप्त करता है। सप्तमी के दिन पवित्र ब्राह्मणों को जो वस्तु दी जाती है ॥३१॥ वह वह पदार्थ अक्षय हो जाता है और सूर्य-लोक को चला जाता है ।

हे साम्ब ! इस प्रकार तुमको उत्तम सप्तमी-पर्व-विधि बताई । अब पुनः एकाग्र भन होकर सुनो—व्यक्ति शुक्ल पक्ष की बारह सप्तमियो<sup>१</sup> को गोमय का आहार करे ॥३३॥ अथवा चूर्णभूत पत्तों को खाए अथवा दूध पिये अथवा एकमात्र भिक्षा ग्रहण करे ॥३४॥ अथवा जल का आहार करे तथा विविध प्रकार के पुष्पोपहारों, भजोहर<sup>२</sup> नैवेद्यों ॥३५॥ नाना प्रकार की गंधों, वूप, गुणगुल और चन्दन, खिचड़ी और खीर आदि विविध

१ निवन्ध साहित्य में चैत्र शुक्ल सप्तमी से प्रारम्भ करके १२ मासों तक बारह शुक्लपक्षीय सप्तमियों के व्रत का उल्लेख किया गया है देखिये हेमाद्रि, व्रत, १.१.१७३, अहल्याकामधेनु, ८५१. विष्णुधर्मोत्तर पृ०, ३.१८२-१.३. इसे द्वादश सप्तमी-व्रत कहा गया जब कि माघ शुक्ल सप्तमी पर प्रारम्भ होनी वाली एक वर्ष तक की सप्तमियों के व्रत को द्वादशाह सप्तमी व्रत कहा गया है हेमाद्रि, व्रत, १.७२०-७२४

अन्नों तथा आभूषणों से दिवाकर की उपासना करे ॥३६॥ सोना इत्यादि दान देकर द्विजों की पूजा करे । ऐसा व्यक्ति मृत्योपरान्त जो फल प्राप्त करता है उसे सुनो ॥३७॥ वह व्यक्ति मन और पवन के बेग से चलने वाले, वैदूर्य (नीलम)<sup>१</sup> मणि के रत्नों से युक्त, किंकिणियों के समूह से युक्त स्वर्णमय विमान पर बैठकर ॥३८॥ तथा कुण्डल, अंगद आदि आभूषणों से भरा पूरा होकर तथा अप्सराओं द्वारा गाया जाता हुआ विचित्र मालाओं और अलकारों से युक्त होकर सूर्य-लोक को जाता है ॥३९॥ हे साम्ब ! पुण्य का अंत ही जाने पर पुनः किसी महान् वंश में उत्पन्न होता है इस प्रकार प्रत्येक मास एकाग्रचित् होकर सूर्य की पूजा करनी चाहिये और प्रयत्नपूर्वक प्रत्येक मास में उनके नामों का यथाक्रम पाठ करना चाहिये ।

मधुमास में विष्णु और वैशाख में अर्यमा ॥४१॥ ज्येष्ठ में विवस्वान, आषाढ़ में अंशुमान, सावन में पर्जन्य, भाद्रपद में वरुण, क्वार में इन्द्र ॥४२॥ कार्तिक में धाता, अगहन में मित्र, पूस में पूषा ॥ ४३ ॥ माघ में भग, फागुन में त्वष्टा इस प्रकार क्रमशः उन नामों द्वारा सूर्य की पूजा करनी चाहिये<sup>२</sup> ॥४४॥ ब्रत का उपदेश उस व्यक्ति को नहीं देना चाहिये जो अपना शिष्य न हो या सूर्य का भक्त न हो ॥ ४५ ॥ हे साम्ब ! जो पापकर्मी हो, उसे भी नहीं बताना चाहिये । जो व्यक्ति इस ब्रत का पाठ सदैव करता है वह इह लोक में सुख प्राप्त करके सूर्य-लोक में समृद्धि प्राप्त

१. वि० में वैदूर्य अशुद्ध है वैदूर्य हीना चाहिये ।

२. विष्णु पु० २.१० में इन १२ आदित्यों के नाम और उनसे सम्बन्धित मासों का उल्लेख किया गया है । द्रष्टव्य-सिद्धेश्वरी नारायण राय, पौराणिक धर्म एवं समाज, पृ० ४८ लुलना कौजिये साम्ब-पुराण, ६-३-४.

करता है ॥ ४६ ॥ इस प्रकार साम्ब-पुराण में सप्तमीकल्प नामक छियालिसवाँ अध्याय<sup>१</sup> समाप्त होता है ।

---

१. इस अध्याय को साम्ब-पुराण के मूल भाग का अंश माना गया है और इसका रचना-काल ५००-८०० ई० के मध्य माना गया है हाजरा, स्टडीज, १. पृ० ८३ पद्म १-३अ, ४ब-५अ, ६ब, २२ब-२३अ, २५ब-२६अ, २७ब-२८अ तथा ३८-३९ के अतिरिक्त यह पूरा अध्याय भविष्य पृ०, १. २०द, ६, ४-५, ७.१६ अ, १७-१८ अ, २१-२३ब, २४अ, २७अ-२८-३५ तथा ३१-२९ १-५अ, ६ब-१२अ १३ब-१४अ. और १५ब-१६अ में संग्रहीत है ।

## अध्याय ४७

नारद बोले—अब मैं जप-यज्ञ<sup>१</sup> का विधि-क्रम बताऊँगा । जिन जिन उपायों से उसे सम्पन्न करना चाहिये मैं उसे कहता हूँ ॥ १ ॥ जप-यज्ञ समस्त यज्ञों में सर्वोपरि है । विधिपूर्वक इसके करने से भगवान् भास्कर प्रसन्न होते हैं ॥ २ ॥ जो मनुष्य कोई अन्य कार्य करता है अथवा कुछ नहीं करता है इस जप-यज्ञ करने मात्र से वह श्रेष्ठ सिद्धि प्राप्त करता है ॥ ३ ॥ जो महान् पापों से युक्त हैं अथवा जो अन्य कार्य करने वाले हैं वे सबके सब सूर्य-जाप (खखोलक जप<sup>२</sup>) से उन समस्त पापों से मुक्त हो जाते हैं ॥ ४ ॥ जो लोग एकचित्त होकर इस जप-विधि का आचरण करते हुए सत्यास ग्रहण करते हैं उसे वैसा न करने पर दुष्ट चित्त वाले असुर हिसित करते हैं ॥ ५ ॥ मूँगा, सोना, मोती, मणि, रुद्राक्ष, पुष्कार (नीलकमल), कुश, अरिष्ट;<sup>३</sup> जीव-पुष्प और शंख से सूर्य का यज्ञ करना चाहिये ॥ ६ ॥ वह यज्ञ भी शब्द

१. यज्ञो के विभिन्न प्रकार बताये गये हैं जिसमें जप-यज्ञ भी एक है सर जान वुडराफ, इन्ट्रोडक्शन टू तत्त्वशास्त्र, पृ० ८९-१००.

२. जप के महत्व के लिये देखिये मनुस्मृति, २-८७, वशिष्ठ-धर्मसूत्र, २६-११, शंखस्मृति, १२-२८, विष्णुधर्मसूत्र, ५५-२१. वुडराफ इन्ट्रोडक्शन टू तत्त्वशास्त्र, पृ० १०२-१०३

३. सूर्योपासना का मूल मन्त्र है ।

४. रीठा अथवा नीमफल

काया, और मन की वृत्ति के अनुसार तीन प्रकार<sup>१</sup> का कहा गया है। उसके भी तीन प्रकार के फल हैं—सौ, हजार और दस हजार ॥७॥ मणि द्वारा प्राधा लाख, रुद्राक्ष द्वारा दस हजार, पुष्कर द्वारा आठ हजार और कुण से चार हजार ॥८॥

जप<sup>२</sup> करने पर अच्छा फल मिलता है। मूँगे से यज्ञ करने पर अनन्त फल होता है, सौने से यज्ञ करने पर करोड़ गुना और मोती से लाख गुना फल बताया गया है ॥९॥ बहेडे के बीज से जप करने पर हजार फल होता है और जीवक से जप करने पर पांच सौ और शंख से जप करने पर सौ का फल होता है ॥१०॥ जप करता हुआ व्यक्ति यदि थूके, बकवास करे या जम्हाई ले तो वह पृथ्वी पर बैठकर आचमन करे। पानी छुए अथवा गोबर छुए ॥ ११ ॥ यदि जप करते समय जप माला नीचे गिर जाये तो वृक्षस्थल से उसे ऊपर उठाना चाहिये ॥ १२ ॥ दाहिने अंगूठे को बीच में रखकर एक एक मनके को क्रमशः खिसकाकर जप प्रारम्भ करना चाहिये ॥ १३॥ माला में मनकों की संख्या एक सौ आठ, चौब्बन अथवा सताइस

१. तुलना कीजिये तन्त्रसार, उद्धरित इन्द्रोडक्षन टू तन्त्रशास्त्र, पृ० १०३, जिसके अनुसार जप वाचिक, उपांशु, तथा मानस इन तीन प्रकार का होता है। देखिये लघुहारीति; ४. पृ० १५६/ मनुस्मृति, २.८५ शंख-स्मृति, १२. २९.

२. विधान द्वारा मन्त्रोच्चारण ही जप है किन्तु मन्त्र का वास्तविक अर्थ जाने बिना उच्चारण व्यर्थ है देखिए षट्कर्मदीपिका उद्धरित इन्द्रो-डक्षन टू तन्त्रशास्त्र, पृ० १०२, टिप्पणी-२

३. शंखस्मृति; १२ के अनुसार अक्षमाला में स्वर्ण, मोती, रुद्राक्ष, पद्माक्ष, पुत्रजीवक, कुण आदि के मनके होने चाहिये तुलना कीजिये बृहतपराशर ५. पृ० ८५, लघुव्यास, (जीवानन्द, २, पृ० ३७५)।

होना चाहिये ॥ १४॥ जप करते समय संख्या की गाँठ का लंघन नहीं करना चाहिये ॥ १५॥ बिछौते पर बैठकर प्रसन्न भाव से जप करना चाहिये ।

अन्तरात्मा संयत हो और मुँह देवता की ओर हो । ग्रहण लगने पर अथवा बादल से बिजली के गिरने पर, दुःस्वपन में, समुद्र लंघते समय ॥ १७॥ उत्पात और अनिष्ट आने पर अथवा महापातक व्यक्ति द्वारा बोले जाने पर साधक मनुष्य को गायत्री मंत्र के द्वारा एक सौ आठ बार जप करना चाहिये ॥ १८॥ इस प्रकार मैंने पवित्र जप की विधि संक्षेप में बता दी, अब मुद्राओं का लक्षण सम्यक् रूप से बता रहा हूँ ॥ १९॥ इस प्रकार साम्ब-पुराण में जप-विधि नामक सैतालिसवाँ अध्याय<sup>१</sup> समाप्त होता है ।

३

१. अष्टोत्तरशतां कुर्यच्चितुः पञ्चशिका च तथा । सप्तविंशतिका कार्या ततो नैवाधमादिसां ॥<sup>२</sup> समृतिचंत्रन्दिका, १. पृ० १५३.

२. जप के विस्तृत विवरण के लिए देखिये समृतिचंत्रन्दिका, १. पृ० १५२-१५३, मदनपारिज्ञात, पृ० ८०, वीर० आह्लिक प्रकाश, ३२६-३२८.

३. यह अध्याय १२५०-१५०० ई० के मध्य प्रक्षिप्त किया गया देखिये हगलरा, स्टडीज, भाग १, पृ० ६३.

## अध्याय ४८

नारद बोले—अब मैं मुद्राओं<sup>१</sup> का लक्षण सम्यक पूर्वक बता रहा हूँ ॥१॥ सूर्य देव बोले—हाथ को शिखाओं पर रखकर मनुष्य को अरुण इत्यादि विजय एवं मूलमन्त्र सहित मुद्रा-बन्धों<sup>२</sup> को क्रमानुसार सम्पन्न करना चाहिये ॥२॥ तर्जनी अंगुलियों को थोड़ा थोड़ा मोड़ रखे और अंगूठे को सिर पर रखे ॥३॥ और कनिष्ठिका अंगुलियों को पृष्ठ लग्न करे तो यही विश्वात्मा (सूर्य) के रथ की मुद्रा बताई गई है ॥४॥ दोनों अंगूठों में मध्यमा और अनामिका को मिलाये और शेष को ऊँचा रखे तो यह उनके अङ्गों की मुद्रा कही गई है ॥५॥ दाहिने और बायें हाथ से सर्प के फड़ की तरह आकार बनाए तो वह चक्र की मुद्रा है ॥६॥ दोनों हाथों को पीठ से सटाये, कनिष्ठिका को गोदी से छुआए और अंगूठों को सीधा खड़ा रखे ॥७॥ यह अरुण की मुद्रा बताई गई है ॥८॥

४

१. मुद्रा तान्त्रिक पूजा का एक विशिष्ट विषय है। मुद्रा के अनेक वर्ण होते हैं जिनमें चार अर्थ तान्त्रिक प्रयोगों से सम्बन्धित हैं (१) आसन (२) अंगुलियों एवं हाथों का प्रतीकात्मक ढंग (३) पंच मंकार (४) वह नारी जिससे तान्त्रिक योगी अपने को सम्बन्धित करता है देखिये काणे, हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, (हिं०) ५, पृ० ६५-६६.

२. इस अध्याय में वर्णित मुद्रायें अंगुलियों एवं हाथों के संयोग से उत्पन्न प्रतीकात्मक ढंग से सम्बन्धित हैं। आसन के दृष्टिकोण से (तान्त्रिक टेक्निक, भाग १, ४६-४७) के अनुसार सूर्य की केवल एक मुद्रा है-पद्म।

अरुण, इन्द्र, रवि और त्वष्टा इनकी मुद्राएँ अलग अलग हैं ॥ ९ ॥ यह एक दूसरे से मिलती न हो, यम और सूर्य एक साथ संश्लिष्ट हो ॥ १० ॥ त्वष्टा और अरुण यम के मूल में लगे हो तथा उच्च गौर के विधाता से जुड़े हये बुद्धिमान सूर्य हो ॥ ११ ॥ इस मुद्रा को अमृता कहते हैं ॥ १२ ॥ जब अंगुलियाँ बाधी मुट्ठी में लगी हों और एक दूसरे के साथ तर्जनी में लगी हो ॥ १३ ॥ बरुण इत्यादि के प्रसंग में अंगुलियाँ एक दूसरे से संलग्न न हो ॥ १४ ॥ ऐसी स्थिति में नेत्राकृत मुद्रा कही जाती है ॥ उठे हुए बायें हाथ में नीचे मुख करके ॥ १५ ॥ जब अंगुलियाँ एक दूसरे की गोदी में संलग्न हो और शेष संकुचित हो ॥ १६ ॥

तो उसे मुद्रा-कवच<sup>१</sup> कहते हैं । रवि और चन्द्रमा के मूल से प्रारम्भ करके ऊपर की ओर जब ॥ १७ ॥ आगे को ओर झुकी हुयी समस्त अंगुलियाँ की छुए तो उसे वसु-मुद्रा कहा जाता है ॥ १८ ॥ नीचे झुके हुए बायें हाथ में दाहिने हाथ को ऊपर की ओर करके ॥ १९ ॥ अरुण, रवि, इन्द्र चन्द्रमा और त्वष्टा का स्मरण करे ॥ २० ॥ और अंगुलियाँ एक दूसरे के रूप से निकलती हुयी हो, दाहिने हाथ का अंगूठा उठा हुआ हो ॥ २१ ॥ तो उसे दण्ड मुद्रा कहते हैं ॥ २२ ॥ इसी का नाम खंग मुद्रा है ॥ अरुणास्त्र का स्पर्श न करके सूर्यस्त्र का जब संकुचन हो ॥ २३ ॥ और बायें हाथ के करतल पर रवि की कल्पना हो ॥ २४ ॥

बायें हाथ की कलाई पर स्पर्श हो तो उसे अंकुश मुद्रा कहते हैं ॥ २५ ॥ दाहिने हाथ की अंगुलियों के अग्रभाग थोड़े झुके हुए हो यम और बाता अंगुलियाँ जब पीठ से लगी हुयी हो और शेष उठी हुयी हो तो उसे घट्टिंश मुद्रा कहते हैं ॥ २७ ॥ जब यम सूर्य से और अंगुलियान स्वर्ण-

१, देखिये पोडूवल, आर० के० ऐडमिनिस्ट्रैटिव रिपार्ट आफ दी आरक्षालिकल डिवार्टमेन्ट, (११०६) पृ० ८ ने अनेक मुद्राओं का वर्णन किया है जिनमें कवच, नेत्र और चक्र का भी उल्लेख है ।

रेतस से मिल कर ऊपर उठी हुयी हो और पृष्ठ लग्न हों ॥ २८॥ तो उसे व्योमशिखा<sup>१</sup> मुद्रा कहते हैं। इस प्रकार मैंने मुद्राओं<sup>२</sup> का पवित्र लक्षण बताया जिसको सम्यक रूप से प्राप्त करने पर मनुष्य श्रेष्ठ सिद्धि को प्राप्त करता है<sup>३</sup> ॥ २९ ॥ इस प्रकार साम्बपुराण में मुद्रालक्षण नामक ४८वाँ अध्याय<sup>४</sup> समाप्त होता है ।

१. तुलना कीजिये व्योम-मुद्रा, हेमाद्रि, व्रत, १, पृ० २४६-४७.

२. मुद्राओं के विस्तृत विवरण एवं तुलना के लिए देखिये वौरमिक्षोदय पूजाप्रकाश, तथा आहिनकप्रकाश, स्मृतिचत्विंशिका, १. पृ० १४६-१४७, देवी भागवत, ११.१६.६८-१०२. आर्यमन्जुभीमूलकल्प, पृ० ३८०.

३. आर्यमन्जुभीमूलकल्प, पृ० ३७६. के अनुसार मुद्राओं एवं मन्त्रों के संयोग से सभी कर्मों में सफलता मिलेगी और तिथि, उपकरण आदि की अवश्यकता ही नहीं पड़ेगी क्योंकि मुद्रा देवों को आनन्द देती है शारदातिलक, २३.१०६.

४. तन्त्र से प्रभावित होने के कारण इस अध्याय का रचना काल १२५०-१५०० ई० के मध्य माना जाता है देखिये हाजरा, स्टडीज, भाग १. पृ० ६६ अष्ट पाठ एवं तन्त्र के टेक्निकल पक्ष से सम्बन्धित होने के कारण कही कही केवल भावाशँ ही दिखाया जा सका है ।

## अध्याय ४६

नारद बोले—अब शौच, स्थान, करन्यास<sup>१</sup>, इतिक सूर्यनुष्ठानात्मक योगज्ञान और विशेषकर उनके देवताओं के विषय में सुनी ॥१॥ जो व्यक्ति दीक्षित हो, सूर्य-भक्त हो, अद्वावान हो, बुद्धिमान हो, उसी को सर्वार्थसाधन रूपी इस शास्त्र को बताना चाहिये ॥ २ ॥ पवित्र स्थान में बैठकर पहले विधिपूर्वक आचमन करे । मौन होकर अवगृष्ठन<sup>२</sup> बनाकर सूर्य के सम्मुख मुँह करे ॥३॥ उत्तर की ओर मुँह करके सबसे पहले मिट्टी और जल से शौच करे, नीचे से गुदा तक शौच करे ॥ ४ ॥ हाथों के जल से पाद-प्रक्षालन करे और पहले मिट्टी लगाकर बाद में कोहनी से कलाई तक हाथ धोये ॥५॥ जनेझ धारण करके जल पीकर हृदय की दो बार और तत्पश्चात अन्य समस्त इन्द्रियों को स्पर्श करे ॥ ६ ॥ इसके पश्चात पुनः सूर्य की धूप का हृदय से तीन बार स्वाद लेकर जल पिये और सिर मुँह तथा शिख के ऊपर अन्य इन्द्रियों का स्पर्श करे ॥ ७ ॥ फैन और गूल्ल

१. न्यास की अनेक श्रेणियाँ हैं जिनमें करन्यास एक है देखिये शारदा-तिलक, ४.२६-४१, राष्ट्रभट्ट ने इनकी व्याख्या दी है । तुलना कीजिये देवीभागवत, ११.१६.७६-८१.

२. एक मुद्रा विशेष जिसमें अंगूलियाँ सीधे बन्द करके हाथ की नीचा करके प्रतिमा के चारों ओर घुमाया जाता है ।

से युक्त जल से बायें अंगूठे के ही सहारे पूर्व अथवा उत्तर दिशा की ओर मुँह करके खड़ा हो जाय ॥ इस प्रकार साम्ब-पुराण का ४६वाँ अध्याय<sup>१</sup> समाप्त होता है ।

१. यह अध्याय साम्ब-पुराण के उत्तर भाग का अंश है हाजरा, वही पृ० ६३.

## अध्याय ५०

नारद बोले—अब इसके उपरान्त शास्त्रों में निर्देशित पूजा-पिण्ड के तथ्य को बता रहा हूँ जो कि मन्त्र और मुद्रादि के योग से अभीष्ट फल प्रदान करने वाला है ॥१॥ मूलमन्त्र से उत्पन्न बीजों को अंगूठे के कम से विन्यस्त करके अंगों के मन्त्र से अंगों में आत्म-मुद्रा द्वारा कहे—॥२॥ ओम विश्वात्मा की नमस्कार है यह रथ का मन्त्र है। ओम हरि को नमस्कार है यह अश्वों का मन्त्र है। ओम सप्तों को नमस्कार है यह वासुकि का मन्त्र है। ओम कृत्तिवक विधाता को नमस्कार है यह पात्र<sup>३</sup> का मन्त्र है। ओम आदित्य को नमस्कार है। मिहिर<sup>४</sup> ! आओ ! आओ अपने वर्ग में बैठो, इसके पश्चात ठः ठः<sup>५</sup> का उच्चारण करना चाहिये। यह अंवाहन मन्त्र है। ओम खखोलक<sup>६</sup>

१. आर्यमञ्जुभीमूलकर्त्त्व, पृ० ३७६ के अनुसार मुद्राओं एवं मन्त्रों के संयोग से सभी कर्मों में सफलता मिलती है।

२. सूर्य के विभिन्न अवयवों एवं साधक के अंगों का तादात्म्य करके विभिन्न मुद्राओं जैसे रथ, अश्व, अरुणादि आदि का उल्लेख किया गया है।

३. मिहिर—मगों की सूर्योपासना के सूर्य देवता का नाम देखिये फेन्क क्युमान्ट, दी मिस्ट्रूंज आफ मिश्रा पृ० ३०

४. विष्टिनाशक वर्ण है।

५. वि० में खखोलकाय मुद्रित है जो अशुद्ध है।

के लिए ठः ठः के साथ नमस्कार है यह मूलमन्त्र<sup>१</sup> है। औम आकाशव्यापी सर्वलोक स्वामी बैठो, ठः ठः के साथ यह स्थापन-मन्त्र है। हृदय में ओम अर्क के लिये ठः ठः के साथ नमस्कार है। सिर में ओम प्रदीप्त के लिये ठः ठः के साथ नमस्कार है। शिखा में विष्टि के लिये ठः ठः के साथ नमस्कार है। नेत्र में ओम लोकचक्षु ठः ठः के साथ नमस्कार है। कवच में ओम प्रभाकर के लिये ठः ठः के साथ नमस्कार है। अस्त्र में ओम महातेजस के लिये हुं फट<sup>२</sup> के साथ नमस्कार है। संरोधन मन्त्र है ओम गणेश सहस्रकिरण सरोधत्म की ठः ठः के साथ नमस्कार है। सन्निधान मन्त्र है ओम आकाश में विकसित होने वाले जगच्चक्षु सानिध्य करो ठः ठः के साथ उच्चारण करे। पाद्य मन्त्र है ओम हूँरि टि चिरिटि दीप्तांशु को नमस्कार है। अर्धमन्त्र है ओ गमस्ति केलिकिलिकालिकालि सर्वार्थसाधन के किककि हं को नमस्कार है। हनान-मन्त्र है सर्वित्र और वरुण को नमस्कार है। वस्त्र-मन्त्र है। ओम षष्ठ नेत्र और सहस्रकिरण शरीर वाले को नमस्कार हैं। गन्ध-मन्त्र है ओम पिगल अच्छ-अच्छल को नमस्कार है। पुष्प मन्त्र है औं अहि अहि लिहि लिहि हिम मालाधर एवं तेजोधिपति को नमस्कार है, धपू-मन्त्र है ओम ज्वलितार्क को नमस्कार है। ओम मिहिर एवं चित्रधारी को नमस्कार है। ओम अंगों को नमस्कार है। महाश्वेता को नमस्कार हैं। दण्डपाणी को नमस्कार है। ओम अरुणादेवी को नमस्कार है। ओम पिगल को नमस्कार है। ओम अरुणादि को हुं के साथ नमस्कार है। ओम हरिकेशादि रश्मिपतियों को नमस्कार है। ओम पूजकस्थलि आदि अप्सराओं को नमस्कार है। दीप्तानन आदि किरणों को नमस्कार है। ओम क्षुपादि भूतमातृकाओं

१. यह मूलमन्त्र कृत्यकल्पतरु, ब्रत, पृ० ६; भविष्य पु०, ब्रह्मपर्व, २१५-४, मे भी आया है।

२. 'हुं फट' रहस्यात्मक वर्ण अस्त्र-मन्त्र के साथ विघ्नकारक शक्तियों को नष्ट करने के लिए प्रयुक्त होता है।

को नमस्कार है। ओम ग्रहों को हुँ के साथ नमस्कार है। ओम दिग्देवों को नमस्कार है। ओम तेजोधिपति को नमस्कार है यह दीप-मन्त्र<sup>१</sup> है। अर्क एवं गृहों के अमृत को नमस्कार है। यह अर्ध मन्त्र है। ओम सुषोलकाय को ठः ठः के साथ नमस्कार है। ओम अंशुमान, देव, यज्ञपति को ठः ठः के साथ नमस्कार है। नैवेद्य-मन्त्र है। ओम कुंदल एवं दिव्य आद्यप्रिय शक्ति को नमस्कार है। जपन्यास मन्त्र है। ओम दिव्य रूप वाले सर्वभूतात्मा, सर्वतेजोधिपति भानु लोकचक्षुष (सूर्य) को सर्वथिसाधिनी यज्ञ किया करे। ठः ठः के साथ संहार मन्त्र है ओम हे विरोचन ! संहार करो संहार करो ! सर्वलोक प्रिय शान्तात्मा सूर्य को प्रणाम है यह शुद्धि मन्त्र है सहस्र किरण वाले खखोलक सूर्य की शरण में हम जाते हैं वह रवि हमें सत्प्रेरणा दें। यह नमस्कार<sup>२</sup> का मन्त्र है। इसके बाद सूर्यहृदय मन्त्र द्वारा दान दे। बारह आदित्य रूपी शरीर वाले हे सूर्य ! आप अपने वर्ग के साथ जाये। विसर्जन मन्त्र है ओम हिलि हिलि<sup>३</sup> देव जाओ जिस प्रकार आप आये थे—स्वाहा। ओम ठः ठः के साथ चण्डिपिण्ड को प्रणाम है। यह विहार मन्त्र है। पदपिण्ड द्वारा श्रेष्ठ पूजा बताई गई है जो कि मुक्ति देने वाली है

१. यहाँ आवाहन, स्थापन, संरोधन, सन्निधान, अर्ध, स्नान, गत्थ, पुष्प धूप, दीप, नैवेद्य, पुनः अर्ध, जपन्यास संहार, शुद्धि, नमस्कार गायत्री, विसर्जन इन पूजा कृत्यों का उल्लेख किया गया है अन्य तात्त्विक ग्रन्थों में इन उपचारों का विस्तार से वर्णन है देखिये ज्ञानमाला, उद्धरित राघव भट्ट, निष्ठाध-तन्त्र, ५५. फेतकारिणी तन्त्र, ३. सनत्कुमार तन्त्र, शिवाचेणचन्द्रिका मन्त्ररत्नावली, स्वतन्त्रतन्त्रकालीतन्त्र, उद्धरित सर जान बुडराफ, प्रित्स-पिल्स आफ तन्त्र, पृ० ७८-७९५.

२. वैदिक गायत्री के अनुकरण पर सूर्य-गायत्री मन्त्र है।

३. हिलि युनानी सूर्य देवता हिलियास का रूप लगता है बराहमिहिर ने सूर्य के लिये हेलि शब्द प्रयुक्त किया है।

पवित्र है, सदा बल और आरोग्य प्रदान करने वाली है। दूसरी पिण्ड-पूजा का विधान है। पदपिण्ड के द्वारा मैंने संक्षेप में पूजा-विधि बताई। अब संक्षेप में मुझसे वर्णित किया जाता हुआ उस श्रेष्ठदेवता को मुझसे सुनो! ओम उस विश्वात्मा को प्रणाम है। ओम उस रथांगों को प्रणाम है। ओम खखोलक को नमस्कार है। यह मूल मंत्र है॥ ओम अर्क को प्रणाम है हृदय स्पर्श करे। ओम दीप्त को प्रणाम है शिरस्पर्श करे। ओम चिपिट को प्रणाम है। शीर्ष स्पर्श करे। जगच्छक्षु को प्रणाम है नेत्र की स्पर्श करे। ठः ठः के साथ अभाकर को प्रणाम है। यह कवच है। हुं फट के साथ महातेज को प्रणाम है। यह अस्त्र है। ओम के साथ देवांग, महाश्वेतादि, अरुणादि, हरिकेशादि, पूजक स्थली आदि सबको नमस्कार है। गरणविपत्तियों को प्रणाम, छायादि को प्रणाम ग्रहों को प्रणाम, दिशदेवताओं को प्रणाम, इस प्रकार सूर्य-हृदय<sup>१</sup> से समस्त आवाहनादि कार्य होना चाहिये॥ इन तथा अन्य मन्त्रों से विधि है। इस प्रकार साम्ब पुराण में पूजा-विधान नामक ५०वाँ अध्याय<sup>२</sup> समाप्त होता है।

---

१. इस अध्याय में प्रयुक्त सूर्य के विभिन्न नामों की व्याख्या के लिये देखे श्रीवास्तव, सन वरशिप इन ऐन्शियट इण्डिया; टेकननिकल शब्दों के अर्थ के लिए देखिये बुडराफ; प्रिन्सिपिल्स आफ तन्त्र.

२. यह अध्याय ४८, ४९ अध्यायों से विषय वस्तु द्वारा सम्बन्धित है अस्तु यह भी उत्तरकालीन है देखिये हाजरा, वहौ-

## अध्याय ५७

ओम त्रिंश्चन्द्रमा को प्रणाम है, ओम हुं मंगल को प्रणान है। ओम हुं बुद्ध को प्रणाम है। ओम हुं बृहस्पति को प्रणाम है, ओम हुं शुक को प्रणाम है। ओम हुं शनि को प्रणाम है—यह ग्रहों<sup>१</sup> के मंत्र है। ओम सुराधिपति इन्द्र को नमस्कार है, ओम तेजोधिपति अंशिन को प्रणाम है। ओम प्रेताधिपति यम को प्रणाम है। ओम रक्षाधिपति को प्रणाम है। ओम जनाधिपति ब्रह्म की प्रणाम है। ओम प्राणाधिपति वायु को प्रणाम है, ओम यज्ञाधिपति कुबेर को प्रणाम है, ओम सर्वलोकाधिपति ब्रह्मन को प्रणाम है, ओम सर्वलाङ्गाधिपति शेष को प्रणाम है। यह दिव्यदेवताओं<sup>२</sup> के मन्त्र हैं। अब इसके उपरान्त में स्नान<sup>३</sup> की उत्तम विधि

१. तत्त्विक ग्रन्थों में विधान है कि सर्वप्रथम विघ्न हालने वाले देवताओं, भूत-प्रेतों वादि को सन्तुष्ट करना चाहिये अस्तु ग्रहों एवं दिव्यदेवताओं की शारमभूमि पूजा की गई है। देखिये बुडराफ, प्रिंसिपिल्स आफ तत्त्व, पृ० ६८५, श्रहों की पूजा के विषय में देखें बनर्जी, जे० एन०, डैडलपमेन्ट आफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, पृ० ४४३-४४४.

२. दिक्षालों की संख्या एवं नाम विभिन्न ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न है देखिये बनर्जी, बही, पृ० ३१६-४२३.

३. निबन्धतत्त्व, ज्ञानमाला, फेतकारिणीतत्त्व, उड्डरित बुडराफ, प्रिंसिपिल्स आफ तत्त्व, पृ० ७८२-८४ तथा अन्य ग्रन्थों में वर्णित पूजा-उपचारों में स्नान आता है।

## साम्ब-पुराण

बनाऊँगा। हृदयादि मन्त्रों के द्वारा निर्जल जल में सुन्दर तीर्थ में स्तान करे ॥१॥ भन ने ही सिर से अंगों में मिट्ठी लगाकर पवित्र तीर्थों का ध्यान करके भिर से जल में डुबकी लगाए ॥२॥ घरमहिने त्रिमूर्ति के द्वारा ब्राह्मण को मन्त्र युक्त करे। तदन्तर पूरक आदि प्राणायाम<sup>१</sup> द्वारा सात बार खखोलक मन्त्र द्वारा सूर्य को देखे ॥३॥ त्वचा और अंगुठे इत्यादि के क्रम से मन्त्र संयोग विनयमन करे तब अपने हाथ के दोनों तर्हों की संख्या द्वारा अरुणादि को ॥४॥ तदन्तर अमृत नाम बाली मुद्रा का ध्यान करे। पूरकाङ्गुल वायु द्वारा जठरामि को जलाना चाहिये ॥५॥ कुम्भक प्राणायाम द्वारा वायु को रोक कर तीनों पापो—(रायिक, वाचिक एवं मान्त्रिक) को नष्ट करे। रेचक प्राणायाम द्वारा वायु को निकाल कर हृदय की शुद्धि करे ॥६॥ पुनः पूरक प्राणायाम द्वारा वायु को खीचकर तेजपिण्ड सूर्य को पिये और उस तेज को खखोलक मन्त्रों से अपने शरीर में प्रविष्ट करे ॥७॥ हृदय, मस्तक, मूल भाग, नेत्र, हाथ और हृदय आदि अंगों को तत्त्वदोगपूर्वक विनयस्य करे ॥८॥

तदन्तर शुद्ध स्वर्ण के समान प्रभावाले बारह दल वाले कमल पर आसीन सूर्य देवता का आत्मा में ध्यान करना चाहिये<sup>२</sup> ॥९॥ इस प्रकार करके मन्त्र मुद्रा के योग से परम भक्ति के साथ पूजा सम्पन्न करे ॥१०॥ जैसे काठ के द्वारा काठ का मंथन करके अग्नि उत्पन्न कर ली जाती है ॥११॥ उसी प्रकार मत्र इत्यादि के बल से निष्कल से सकल सूर्य का अथवाहन करके सम्यक रूप

१. पूरक, रेचक एवं कुम्भक के अर्थ के लिये देखिये बुड़राफ, इन्ट्रो-ड्रवशन टू तन्त्रशास्त्र, पृ० १३६.

२. तान्त्रिक पूजा में उपासक और उपास्य का तोदात्म्य स्थापित करने का विधान है देखिए गन्धर्वतन्त्र, ११ (ध्यान) देखिए दी सरपेन्ट पावर

३. तान्त्रिक अद्वैत में विश्वास करता है अस्तु देवी अथवा देवता निष्कल है किन्तु प्रारामिभक अवस्था में तान्त्रिक उसकी पूजा सकल रूप में करता है। तान्त्रिक परम्परा में निष्कल-सकल के विवाद के लिए देखिए प्रिन्सिपिलस आफ तन्त्र, पृ० ६४५-६५०.

से योगादि से प्रसन्न मन से पूजा करनी चाहिये ॥१२॥ सूर्य-मन्दिर में, नदी के तट पर, गोशालाओं में, उपवनों में, प्रकृतिलत कमल-वनों में, नदियों और तालावों में ॥१३॥ नदियों के संगम में, तीर्थों में, पर्वतों में, बनों में, धर्मपीठों में, समान देशों में, कुश, पुष्प और फल से सयुक्त स्थान में ॥१४॥ जो प्रदेश बजर न हो और पानी से भरे पूरे हो अथवा जहाँ भी मन चाहे पूजा करनी चाहिये ॥१५॥ भूमि, सूर्य, अग्नि, जल, प्रतिमा, महायज्ञ, स्वर्ण अथवा ताम्रपात्र में पूजा करनी चाहिये ॥१६॥

मन्त्र-विद्वान् के बिना मनुष्यों की पूजा व्यर्थ होती है। वह पूजा नमस्कार युक्त होने पर सौ गुना अधिक फलवती होती है ॥ १७ ॥ विद्विषत्र चाहे छोटा हो, मध्यम अथवा उत्तम हों परन्तु क्रमशः सहस्र, लक्ष और कोटि मात्रा में फल प्रदान करता है ॥१८॥ प्रत्येक पूजा-विधि मन्त्र-जाप के द्वारा उत्तम होती है ॥ पादपिण्ड द्वारा मध्यम और पिण्डै द्वारा ही कनीपन कही जाती है ॥ १९ ॥ व्योमाकृत, व्योमशिखा इन मुद्राओं का उपयोग आवाहन विसर्जन एवं खखोलक के शोषण में तृप्तिरक्षा द्वारा करे ॥ २० ॥ रथ, रथादि और दिवपालों की पूजा में मुद्रा सहित पूजा उत्तम है, जपविधि मध्यम है और शालपद्म अपेक्षाकृत कम है ॥ २१ ॥ पहले आवाहन<sup>२</sup>, तब स्थापन,

१. नित्यात्मन के अनुसार एकाक्षर मन्त्र को पिण्ड कहते हैं—बुडराफ, इन्द्रोडक्षन टू तन्त्रशास्त्र, पृ० ८६.

२. तात्त्विक पूजा के उपचारों-आवाहन, स्थापन, रोध, सान्निध्य, पाद-प्रक्षालन, अर्च, स्नान, वस्त्र, लेपन, पुष्प, धूप, विभूषण, दीप, बलि, अर्घ्य, जप, न्यास, स्नवन, यज्ञ, संहार, शुद्धि, पात्र, विहार विसर्जन आदि का उल्लेख यहाँ किया गया है विस्तृत विवरण एवं तुलना के लिए देखिए ज्ञान-माला, निबन्धतन्त्र, फेतकारिणी शिवार्द्दणचन्द्रिका, मन्त्ररत्नावली, स्वतंत्रतन्त्र उद्धरित, प्रित्तिपित्त आफ तन्त्र, पृ० ७८२-७८४.

रोध, फिर पाद-प्रक्षालन, तदन्तर क्रमशः अर्ध्य, स्नान, वस्त्र, लेपन, पुष्प ॥२२॥ घूप, विभूषण और अन्य विधियों के द्वारा अंगों को तथा अन्यान्य देवों का पूजन यथाक्रम करना चाहिये ॥२३॥ हीष, बलि, अर्ध्य, जप, न्यास स्तवन, यज्ञ, संहार, शुद्धि, पात, विहार ॥२४॥

विसर्जन, निर्वार-इन सबको पृथक पृथक ग्रथोचित्त अपने अपने मंत्रों द्वारा भक्तिपूर्वक करना चाहिये ॥२५॥ कलाहीन सूर्य को कलायुक्त बनाकर मंत्र से आवाहन करें जिस देव के आगमन का उदाहरण दिया गया है उसे बुलाना चाहिये ॥२६॥ कमल में उनका उभेशन ही स्थापन कहा गया है । दूसरे स्थान पर उसके गमन में विधात होना ही रीष कहा गया है ॥२७॥ जहाँ एकाग्रमन से छैठाया जाये उसे सानिध्य कहते हैं । पैर बोने के लिये जो जल है वही सूर्य देवता का पात्र है ॥२८॥ सौने-ताँबि के पात्र में चन्दन और जल रखकर तथा हाथ में पानी और फल लेकर ॥२९॥ बूटों के बल बैठकर सूर्य को अर्द्यदान दे और तब चन्दन की राशि और रीति द्वारा अबलेपन करें ॥३०॥ लाल कमल के न मुझमि हुए तथा सुगन्धपूर्ण फूलों और कलियों, गन्ध-धूपादि से पूजा करें ॥३१॥ कर्णूर, गुम्बुल, खस, अग्नु, चन्दन और तुरुकङ्क<sup>१</sup> के चूरों से सुगन्धित धूप दिखाना चाहिये ॥३२॥

अनेक प्रकार के रत्नों और शातकूम्भे आभूपरणों द्वारा मन ही मन खखोलक सूर्य देवता को भूषित करे ॥ ३३ ॥ शरीर के अवयवों इत्यादि और सभी देवताओं की यथाविधि पूजा पुष्पयुक्त चन्दन एवं जल से करनी चाहिये ॥३४॥ प्रभूत मात्रा में साठ दीपक सूर्य को समर्पित करना चाहिये और इत्यादि से धोष करना चाहिये ॥ ३५ ॥ वंशी और बोगा के स्वर

१. अर्थ स्पष्ट नहीं है ।

२. स्वर्ण-शिशु०, ६०८, तैश्वधु, १६, ३४.

से पवित्र निहिर की श्रद्धा एवं मन<sup>१</sup> से निदिष्ट विधान के द्वारा उपासना करे ॥ ३६ ॥ यत्नपूर्वक खखोलक मूल-मंत्र का जप करना चाहिये । पाद्यादि हृदय एवं रथों के अंगों का न्याय, गृण और शरीर का सम्यक वर्णन ही समस्त पूजाओं को और जप की तीन बार करना चाहिये ॥ ३७ ॥ खखोलक स्तब कहा जाता है ॥ ३८ ॥ मन और मुद्रा के भी विशेष योग से, राज्यादि पवित्र द्रव्यों से देवयज्ञ, वषट्२ और सत्राहन<sup>३</sup> के साथ करना चाहिये ॥ ३९ ॥ यह समस्त अग्निनक्षियाँ अग्नि में बताई गयी हैं । पूजाविधान सहित इन सब क्रियाओं को करने के बाद ॥ ४० ॥

जहाँ संहति की जाती है उसे संहर कहते हैं । पूजाविधि से इन सङ्ग में यदि द्रव्य-मुद्रा हानि हो ॥ ४१ ॥ यदि कोई शरीर से उत्पन्न होने वालेदोष हो तो विशुद्धि से उसका समुत्थन सिर, मन, बाणी, दृष्टि और शुद्धि बुद्धि से करना चाहिये ॥ ४२ ॥ घुटनों से और हाथों से सात प्रकार का प्रणाम करना चाहिये ॥ ४३ ॥ अपनी शक्ति के अनुसार गृणवान् विप्र को दान देना की प्राप्ति होती है । और हौम का भस्म लेकर भी पुण्य होता है ॥ ४५ ॥ इस हौम भस्म को उत्तर दिशा में राह देना ही निर्हरि बताया गया है । जो पूजा आगम से होती है उसे आनन्द कहा गया है ॥ ४६ ॥ इन सबको पुण्य सहित चत्तन आदि से मन्त्र, मुद्रा, ध्यान, योग आदि द्वारा एकाग्रचित्त

३. कौलावलीतन्त्र में कहा गया है कि न्यासादि व्यर्थ है यदि भगव का अभाव है, उद्दरित प्रिस्पिलस आफ तन्त्र पृ० ७३२-३३.

२. देवता की आहुति देते समय उच्चारण किया जाने वाला शब्द

३. देवताओं के उद्देश्य से आहुति देते समय उच्चारण किये जाने वाला शब्द

से प्रातःकाल से प्रारम्भ करके विना न्के हुए दोपहर तक मापरायण होकर सम्पूर्ण पूजा सम्पन्न करनी चाहिये<sup>१</sup> ॥४८॥

शान्ति के निमित्त की गई शान्ति और पुष्टि को मैंने शान्तवान कहा है और दूसरे ज्योतिरत्न तथा अग्नि को ज्योतिष्ठान कहा गया है ॥४९॥ शुक्र, हरित, अत्यग्नि, सूर्यि, त्रिनाभि, अरुणि और ऋग्विद्याना—ये अज्य बताए गये हैं ॥५०॥ अंत में ओंकार सहित नमस्कार करना चाहिये । हृदय और रथ आदि के क्रम से ॥५१॥ पहले आदित्य का आवाहन और पुनः मिहिर का आवाहन अपने वर्ग से हु और बाद में नमस्कार मन्त्र स्वाहा की कल्पना की गई है ॥५२॥ यह ओंमकारादि से संयुक्त आकाश-मन्त्र है । खखोलक के लिए हविदान यह मूल-मन्त्र है ॥५३॥ स्थापना में इस प्रकार कहना चाहिये-प्रणव से उत्पन्न होने वाला दिव्य व्योम व्यापी सर्वत्रोहविगति ऐसे हे सूर्य ! बैठो बैठो ॥५४॥ जो अर्क है, प्रदीपि है, चिपि है, जगच्चक्षु है, प्रभाकर है उसी महातेजस्वी का यह मन्त्र खखोलकादि है ॥५५॥ यह स्वाहा में अन्त होने वाला प्रणवादिक तत्त्व है ॥ द्वंरार के मात्र कवच<sup>२</sup> का पाठ करना चाहिये और हुं कंठ इस अस्त्र-मन्त्र को जपना चाहिये ॥५६॥

जो गायत्राविपत्ति है, सहस्रकिरण है और संगोधात्मा है इस प्रकार ओं प्रारम्भ में और स्वाहा अन्त में कहकर संरोक्ष करना चाहिये ॥५७॥ ओं आकाश को प्रकाशित करने वाले जगच्चक्षु हे सूर्य देव ! आप मेरे पास आयें-इस प्रकार स्वाहा में अन्त होने वाला सानिद्य-मन्त्र है ॥५८॥

१. यहाँ तान्त्रिक परम्परा की पूजा निर्दिष्ट हैं तुलना एवं विस्तार के लिये देखिये सर जान वुडराफ, प्रिन्सिपल्स आफ तन्त्र

२. रहस्यपूर्ण अक्षर (हुं हुं) जो कि रक्षाकवच की भाँति प्ररक्षक समझे जाते हैं ।

हांचिरींटिचिरींटिर-यह दीप्त-मन्त्र कहा गया है। इसी प्रकार नमः शब्द से अन्त में जुड़ा हुआ यह प्रगावादिक पात्ता-मन्त्र पढ़ना चाहिये ॥५६॥ किलि कालि काली तथा किरणों से युक्त उस सूर्य देवता को नमन इस प्रकार हृकार सहित सर्वायसाधक मन्त्र को दो बार कहे ॥६०॥ अन्त में नमस्कार करके अर्ध-मन्त्र का निर्देश करे और इस मन्त्र का स्थापन में पाठ करे। सविता और वरुण की प्रणाम है ॥६१॥ अन्त में नमस्कार की परिकल्पना करके सहस्रनेत्र सूर्य को प्रणाम करें—इसे वस्त्र-गत्त्व-मन्त्र समझना चाहिये ॥६२॥ हिलि और महामालाधरा को प्रणामादि करके अन्त में नमस्कार की परिकल्पना करके सहस्रनेत्र सूर्य का पुष्पमन्त्र इस प्रकार बताया गया है ॥६३॥ ज्वलितार्क, मिहिरज्वल, विचिन्न रत्नधारी सूर्य को नमस्कार है यह भूषण मन्त्र ॥६४॥

महाइवेता<sup>१</sup>, दण्डयाणि<sup>२</sup>, अरुणि<sup>३</sup>, पिंगल<sup>४</sup>, इन सब के प्रारम्भ में ओम अन्त में नमः संयुक्त होने चाहिये ॥६५॥ अरुण, सूर्य, अंशुमाली, धाता, इन्द्र, रवि, गमस्ति, यन, स्वर्णरेता ॥६६॥ त्वष्टा, मित्र और विष्णु ये बारह

१. सरस्वती का विशेषण अथवा पृथ्वीदेवी सूर्य की सेविका देखिए सत् वरशिप इन ऐन्सियन्ट इण्डिया, पृ० ३११-३१२.

२. दण्डनायक (यम) सूर्य का द्वाररक्षक

३. सूर्य का सारथि-मूर्तज्ञा, “आविष्कृतारुण पुरः सरः एकतोऽकेः”  
शकु० ४.१.

४. सूर्य का अनुचर (अग्नि)-प्राणियों के शुभ-अशुभ कर्मों का लेखक

आदित्य<sup>१</sup> हैं जो कि क्रमशः माघ इत्यादि महीनों में तपते हैं ॥ ६७ ॥ इन सब नामों की प्रारम्भ में ओम और अन्त में हुंकार सहित नमस्कार करना चाहिये ॥ ६८ ॥ हरिकेश, रथौजा, वृजिकस्थल, कलुस्थल, विश्वकर्मा, और रथस्वन् ॥ ६९ ॥ रथचित्र, मेना, सहजन्या, विश्वव्यव्याचा, माठर, सहित रथप्रोत् ॥ ७० ॥ प्रमलोचन्ती, अनुम्लोचन्ती, ताष्य, अग्निष्टनेत्रि, विश्वाचौधृताचौको ॥ ७१ ॥ अवर्णवसु, सेनजित, सुषेण, उर्वशी, पूर्वचित्ति-इन सबको मन्त्रविधान सहित संयुक्त करना चाहिये ॥ ७२ ॥

दीप्तानन, कुमार, धृग्नि, योगवह, शिराद्, केणी, माठर, अनन्त, निक्षुभा, तेजोवाह-ये बारह अकंगणाधिप बताए गये हैं। इनकी पूजा प्रणव आदि में और अस्ति में नमः कहकर इनके नाम सहित करनी चाहिये ॥ ७४ ॥ क्षुभा, मैत्री, प्रभा, श्यामा, रोचि, दीप्ति, सुवर्चला<sup>२</sup>, इन सात मातृओं को अन्त में नमः कहकर संयुक्त करना चाहिये ॥ ७५ ॥ वक्र, शुक्र, गुरु, मंगल, शनि केनु, और बुध आदि इन नव ग्रहों को हुंकार और प्रणव सहित संयुक्त करें ॥ ७६ ॥

१. बारह आदित्यों के नाम पुराणों में भिन्न भिन्न मिलते हैं। प्रारम्भिक पुराणों और साम्ब-पुराण के प्रारम्भिक भाग (१-३, ४) में निर्विट और इस उत्तरकालीन भाग में वर्णिते १२ आदित्यों की सूची पर दृष्टिपात करने से शात होता है कि इसमें नवीन नाम—अरुण, रवि, ग्रन्थित, स्वर्गरेतस, सूर्य—आ गये हैं जब कि भग, पूषन, वरुण, विवस्वत, पर्जन्य लुप्त हो गये हैं। प्रारम्भिक पुराणों में आदित्यों के सूची के तुलनात्मक अव्यादन के लिये देखिये 'सौराणिक धैर्य दृढ़ समाजः' पृ० ४८।

२. द्रष्टव्य है कि यहाँ सात मातृकाओं के नाम सूर्य की शक्तियों के रूप में दिये गये हैं जो सौर-पुराण के लिये स्वाभाविक है जब कि अन्य ग्रन्थों में शिव और विष्णु की शक्तियों के नाम के रूप में सप्तमातृकाओं का उल्लेख किया गया है देखिए उत्पल; (बृहतसहिता, ५७-५६,) मार्कोण्डेय पुराण, ४४-१२ बनजी, डेवलपमेन्ट आफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, पृ० ५०३-८,

इन्द्र, अग्नि, यम, निकृति, वस्तु, कुबेर, शंकर, ब्रह्मा और गेष-ये दिव्याल हैं ॥७४॥ इन सबको नमस्कार सहित संयुक्त करना चाहिये इसके अनन्तर नमस्कार करना चाहिये ॥७५॥ तारादि तेजों के स्वामी जो आप द्वारा नमस्कृत है, और अमर अर्क को निवेदन के समय ॥७६॥ जलकुन्तिल, दिव्य, आद्य प्रिय को जो प्रारम्भ में ओम और बाद में नमो का उच्चारण करता इसे वह मंत्र पढ़ता है ॥७७॥

अंशुमान और देव-इन दो शब्दों का नायन करना चाहिये । ओम, स्वाहा इस प्रकार आदि और अन्त में संयुक्त न्यासमन्त्र का उदाहरण है ॥८१॥ सर्वप्रथम 'नमस्ते' इस प्रकार कहकर प्रारम्भ करना चाहिये । दिव्यरूप वाले सर्वभूतात्मा और सर्वतेजस्वी सूर्य देवता को प्रणाम है ॥८२॥ अविपति, भानु, लोकचक्षू सूर्य को नमस्कार एवं ओंकार सहित कहना चाहिये यह स्तोत्र-मन्त्र है ॥८३॥ नमस्कार में अन्त होने वाली पूजा का उच्चारण दिया गया । होम में स्वाहा और वषट् शब्दों के उच्चारण से तर्पण करना चाहिये ॥८४॥ प्रारम्भ में ऊँचे स्वर से समायुक्त दो पद का उच्चारण करके विरोचन इत्यादि स्वाहा में अन्त होने वाले मन्त्र के संहार में कहना चाहिये ॥८५॥ प्रारम्भ में सर्वलोक विजयी शान्तात्मा सूर्य को प्रणाम करना चाहिये । स्वाहा में अन्त होने वाले शुद्धि-मन्त्र<sup>१</sup> को कहना चाहिये ॥८६॥ पहले खखोलक इत्यादि मन्त्र द्वारा तदुपरान्त विघ्न, सहस्रकिरण और धीमही आदि मंत्रों द्वारा स्तवन करें ॥८७॥ सूर्य हमें प्रेरणा दें इस प्रकार ओंकार से युक्त स्वाहा में अन्त होने वाली नमस्कार-विधि कही गई है ॥८८॥

'स्वर्गेण', 'द्विर्गच्छ' इसके द्वारा और 'द्वादशादित्य' इन मन्त्रों द्वारा ओंकार सहित सूर्य की पूजा करें ॥८९॥ गच्छदेव इत्यादि मन्त्र द्वारा एव प्रणावादि मन्त्र द्वारा अन्त में विसर्जन करें ॥९०॥ प्रारम्भ में ओंकार

१. ग्रहों की इस सूची में सूर्य और चन्द्र का उल्लेख नहीं दिया गया है उग्रहों की पूजा के लिए देखिये बनर्जी, वही, पृ० ४६३-६६२.

सहित चण्डपिण्डल इत्यादि स्वाहा में अन्त होने वाले मन्त्र द्वारा निमिलिय हरण करें ॥६१॥ प्रारम्भ में कही गई देवीभुवोभाग की शुक्ल मिट्टी में चतुष्कोण बनाकर ॥६२॥ गीबर से उस मिट्टी एवं भूमि को लीपकर चन्दन और अग्रह के पंक से पूजा-पण्डल<sup>१</sup> बनाये ॥ ६३ ॥ आगे कहे जाने वाले विद्यान के द्वारा सत्तातन रथ का चित्र बनाये । पूजा-विद्यान में वहाँ देव रत्न को स्थित करना चाहिये ॥ ६४ ॥ सात सात अश्वों से युक्त एक चक्रके वाले सूर्य के रथ<sup>२</sup> को अरुण से युक्त बनाये ॥६५॥ रथ के मध्य में बारह दलों वाला कमल बनाये और बीच में वक्षि, शंख और शिखा के समान उज्ज्वल कण्ठिका की कल्पना करें ॥६६॥

आवाहन मन्त्र से तथा व्योम-मुद्रा से एकत्र किन्तु पृथक रशिमस्तमूह बनाये ॥६७॥ उस सूर्य के समान तेज को मूल-मन्त्र के द्वारा पिण्डीकृत्य करके तदनन्तर उसे स्थापन मन्त्र द्वारा आकाश में स्थापन करें ॥६८॥ उस कमलदल में विद्यमान षड्बीज और प्रणव से अन्वित सूर्य देवता की पूजा करें जैसे हृदय आदि ६ अङ्गों द्वारा योग समन्वित होता है ॥ ६९ ॥ काठ से पैर तक ढके हुए हाथ में कमल लिए हुए महाप्रभाव वाले बारह आदित्यों वाले उस सूर्य देवता का चिन्तन करें ॥१००॥ सिर, हृदय, शिखा और कवच-इन अङ्गों को क्रमशः व्योम मूर्धनि में पूजे ॥१०१॥ कमल के पत्ते के अगले भाग में ज्वलद, महाश्वेता, दण्डपाणि, अहिण, पिंगल ॥ १०२ ॥ आदि को केसर के मूल में रखकर कमल के पत्र में केसराय में पहले की

१. कमल रूपी मण्डल द्वारा सूर्य की पूजा के लिए देखिये वुडराक, दी सरपेन्ट पावर.

२. सूर्य के रथ की पूजा वैदिक एवं पौराणिक है देखिये पौराणिक धर्म एवं समाज, पृ० ५४ परन्तु तात्त्विक दरम्परा में मण्डल द्वारा इसकी पूजा एक विशिष्ट देन है ।

हो भाँति समर्चना करके ॥ १०३ ॥ उस स्थान पर चित्रित तेजीरूप सूर्य का चित्तन करें और बारह आदित्यों तथा ऋद्रादिकों को कमानुसार विन्यस्थ करें ॥ १०४ ॥

हरिकेश, रथ, रथोजप-इन सबको दाहिने और दाँये भाग में युक्त करना चाहिये ॥ १०५ ॥ इन सबके द्वारा विश्वकर्मा के अगल बगल मेना और सहजन्या से मुक्त रथचित्र का निर्माण करना चाहिये ॥ १०६ ॥ पश्चिम में अग्नि के समीप विश्वव्यक्ता होना चाहिए, अगल बगल माठर का निर्माण होना चाहिये ॥ १०७ ॥ प्रम्लोचा और अमला तार्ष्य और अरिष्टनेमि ये देवाधिदेव सूर्य के समीप होनी चाहिये ॥ १०८ ॥ विष्वाची और धृताची से दाया वाया भाग युक्त होना चाहिए। अवर्तिसु<sup>१</sup>, सेनजित सुपे<sup>२</sup> को ऊर्ध्व में होना चाहिये; प्रारम्भ में कहे गर्य दीप्ताननादि व रह अर्कगणाविर है ॥ १०९ ॥ और उन दोनों के साथ उर्जी<sup>३</sup> तथा पूर्वचित्ति कमानुसार होना चाहिये ॥ ११० ॥ उन्हें तथा प्रारम्भ करके उस कमल दल को प्रत्येक संवि में विन्यस्थ करना चाहिये ॥ १११ ॥ तदन्तर दिशाओं में चन्द्रादिक दिकदेवताओं को इन्द्रादिक के कम से विन्यस्थ करे। वासव आदि को भी विन्यस्थ करे ॥ ११२ ॥

इस प्रकार देवों की स्थापना करके पूजन प्रारम्भ करे। अब मैं यथावत् रूप से जैने पहले बताया है वैष्ण मन्त्रों को बना रहा हूँ ॥ ११३ ॥ ओम विश्वात्मा को प्रणाम, हृदय, ओम शुक्लज्योतिष को प्रणाम, ओम चित्र-ज्योति को प्रणाम<sup>४</sup> ओम सत्य ज्योति को प्रणाम, ओम उर्ध्वोत्तिष्मान अग्नि को प्रणाम, ओम शुक्ल को प्रणाम, ओम हरित को प्रणाम, ओम अत्यग्नि को प्रणाम। इस

१. महाभारत, ३.१३८. के अनुसार अबोवमु रेख्य मुनि के पुत्र थे, वे सूर्य-भक्त थे।

२. इन्द्रलोक को एक प्रसिद्ध अप्सरा, पुरुरवा की पत्नी

नाम के मन्त्र है। हरिकेश, रक्षकृच्छ, रथीजस, पुजिकस्थला, क्रतुस्थला, विश्वकर्मा, रथस्वन, रथचित्र, मैनका, सहजन्या, विश्वव्यन्धस, रथप्रीत, अशमाठर, प्रम्लोचन्ति, अनुम्लोचन्ति, ताक्षर्य, अरिष्टनेमि, विश्वाची, धृताची, आर्वगिवसु, सेनजित, सुपेण, उर्वशी, पूर्वचित्त-इन सबको प्रणाम यह रश्मिपति के अप्सराओं के मन्त्र है। प्रदीप्तानन, कुमार, धृणिप, अगावह, विराज, केशी, सुरराज, अरिष्ट, माष, अनन्त, निक्षुभ, तेजीवह-इन सबको प्रणाम-यह गणाधिपों के मंत्र है। ओम शुषा, मैती, प्रेमा, इयामा-चिष, दीप्ति, सुवर्चला को प्रणाम-यह मातृ-मंत्र है। ओम हु सहित-चन्द्र शक्ति, बृहस्पति, मगल, शैतैश्चर, राहु, केतु, बुध, इन्हें प्रणाम, यह प्रहो के मंत्र है। ओम सुराधिपति इन्द्र को, तेजोधिपति अग्नि को, प्रेताधिपति निकृति को, जलाधिपति वरुण को, प्राणाधिपति वायु को, यक्षाधिपति कुबेर को सर्वविद्याधिपति शंकर को, सर्वलोकाधिपति ब्रह्मा को, सर्वतागाधिपति शेष को प्रणाम ये दिग्देवताओं के मंत्र है। ओम तेजोधिपति को प्रणाम यह दीप-मंत्र है। अर्क को प्रणाम। हे देव ! अमृत ग्रहण करो। यह ज्वेष्य-मंत्र है। ओम जलकुंदल, दिव्य आतोद्यप्रिय सूर्य को नमन यह आतोद्य-मंत्र है। ओम अंशुमान, देवगोप सूर्य को ठः ठः के साथ प्रणाम यह पूजा का अपन्यास-मंत्र है। ओम दिव्य रूप वाले सर्वभूतात्मा। तेजोधिपति लोक-चक्षुष भानु को नमस्कार ॥११४॥ इसके पश्चात् क्रमशः मन्त्र-मुद्रा आदि द्वारा अभिन्नक्रिया बताऊगा। हृदय में अर्कों का उल्लेखन एव धारण करना चाहिए ॥११५॥ धी, चावल और मंदार पुष्प से] आहु त देनी चाहिए यह पूजा बताई गई है ॥११६॥ हे विरोचन ! आप संहार करें (ठः ठः के साथ) यह उपसंहार-मंत्र है ॥ ओम सर्वलोकप्रिय शान्तात्मा सूर्य को (ठः ठः के साथ) नमन यह शुद्धि-मंत्र है ॥ सहस्रक्रिरण सूर्य को हम रुमपित हैं वह सूर्य हमें सत्प्रेरणा दे<sup>१</sup> नमस्कार विधि में अर्क-हृदय-मंत्र रो दान देना चाहिए है द्वादशादित्य जैसे आप आये थे उसी प्रकार अपने

१. यह सूर्य गायत्री मन्त्र है।

अपने वर्ग में जाये। इस प्रकार स्वर्हा करें यह विश्वर्जन मन्त्र है। औपचारिक प्रिगल को प्रणाम यह निमत्ति में पढ़ें। इस यज्ञ को जो प्रतिदिन अथवा रविवार को विविषुर्वक करता है उसका फल मुनो ॥११७॥ आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, बल, तेज, यश और निस्सन्तान, पुत्रों को प्राप्त करता है तथा सूर्यलोक को जाता है ॥१८॥ अष्टपुष्पिका की विवि देवताओं ने कहा—हर समय उत्साहपूर्वक सूर्य में भक्ति रखनी चाहिए। अचार्य के, गुरुओं के और इस रविशस्त्र के ज्ञाता के कार्य में भक्ति करनी चाहिए ॥१९॥ पंचमी के दिन हवि का भोजन करके सायंकाल में दांत साफ करे और भोजन करके नियम पूर्वक छत धारण करे ॥२०॥

व्यायाम, सम्भोग, क्रोध, मन्त्र, मांस, विद्युते तीर से मारे हुए पशु का मांस, हिसा, मधु शिलापृष्ठ एवं कांस्य में भोजन—इन सबका त्याग कर दे ॥२१॥ षष्ठी में एवं सप्तमी में ऋद्धुमती स्त्री का सर्ष, तेल का सफ़ा देवता पर चढ़े पुष्प का लंघन वजित बताया गया है ॥२२॥ हे सूर्य देव ! ऐसा कहा गया है कि आप सकल और निष्कल दोनों हैं यह बतान की कृपा करें ॥२३॥ देव बोले—सूर्य जिस प्रकार सकल निष्कल कहा गया है उसे मेरे द्वारा बताया जाता हुआ मुनो ॥२४॥ यह संसार प्रारंभ में व्यावाहीन, द्रोहीन, मलहीन, ज्ञानहीन, निरानन्द और निरात्मक था ॥२५॥ तत्त्व-चिन्तकों ने उन सद एवं असद रूपी अनित्य अत्यक्त कारण को प्रधान प्रकृति के रूप में कहा है ॥२६॥ जो कि गन्ध, रंग, रस से हीन एवं शब्द और स्पर्श से विवजित जगत की योनि है और सकार्य सनातन देवशब्द है जिसे समस्त जीवों का परम भवान कारण कहा गया है वह आद्य अज, सूदम त्रिगुण और अव्यय है ॥२७॥

उसे श्रेष्ठ पुरुष और परम परमेश्वर कहा गया है जिससे यह सारा स्थावर एवं संगम संसार व्याप्त है ॥२८॥ वह जगत की मृष्टि, एवं संहार

का कारण कहा गया है, असंख्य गुणों से वह युक्त है तेजो रूप समन्वित है ॥१३०॥ वह अव्यक्त कारण है विगुणात्मक है स्वयं एक है इस प्रकार सूर्य को बताया गया है ॥१३१॥ वह श्रेष्ठ देवता योग का आश्रय लेकर सर्वतत्त्व-देता है ॥ ऐसे उस देवता ने प्रजाओं की सृष्टि करने के उद्देश्य से जल उत्पन्न करा ॥१३२॥ एकीभूत समुद्र में विद्यमान जलराशि की नारा कहते हैं उसमें सृष्टि करने के कारण उन्हे नारायण कहा गया है<sup>१</sup> ॥१३३॥ उस निविभाग एकार्णव के जल में नारायण खखोलक सूर्य देवता ने अकेले शयन किया ॥१३४॥ एक लाख द्विष्य बर्षों तक उस जल में तेजमण्डल सूर्य स्वयं शयन करते रहे ॥१३५॥ समय बीतने पर स्वर्णमय अण्डे का निर्माण करके उसमें अनेक शक्तियों से समन्वित स्वयं को निर्मित किया ॥१३६॥

प्रकाश करने वाला वह देवता खखोलक रूप में विख्यात हुआ उसी के अन्य नाम विराट पुरुष और ब्रह्म हुए ॥ १३७ ॥ सुखादि पांच तत्त्वों का कारण होने से निगमज्ञों ने उसे खखोलक कहा ॥ १३८ ॥ गर्भस्त यह सूर्य हिरण्य से विरा होने के कारण हिरण्यगर्भ नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥ १३९॥ विशाल होने के कारण अथवा वर्धनशील होने के कारण उसे ब्रह्मा कहा गया ॥१४०॥ देवताओं में महान होने के कारण महादेव और लोकों के ऊपर प्रभावशाली होने के कारण महेश्वर कहा गया ॥१४१॥ समस्त प्रजाये उससे उत्पन्न हुयी है इसलिए प्रजापति कहा गया । पूर्णत्व के कारण वह स्वयं उत्पन्न हुआ अतएव स्वयम्भूत कहा गया ॥१४२॥ हजार मस्तकों वाला हजार चरणों और मुखों वाला तथा हजार भुजाओं वाला वह प्रथम पुरुष कहा जाता है ॥ १४३ ॥ संसार में जो कुछ भी प्रकाशक, तेजोरूप दिखाई पड़ता है वह सब लोक कारण सूर्य के ही रूप में विद्यमान है ॥१४४॥

१. मनु० १/१० में इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार दी है—आपो नारा इतिप्रोक्ता आपो वै नरसूनवः, ता यद् स्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ।'

वह सूर्य समस्त उपाधियों से मुक्त नित्य, सदासदात्मक, विज्ञान मार्ग तथा अव्यवत है उसे श्रेष्ठ कारण कहते हैं ॥ १४५ ॥ अव्यवत से प्रकृति<sup>१</sup> उत्पन्न हुयी, प्रकृति से, सदासद गुण वाला महत, अहनस्वर्व से अहंकार और अहंकार से समरत इन्द्रिय है ॥ १४६ ॥ इन्द्रियों की और अस्मात्र की उस खखोलक पुरुष प्रभु ने अपने में प्रविष्ट करके उमस्ता जीवों का सूजन किया ॥ १४७ ॥ चारों दिशा उसी खखोलक के कारण से व्याप्त है । महादादि विकार के कारण व्यक्त जगत् उत्पन्न हुआ ॥ १४८ ॥ वह सूर्य जब मन के ताद संयोग करता है तो समस्त जीवों की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है ॥ १४९ ॥ अपने दिन के अंत में वह स्वयं आत्मसुख के लिए शक्ति करता है ॥ १५० ॥ अपने पर वही सूर्य पुनः महाभूतादियों के साथ त्रिगुणात्मक सृष्टि करता है ॥ १५१ ॥ इस प्रकार वह सहस्र किरण मात्र अश्वों द्वारा सूर्य चराचर मध्य संसार की बनता है और नष्ट करता है ॥ १५२ ॥

वह तपता है, प्रकाश करता है, गरजता है, बरसता है, वही जलपति है और संसृत बड़वानल है ॥ १५३ ॥ वही कालपिनरुद्ध है जो कि नीललोहित वर्ण वाला है वह सर्वज्ञोधिपति है, योगी है महान् है ॥ १५४ ॥ वह आदि-अंत विहीन है, ब्रह्मा है, अक्षर है उससे अविक्षेप देवताओं का भी देवता और कोई नहीं है ॥ १५५ ॥ चराचरमध्य यह संसार न्दृशी के द्वारा बनाया गया प्रलय में अपने में सभी को समेट लेता है ॥ १५६ ॥ वह चित्रभानु सूर्य अपनी किरणों से त्रैलोक्य को संतप्त करता है वर्षा के कारण वही पञ्चन्य के नाम से विख्यात है ॥ १५७ ॥ उसी महान् द्वेजोरूप युगान्तकालीन अग्नि से यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड समावृत है ॥ १५८ ॥ संहार-काल में संवर्तक<sup>२</sup> अग्नि बनकर द्वही

१. यहाँ पर सृष्टि की उत्पत्ति सौंहित्य दर्शन के आधार पर बनायी गई है देखिये लारसन, जी० जै० दी०, वलासिकल सांख्य, पृ० १६६-२२७.

२. प्रश्नायामिन्, ‘इतोऽपि बडवानलः सह समस्ते संवर्तकैः’ भर्त०, २.७६

बारह आदित्यों के रूप से वैलोक्य को भस्म करता है ॥१५६॥ ब्रह्मा, विष्णु और सूर्य<sup>१</sup> के रूप में वह क्रमशः मृष्टि, पालन और संहार करता है ॥१६०॥

पूर्व दिशा में उदित होकर पश्चिम दिशा की ओर जाता हुआ, मेरे<sup>२</sup> की प्रदक्षिण करता हुआ सारे संसार की प्रकाशित करता है ॥१६१॥ सभस्त जीवों के शरीर की आच्छादित करके वह विद्यमान होता है इसीलिए सर्वलोकधारी वह सूर्य अस्त्र कहा गया है ॥१६२॥ निरन्तर जिससे मृष्टि उत्पन्न होती है और जिसमें निरन्तर विद्यमान रहती है उसे ही निगमन और मनीषी सूर्य कहते हैं ॥१६३॥ अंशु को ही किरण कहते हैं अस्तु उसका नाम अंशुमान है उसका ऐश्वर्य श्रेष्ठ है । देवता राक्षस सभी उसके वजीभूत हैं ॥१६४॥ इदि धातु परम ऐश्वर्य के अर्थ में प्रयुक्त होती है इसीलिए उसे इन्द्र कहते हैं ॥१६५॥ जो तीनों लोकों का परिभ्रमण करता हुआ रक्षित करे उसी को रवि<sup>३</sup> कहते हैं । गमस्तिथों के समायोग के कारण उस देवता को गमस्ति कहते हैं ॥१६६॥ चूंकि वह सद्यमन करता है इसलिए उपको धर्म कहते हैं प्रजाओं का सर्जन करते समय इसका सुवर्णमय रेतस द्रवित हुआ इसलिये इस दिवाकर को सुवर्णरेता कहते हैं ॥१६७॥ चूंकि यह प्रजाओं की सर्जना करता है, इसलिए

१. ब्रह्मा, विष्णु एवं सूर्य का समन्वयात्मक रूप निर्दिष्ट किया है देखिये श्रीवास्तव, सन वरशिष्य इन ऐन्सिधन्ट इण्डिया पृ० ३१७-३१८.

२. उपाख्यानों में वर्णित एक पर्वत का नाम जिसके चारों ओर ग्रह चूमते हैं ।

३. इस अध्याय के १६६-७७ लक्षा ६६-६७ में वर्णित बारह आदित्यों के नामों और साम्ब-पुराण, ४.६; ६-३ आदि में वर्णित बारह आदित्यों के नामों में भिन्नता है ।

इसे त्वष्टा कहते हैं और इस रूप में वह समस्त औपधियों में विद्यमान है ॥१६८॥

चूंकि यह सूर्य स्नेहपूर्वक समस्त जीवों पर क्रपा करता है इसलिये जगत् वंशवत् होने के कारण उसे मित्र जड़ते हैं ॥१६९॥ जिस आदित्य की रसिमयों के द्वारा यह सब कुछ उत्पन्न हुआ उसे प्रवेशनशील एवं व्यापत्तशील होने के कारण विष्णु कहते हैं ॥१७०॥ प्रणव के सुन्दर ओकर वट सप्तदीज कहा गया है उस तेजस्वरूप खखोलक देव वा सूत-पन्न है ॥१७१॥ उस सूर्य देवता का दीपक थोकार है मकार साम्प्रदायिक अभ्यर्थ है। और पूज्य कार्य में अवाहन तथा नमस्कार की स्थापता होनी है ॥१७२॥ वर्ष हुए तीन वर्षों जिसे खखोलक कहा गया है नहाभूत के भेद से वह किरणों के अंट जाता है ॥१७३॥ खखार को ही आकाश रहा रहता है जो कि आदि और अन्त हीन है और उसका गुण शब्द है ॥१७४॥ ककार को नज़र एवं सर्जन होने के कारण बाबु कहा गया है इसका गुण स्पर्श है ॥१७५॥ थोकार को तेज समझता चाहिये और इसका गुण रूप है ॥१७६॥

प्रलयात्मक होने के कारण लकार को बहुग कहते हैं इसका गुण रूप है ॥१७७॥ ककार से पृथ्वी का स्मरण होता है पूर्व के चार गुणों ने युक्त होने के कारण पाँच गुण हो जाये हैं ॥१७८॥ खखोलक के रूप में जो पाँच महाभूत बताये गये हैं प्राण इत्यादिक, पात्र चायु, बुद्धि और इन्द्रिय ॥१७९॥ पाँच कर्मन्द्रियों, सत्त्वादि तीन गुण, मन, बुद्धि और अहंकार-ये तीन और ॥१८०॥ खखोलक और बैज ये सब मिलाकर उन्नीय है ॥ इन २६ से सब कुछ ब्याप्त है ॥१८१॥ वही यह सूर्य देवता अपने को अपने ही द्वारा उत्पन्न एवं अनुष्ठित करके संसार का पालन और प्रलय करता है ॥१८२॥ यह आदित्य निरन्तर अपनी किरणों से तपता है, जहाज किरणों से घिरे हुये इसे कुम्भनिम कहते हैं ॥१८३॥ यह सूर्य नदियों, नदों

और सारे समुद्र से किरणों के सहारे जल अवगत करता है ॥१८४॥

अस्त वेला में सूर्य का प्रकाश किरणों के बहारे अस्ति में प्रवेश करता है और दिन वेला में वही अस्ति सूर्य में प्रवेश कर जाता है ॥१८५॥ इस एकार परस्पर प्रवेश में यह सूर्य दिन और रात्रि प्रकाश नाथा उपर्यन्त की वित्त पालित करता है ॥१८६॥ वही ब्रह्मा है, विष्णु है, महेश्वर है वह ही एही कृकृ है, यजुष है और साम है ॥१८७॥ उदय काल में कृचार्यों में, मन्दात्म है यजुषों में, सायंकाल में भासों में इन्होंने ही उपर्यन्त ॥१८८॥ उनकी तीन रजिमर्यादा तीने दृश्यी लोक को, चार निश्चे निकृशीक खो और तीन ही उपर देवलोक को प्रकाशित करती है ॥१८९॥ सूर्यम्, दण्डिकण, विश्वकर्मा विवर्तयत्र, संग्रह, सुरथ ॥१९०॥ उदावयु व बनाए गये हैं जो कि सूर्य की महात्म किरणों से प्रकाशित है ॥१९१॥ इन प्रकार सूर्य देवता रजिमर्यों ने समूचे संसार को प्रकाशित करता है और योग दीने हए चन्द्रमा ही रोता है ॥१९२॥

इस प्रकार स्वतंप उचिष्ट नर्त्यपाति दिवादः विदिव वर्णो न युक्त तो इन नाय नाशक बनता है ॥१९३॥ निकल सर्वे की मुद्दे से रुक्त जाता हुआ सुन्ते के पञ्चात्, उस देवता की महावज्ज-विधि को सुनो ॥१९४॥ अर्मादिव इन को प्रदान करने वाले उस सविना देवता को प्रणाम है। विना शिला लिये हुये जो व्यक्ति इस तंत्र का विनार करता है जीव ही वह कुटुम्बुर्मा नीत है और मरने के बाद नरक में जाता है ॥१९५॥ जीव व्यक्ति उदार कुरुते

१. सूर्य का वपीकारक पक्ष अन्य पुराणों (विष्णु पु. १७-८) नारा महाभारत में निरन्तर निरिष्ट है देखिये वौराणिक धर्म एवं समाज, पृ० ५४-५५.

२. इस अध्याय में व्यक्ति सूर्य की अवधारणा की नूसना कीजिए लाम्ब-पुराण, अध्याय, २, ७., ८, १४ आदि।

हो, कुल सम्पन्न हो, शील और धर्म में चिरत हो, प्रजावास हो, जितेन्द्रिय हो उस सूर्य-भवत को यह ज्ञान देना चाहिये<sup>१</sup> ॥१६६॥ इस प्रकार साम्ब-पुराण में ४१वाँ अध्याय<sup>२</sup> समाप्त होता है ।

१. इस अध्याय के अनेक पद्म साम्ब-पुराण, अध्याय ७ और ६ से संग्रहीत हैं जैसे ५१.१२६-३६ = ७.६-७; ५१.१३६ - ७.१६व-२०अ, ५१.१४०अ = ७.१७व; ५१.१४१अ = ७.१६व, ५१.१४१व = ७.१७अ, ५१.१४२अ = ६.१८अ, ५१.१८७-१९१अ = ७.५४-५५, ५८व-५९अ और ६२-६३; ५१.१६३ = ६.१६; ५१.१६४-१६५अ = ६.३१; ५१.१६५व-१६६अ = ६.२५, ५१.१६६अ = ६.३८व, ५१.१७० = ६.३६.

२. यह अध्याय उत्तरकालीन है और १२५०-१५०० ई के मध्य तान्त्रिक परम्परा को प्रविष्ट कराने के लिए प्रक्षिप्त किया गया देखिये हाजरा, स्टडीज, १, पृ० ६३.



इसके बाद पहले कहे अनुसार मन्त्र सहित सूत्र का न्यून करे, मिठ्ठूर सुई और ग्रन्थि को छोड़ देना चाहिए ॥ ६ ॥ कपास, बत्कल, कोम और कौशिक वस्त्रों को यथोचित रूप से हाथ से नापकार नमित करे ॥ १० ॥ हृदय-मंत्र से अभिमंत्रित प्रथम सूत्र का एन्ड्रदल में तथा अण्ड दल के बीच में पञ्च को नियुक्त करे ॥ ११ ॥ गायत्री मंत्र से सूर्य का चिन्तन करे । पठक्षर मंत्र का एकाग्रचित से जाप करे ॥ १२ ॥ सत्त्व, रजस और तमस-इन तीन गुणों से युक्त रजस लक्षण कहा गया है ॥ १३ ॥ ४ द्वारों में सुशोभित अत्यन्त क्षीरा तथा स्थूल, कुश विन्दुविवर्जित दिव्य मण्डल<sup>१</sup> का चित्र बनाए ॥ १४ ॥ आठों दिशाओं में तथा सुविदिशाओं<sup>२</sup> में आयुधों का चित्र, पूर्व में ओंकार और पश्चिम पत्ते में खकार निर्मित करे ॥ १५ ॥ इष्टिण पत्र में खोकार और उत्तरी पञ्च में लकार, वायुकोण में यकार और अग्निकोण में स्वाकार ॥ १६ ॥

नैऋत्यकोण में हाकार और ईशान कोण में क्षकार, कणिका में महातेजस्वी देवता का रूप बनाये ॥ १७ ॥ उनके हृदय के बीच में श्वेत संस्थिता देवी का विन्यास करे । आठों दिशाओं और सुविदिशाओं में निशादेवी को नहीं बनाना चाहिए ॥ १८ ॥ पूर्वी प्राकार के बीच में कवर्ग और पंचमहाभूत और दक्षिणी भाग में ददर्ग, पंच बुद्धि-इन्द्रिय, पश्चिम में टकार वर्ग और पंचकर्मेन्द्रियां, उत्तर में तवर्ग और पांच तन्मात्राएँ, ईशान कोण में पद्मर

१. यद्यपि मण्डल द्वारा सूर्यपूजा तात्त्विक परम्परा की विशिष्टता है तथापि मत्स्य पु०, ७२.३०, ६२.१४, ६४.१२.१३, ७४.६-८, में आठ दलों वाले कमल का चित्र है और सूर्यपूजा के लिए वेरेदार गढ़ों का उल्लेख है । ब्रह्म पु० २८-२९ में भी कमल चित्र पर सूर्य के आवाहन का उल्लेख है । तुलना के लिए देखिए ज्ञानार्थव, २३.१५-१७, ब्रह्मतसंहिता, ४७, महानिवाणितन्त्र, १०.१३७-३८ ।

२. दो दिशाओं का भव्य विन्दु ।

और अव्यक्त ॥५०॥ आग्नेय में प्रकार वर्ग और शुद्धि, लैस्त्रिग के अकार वर्ग, वायव्य में ह, ल और मन, इसरे प्राकार में पूर्व विष्णु में सुरेन्द्र, वैष्णवों में अग्नि, दक्षिण में यम, लैश्वत्य में विश्वित के अधिष्ठित परिचलन के बगान, वायव्य में वायु, शौच में सौम, ईशान में ईशान के मुद्रावश एवं विष्णु करे। तीसरे प्राकार में अग्नि, शनिस, उष्ट, खडग, शंख, गदा एवं तटह का चित्रण करे तथा द्विसरे पुर में दिशाओं और विदिशाओं में शमाद्वा देना चाहिए। पूर्व से प्रारंभ करके लोकपालों का आवाहन करे। और आवरण में व्योम पृष्ठ, बलि और उपहार रखे। औंकार प्रारंभ में और स्वाहा अन्त में हो, तदन्तर अग्नि की स्थापना करके जात्यां परमादी वैदिक भूषित होकर भूमि को खोद खोदकर घी और कुश लिटकाइ इक्षिण दिशा में ब्राह्मण को स्थापित करें। लूकापात्र को जोषित करे, व्रत की परिक्रमा करके दाहिने शूद्धने की जमीन पर रखकर लूका हाथ में लंकर पात्र पकड़ कर छः आहुतियाँ दे। तदन्तर मनिध्वकरण को अन्धव कर्मी वाली इस लक्षण वाली अग्नि को इकात्र कर कुपटाधिष्ठर पंचवत् अमृत सौनल सूर्य को मन्त्र से आवाहन करे। तदन्तर शिष्य के निम्न गमधानादि पाँच पाँच आहुतियाँ दे तब दण्ड और मेघला स्थापित करे। पूर्व और से भक्तों को प्रवेश कराएं जो कि हृदय-मन्त्र से अनिमान्तित हो, वहाँ बंधे हुए मुख वाले हों। और तीन दार परिक्रमा किये जाये हों, छठनां के बल जमीन पर बैठकर सिर झुकाकर अपा वाचना करे ॥५१॥ उसके हृष्ण का निर्देश करे। उसी यज्ञ में रवि सहित उत्तरा नाय इमरण करे ॥५२॥ हृदय में महाश्वेता, भगवान् सूर्य का श्याम करने साथ न को देख तो वह दीक्षित कहा जाता है ॥५३॥ इसके बाद प्रावक ध्यान अग्नि

स्थापना करके एक एक जाहूति प्रदान करे तब अष्टपुष्पिका<sup>१</sup> दिलाए  
॥ २४ ॥

इस प्रकार साम्ब-पुराण में ५२वा अध्याय<sup>२</sup> समाप्त होता है।

१. वाण, हर्षचरित, पृ० १०३. ने अष्टपुष्पिका द्वारा पूजा का उल्लेख किया है। उदयादित्य वर्मन के सड़ोक काक आम अभिलेख में भी अष्टपुष्पिका द्वारा अष्टतत्त्व का उल्लेख है देखिये मजुमदार, इन्सक्रिप्सन्स आफ कम्बुज, पृ० ३७७.

२. अध्याय ४७-५२ तक एक इकाई माना गया है। इनका रचना काल १२५०-१५०० ई० के मध्य माना गया है देखिये हाऊरा, स्टडीज १ पृ० ६३.

## अद्याय ५३

नारद बोले—सर्वप्रथम कर्णिका युक्त न पत्तों वाले पश्च का चिन्तन करना चाहिये उसके बीच में रविम-विश्रह भगवान् भास्कर की कल्पना करे ॥१॥ हजारों दिनों के समाज, करोड़ों सूर्यों के समाज प्रभा वाले महातेजीमय भगवान् आदित्य की बुद्धिमान उपासना हरे ॥२॥ जो इसी वर्ण वाले अश्व के रथ में बैठा हुआ है जिसका मार्गी अरण है और अर्थ वह रथी सूर्य बैठा हुआ है ॥३॥ उस आदित्य का ओकशानि<sup>१</sup> के लिए मैं आवाहन करता हूँ । हे भगवान् सूर्य ! आप भग्ने आपका यज्ञ होने जा रहा हूँ ॥४॥ यह अर्थ है, यह पात्र वृ, इन ग्रहण करे । ब्राह्मवा नमस्कार है । आवाहित महस्तकिरण वर्ति सूर्य का (ठः ठः का उच्चार करे ) स्वागत है । स्वागत है, ओम आज वहों केंद्रों । दिव्य शब्दपानीरों ता रस जो मन्थ से भरा हुआ और उत्तम वर्षवाला है जो समझन जीवों का के लिये आवश्यक है उसे आप ग्रहण करे आपको पणाम है ॥५॥ धूष, गन्ध, गधानि को स्वाहा । यह अर्च-मन्त्र है । ३५ पञ्च दीप को स्वाहा यह पुराण की दिव्य गन्ध है अब ऐसा कहकर पुष्प-द्वीपे यह पुष्प-मन्त्र है ॥६॥ शङ्खा द्वारा प्राचीन काल में ग्रहित किया यह उत्तम पवित्र उक्तोपदीन है, है महातेज सूर्य ! आप इसे ग्रहण करे आपको नमस्कार है ॥७॥

१. गुप्त काल के उपरान्त देवताओं की यजोपरीन में अधिक किये जाने लगा देखिये अन्तर्ज्ञी, छेठलेपमेन्ट आफ हिन्दू आडकोनोप्राकी पृ० २६०-६१.

हे परमेश्वर ! यह समस्त औपचिदों के समृद्ध एव्य है, यह अमृत आपका भोजन है इसे अहंग करें। ऐसा कहकर अन्त दाता करें ॥३॥ यह रत्नोज्ज्वल उत्तम आभूदग्नों वाला मुकुट है, हे देवाधिदेव ! इस मुकुट को ग्रहण करे ऐसा कहकर मुकुट इ और नमस्कार करे ॥४॥ मनस्तु दस्तों में उत्तम एवं पवित्र यह वस्त्र इष्ट के लिये है यह पवित्र दिव्य कटिभूषण है, देव ! आपको नमस्कार है ॥५॥ इस प्रकार साम्ब-पुराण में पूजाविधि-निरूपण में प्रथम पटल वाला ५३वा अध्याय समाप्त होता है ।

१. देवताओं को मुकुटधारी चिह्नित किया जाता था, सूर्य को भी मुकुट से भूषित करने का विधान था देखिए बृहतसंहिता, ५७, ३२.४७.५७.

२. द्रष्टव्य कि यहाँ अव्यंग के स्थान पर कटिभूषण का उल्लेख किया गया है इस प्रकार सूर्यमूर्तियों का भारतीयकरण किया गया ।

३. हाजरा, हटडीज, भाग १ के अनुसार इस अध्याय से अध्याय ५५ (१.६७) तक एक अन्य इकाई है जो साम्ब-पुराण, के उत्तर कालीन भाग में आती है अस्तु इसका रचनाकाल १२५०-१५०० ई० के मध्य माना जाता है ।

## अध्याय ५४

देवताओं ने कहा—हे देवेश ! सक्षेप में अष्ट-पुष्टिका<sup>१</sup> के विषय में बताए ॥१॥ देव बोले—ठः ठः के साथ खखोलक के लिए स्वाहा; गर्वप्रभु खकार युक्त सहित अर्चित से युक्त औंकार की स्थापना करे। खोटार को दक्षिण भाग में और लकार को नैऋत्य छोण में ॥२॥ वकार को पश्चिम भाग में, स्वाकार को वायव्य में, और हाकार को उत्तर में तथा अकार को इशान में स्थापित करे। औंकार के द्वारा आवाजन करे, सानिध्य में इसे 'ज्ञ' कहने हैं विद्या स्थापना में खोटार को और लकार को पूष्य का करण समझे ॥३॥ स्वाकार के द्वारा भौद्य भक्ष्य को संयुक्त करे और हाकार के योगी सदैव मुकित के कारण में सीधे, अकार को स्वयम् सदैव मुकित के कारण महातेजस्वी आदि ५ माने, बीजसावन में दक्षिणावर्त में साधक को रखजे ॥४॥ तत्त्वनिर साक्षक यथान्यास मन्त्रों को प्रदुल्ह करें। यही बीजाष्टपुष्टिका है। यह प्रकार साम्ब-पुराण में ५४वें अध्याय का द्वितीय एटल समाप्त होता है।

\*

१. अष्टपुष्टिका के द्वारा पूजा का उत्तेज्य पाशुपतों के भाष्य में लगा हुआ है देखिए पाठक, वी० एस०, हिन्दू आफ शैक्ष कल्टस इन नावेंमें इण्डिया, पृ० १७-१८.

## अध्याय ५५

देव बोले—जो स्वर्ग और अपवर्ग<sup>१</sup> के लिए है जो सर्वार्थ साधन है । उस संवत्सर नाम वाले अनुलनीय मण्डल के विषय में मैं आप से बताता हूँ ॥१॥ ऐसा आचार्य जो संयत, बुद्धिमान और सूर्यशास्त्र का पण्डित हो ऐसा ब्राह्मण जिसने क्रोध, लोभ को छोड़ दिया हो, निरामय हो और प्रशस्त हो ॥२॥ वही गुरु<sup>२</sup> हो और जो अभिषेक-निपुण हो, शास्त्र-भक्त हो, निरामय हो ऐसा परिचारक होना चाहिये ॥ जो कुलीन हो, पवित्र हो, दबद्विज-परायण हों, सूर्य के विधान में तत्पर हो ऐसे शिष्य प्रशंसित होते हैं ॥४॥ और भी जो लोग आर्त हों, अथवा पापरोगादि से बिप्लुत हों, संतानहीन हों, धन-हीन हों, उन्हें अभिषेक<sup>३</sup> नहीं करना चाहिए ॥ ५ ॥ सप्तमी<sup>४</sup> के दिन, ग्रहण के दिन और सूर्य की मंकान्तियों में, अन्याय पुण्य दिनों में अथवा सूर्योदय होने पर मण्डल लिखना चाहिये ॥ ६ ॥ पहले बताए गए पृथिवी भाग जो कि विस्तृत, शुभ, और पवित्र हो, जो गायों से अध्युषित और ब्राह्मणों से अभिनन्दित हो, में मण्डल लिखना चाहिए ॥ ७ ॥ वह स्थान कट्टक, बांवी और इमशान

१. मोक्ष, परमगति, “अपवर्गमहोदयार्थयोर्भूवमंशाविव धर्मयोर्गतो । रघु०, ८-१६.

२. गुरु की योग्यताओं के लिए देखे, प्रिन्सिपिल्स आफ तत्त्व पृ० ५२६-५४१.

३. देवता पर जल छिड़कना ।

आदि से विभिन्न होता चाहिये और सूर्य-हृदय-मन्त्र द्वारा अर्घ्य देकर उसे पवित्र करे ॥८॥

सांप, शूकर, चूहा, बाल, हड्डी, काष्ठ, भस्म और भूसा आदि इरकर देना चाहिए, तदनन्तर सूर्य और गुरुदेव को प्रणाम करना चाहिये ॥९॥ उस भूमि में शिष्य संयतमत हो परिग्रामण करे और शयन करे ॥१०॥ स्वप्नों<sup>१</sup> में यदि श्रासाद, मन्दिर, कानून, वृक्ष, द्रुम ॥ शिहासन का आरोहण वस्त्र, भूषण, दधि, तारी, ओत्र, घ्वज और माला देखे तो प्रशस्त होता है ॥११॥ लोभ को जीतना, दैरी का वध, रुधिर का गिरना, मास का भोजन, मंदिर का स्वाद और रुचिरपान ॥१२॥ इस प्रकार के देखे गए स्वप्न मनीवान्धित को सिद्ध करते हैं। इस प्रकार चन्दन और अगुरु से युक्त हाथ से संस्कार करे ॥१३॥ उस स्थान को नाना घ्वजों से विभूषित करके शुद्ध घण्टकाओं के नाद से मुखारित करके ढूलाए जाते रमणीय चामरों से रुचिर बना देना चाहिए ॥१४॥ वह स्थान कमल पत्र के पीत से युक्त हो, कदली-स्तम्भों से घण्डित हो, मधूर की पूँछ से देहोप्यमान छवबाल हो और चन्दौलि से विभूषित हो ॥१५॥ विजरे हुए नाना रथों वाला हो और हारों की लड़ी से तथा तोरण से शोभायमान हो। तिहाराए गये गाँठ से रहित रेशम कपास अथवा ऊनी सूत ॥१६॥

प्रशंसा योग्य होता है उस वस्त्र को सूर्य के समक्ष रखना चाहिये ॥१७॥ सौम्य के लिए ध्रुवास्पद पश्चिम और दक्षिण में हो ॥१८॥ सूर्य के कमल के बीच में पदित्र कणिका बनाए, कणिका के ही बराबर केसर हो और उसका दो गुना दल हो ॥१९॥ मण्डल मुन्दर कमल से युक्त हों; वीजपत्र २६ हो और केसर की संख्या २४ हो ॥२०॥ चार शिखरों वाला और उज्ज्वलशिखा वाला श्वेत कमल खीचे और उसके भी बाहर इसरा चतुष्कोण बनाए ॥२१॥ चार यीवा वाले ऐसे रथ के पवित्र अवयवों को बनाये और पुरावरण के बीच में कन्दरावृत अरुण को रचना करे ॥२२॥ उत्तने के ही

१. स्वप्नों के शुभाशुभ फलों के लिए देखें धर्मसिन्धु, पृ० ३५६-६०

बराबर उसके आधे भाग में दो दो रेखाएँ खींचे ॥ २३ ॥ और पश्चमर्थ से लिकली हुई पश्चिम दिशा में ॥ २४ ॥

जायत युष्टिधर्म को कणिका की बताये और यष्टि के अगले भाग में दोनों वागल जुते हुए सात घोड़े निर्मित करें ॥ २५ ॥ यष्टि के मूल में ऊपर अरुण कहा जाता है और धोणी को पीठ कहते हैं और उसके अन्त को गोषभाग ॥ २६ ॥ कणिका-तेज के पिछले रूप में बीज भूम वाले भूतादिक हैं कणिका को व्योम वार युक्त और केसर सहित है ॥ २७ ॥ पत्र के अगले भाग वाला मण्डक हस्त कहा जाता है और पुर में अर्तव्योम स्थित भाग को बाह्याकाश समझना चाहिए और कट्टुने पितर है ॥ २८ ॥ गुप्तस्ता आदि जो हजारों नाडिया सूर्य के शरोर में हैं उसके ऊपर उसका पीतभाग है ॥ २९ ॥ अरुण को ही वृग्णि कला जया है और छन्द अश्व बताए रथे हैं ॥ ३० ॥ वैच वासुकि है और तीन दोंक हैं इस प्रकार सूर्य देवता का वह रथ श्रेष्ठ सर्वमय बताया गया है ॥ ३१ ॥

पुरोदिष्ट विधान के अनुसार मनसा स्मरण करके कुश और पुष्पों से इत्तचित्त होकर उसे चित्रित करें ॥ ३२ ॥ और श्रेष्ठ देवता खबोन्क नाम से विलम्पात सूर्य की उपासना करें। यह विधि नित्य है और नैमित्रिक भी है ॥ ३४ ॥ नर्धेण में सुन्दर भवन में स्थित होकर तेजोदातादि शीक्षा करनी चाहिये। इस रथ में महायोग वाल्य है ॥ ३५ ॥ रथकन्दर की विधियाँ अर्थमुग्गा लम्भित हैं ॥ बीथी जाकार में दूनी बड़ी बनानी चाहिये ॥ ३६ ॥ चान्द्र की तुल्यता के अनुसार उदिष्ट गुण ग्रीवा युक्त अरुण बनाना चाहिये सदैव यम की दिशा में बाहर असुरों को बनाना चाहिए ॥ ३७ ॥ उस कमल

१. रथ के संवत्सरात्मक रूप के लिए देखिये विष्णु पु०, २.८.४.  
“संवत्सरये ऋत्सनं कालचक्रं प्रतिलिप्तम् ।”

रुह में जो द्वार बताया गया है वह भिन्न हो। रथ की बाह्य वीथियाँ दो हैं जिनकी दीपि प्रसिद्ध है ॥३८॥ ग्रहनिरदेवता नानु की यह कंदरा है। पठिक्षमों द्वार मोअ नामक है जिससे शिष्यों को प्रविष्ट कराये ॥३९॥ इस एकार सूत्रपति का सम्पूर्ण विधिकम् बताया गया है इसके सम्बन्ध में परम गति प्राप्त होती ॥४०॥

जिस प्रबन्ध अक्षर से इन सबके रूपों का आलेखन होना चाहिये। उन ग्रंथिरात्रे की विधि बता रहा है ॥४१॥ मणि, नुकता प्रबल (मूँगा) व्रीहि (चावल का दाला) और धानु से उत्तम चूर्ण से अस्ति इन्द्र अथवा मनुष के रंग से रथ बनाये ॥४२॥ उस रथ को अस्थूत, अकृश और अअरीण देशिका एवं अंगुष्ठ द्वारा रजोरेत्रा से संसक्त करे ॥४३॥ उसके नक्षत्ररात्रि में उसके मध्य में इसी को पद्मगर्भ का नवमयोग कहा जाता है ॥४४॥ प्रारंभ में पद्मनिर्मणि करे जो कि सारांशिक पद्म की प्रभा वाला हो और उदीयमान सूर्य के समान हो जो नैषिठिक कर्म में स्थित हो ॥४५॥ उस पीली कणिका में किञ्जलक<sup>१</sup> हरित मध्य में निर्मित करे केसर अलप हो और अन्दर की ओर पत्र श्वेत हो ॥४६॥ पीले अकंपुर, शोणमस्त्र, दद्माप्र के संविधियों में प्रत्येक दिक्देवताओं तथा हरितादि अझों को मानकर ॥४७॥

\*  
संघ्याकलीन सूर्य के समान व्योम और स्वर्ण प्रभा के समान कन्दरा तथा श्वेत, पीत और अस्तु वर्ण से यष्टि<sup>२</sup> बनानी चाहिये ॥५८॥ यमस्त्र आवरण आदि को चारों वर्णों से निर्मित करना चाहिये और चारों वर्णों रो ही चौक भी बनानी चाहिये ॥५९॥ जिन पूर्व स्थानों में देवादि

१. कमल का फूल—“आकर्षित्वः पद्मकिञ्जलकगत्थान्” उत्तर०३-२,  
रघू०, १५-१६.

२. इठंल अथवा झंडे का डन्डा

बताये गए हैं उनमें उतका लेखन करना चाहिये ॥५१॥ इस प्रकार सूर्य मण्डल का निर्माण करके पुनः स्थान करके सम्यक् चित्त होकर पूजा कर्म प्रारम्भ करना चाहिये सभी सूर्य कर्मों में मनोहर दूर्वा धास का प्रयोग करना चाहिये ॥५२॥ नैतिक अग्नि कार्य में इस अग्नि गर्भ में चारों ओर कुश इत्यादि का विन्यास करे ॥५३॥ पूजाग्नि किया से भी अधिक महत्व की एक महाफल देने वाली कुछ वातें हैं देवताओं ! मुङ्गसे सुनो ॥५४॥ नदी के दोनों किनारों की मिट्टी, गाय की सींग से उखाड़ी गधी मिट्टी भस्म, दूर्वा, सरसों, गुरीचना ॥५५॥ सुअर के धूथन से उखाड़ा गमा नागरमोथा इन सबकों आठों दिशाओं में चन्दन दल से युक्त चबूतरों पर चारों ओर पल्लवों से युक्त शैश्या और मुखों पर ॥५६॥

और गर्दन में बंधे वस्त्रों तथा कलशों पर निर्धारित करना चाहिये ॥५७॥ उस संवत्सर की दिशा में शुभ अग्नि स्थापित करें और अग्निकुड़ को विदिशाओं<sup>३</sup> में कमल युक्त बनाये ॥५८॥ उस संवत्सर<sup>३</sup> का आर्यादि तीर्थ सहित अग्नि कुंड बारह अंगुल खोदा जाय; आठ अंगुल विस्तृत हों और भली भाँति धोया गया है ॥५९॥ आर्यादि तीर्थ कुंड में जाठ अंगुल दूर दक्षिण दिशा में<sup>४</sup> दर्भ स्थापित करे और उसे मैनाक<sup>१</sup> पर्वत

१. दो दिशाओं के मध्यवर्ती बिन्दु को विदिश कहते हैं।

२. एक वर्ष में पूरा चक्कर करने वाला (सूर्य) महाभारत, ३.३६, २०-२३ में सूर्य संवत्सर कहा गया है।

३. एक प्रकार की पवित्र<sup>२</sup>(कुशा) धास जो यज्ञानुष्ठानों के अवसर पर प्रयुक्त होती है शकु० १.७, मनु०, २.४३; ३.२०८.

४. हिमालय और मैना के पुत्र-एक पर्वत का नाम, यही एक ऐसा पर्वत था जिसके डैने समुद्र से मित्रता होने के कारण अक्षुण्णु रहे जब कि इन्द्र ने अन्य के बाजू काट डाले थे तुलना कीजिये कु० १.२० देखिये जली एस. एम०, दो जियागारफी आफ दी पुराणज, पृ० १७.

माने । इसी प्रकार उत्तर में सात अंगुल दूर पारियात्र<sup>१</sup> पर्वत बनाए ॥६०॥ जिनके साथ सूर्य की पूजा पवित्र बताई गई है वही अग्नि स्वरूप हृदय में व्यान केन्द्र होना चाहिये ॥६१॥ पूर्व मुख होकर ब्रह्मा और ब्रह्मण के समीप सुक्र और सूर्य रखे और समस्त मनोवांछित वस्तुयें गुरु के लिये नैऋत्य कोण में रखे ॥६२॥ जिनके नीक टूटे हुए न हों जो आधे पर न टूटे हो ऐसे मूल सहित कुशों को एवं मनोहर दुर्वाघास को सूर्य के सभी कार्यों में प्रयुक्त करे ॥६३॥ इस प्रकार ब्रह्मा आदि सर्वके चारों ओर और अग्निगर्भ के चारों ओर उन कुशों को फैलाये ॥६४॥

सूर्य का परिमाण चौबीस अंगुष्ठ होना चाहिये । उसका भी अगला भाग एक अंगुष्ठ के बराबर शुका होना चाहिये ॥६५॥ उससे आधा अंगुल पात्रों की नाप होना चाहिये और पाणिपात्र तल उदर होना चाहिये । उसका वृत दो अंगुल<sup>२</sup> होना चाहिये ॥६६॥ लाल चन्दन, काष्ठ, खैर, पीपल, पलाश तथा अन्यान्य यज्ञ के योश्य लकड़ियों से सूक और सूर्य आदि बनाना चाहिये ॥६७॥ इन्हीं काठों से मूसल और ओखली, चमस<sup>३</sup> बनानी चाहिये । मूसल बारह अंगुल का होना चाहिये ॥६८॥ ओखली दस अंगुल की हो और चार अंगुल जमीन में गड़ी हो । इसी प्रकार चमस सात अंगुल का हो और आधा अंगुल धैसा हुआ हो ॥६९॥ चमस के

१. सात मुख्य पर्वतों में से एक पर्वत ।

२. अंगुल माप की एक इकाई थी इसके अर्थ एवं प्रकार के लिये देखिये बनर्जी, जे०, एन०, डिव्लपमेन्ट आफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, पृ० ३१५-२०.

३. सोमपान करने का लकड़ी का चमचे के आकार का यज्ञ पात्र, याज्ञ०, १.१३.

पूँछ का साप परिमाण<sup>१</sup> में छः अंगुल का होता चाहिये । दालौन शिष्य के ललाट के बराबर लम्बाई की होनी चाहिए ॥७०॥ सूर्य के यज्ञ की लकड़ियाँ बारह अंगुल लम्बी हो, देढ़ी न हो, आद्र<sup>२</sup> न हो, जनेऊ कुश का बनाना चाहिये और मेखला तीन बार बँटी गई हो ॥७१॥ यह मेखला मूँज की हों अथवा कुश की हो अथवा बल्वज<sup>३</sup> की हो । अविच्छिन्न शिखा जाल वाली हो, धूतयुक्त हो, कांचन के प्रभावाली हो ॥७२॥

यज्ञ की आग यदि चिकनी हो और गोलाकार हो तो ऐसी यज्ञानि सिद्ध-कर कही जाती है । तदन्तर ओखली में मूसल ढारा ॥७३॥ सूर्य के मूल-मंत्र का जाप करते हुए हृषि शिष्य को चार अंगुल तक पीसना चाहिये ॥७४॥ मूल से पायसु को चार अंगुल तक शान्त करना चाहिये इसके बाद अधिवासित शिष्यों को प्रवेश कराना चाहिये ॥७५॥ जिसे उद्दीश्य करके चित्र लिखा गया हो उसे पहले प्रवेश कराये । वह शिष्य पगड़ी बांधे हो, शान्त हो, श्वेत चन्दन से चिप्रित हो ॥७६॥ अचंचल हो, अकोधी हो, और श्वेत वस्त्र से विभूषित हो, गाय को पूँछ से सूर्य-हृदय का जाप करते हुए ॥७७॥ युर शिष्य का अभिषेक करे और शिष्य युर का अभिषेक करे और शिष्य युर को बछड़े सहित गाय दान में दे ॥७८॥ गाय सुन्दर रूप वाली हो, शान्त हो, सोने की जंजीर और वस्त्र से विभूषित हो, उसके खुर श्वेत वस्त्रों से ढके हों ऐसी गाय को द्वार से ही सदा लाये ॥७९॥ तदन्तर उसे प्रवेश कराकर यष्टि के समक्ष स्थापित करे । सम्यक रूप से शान्त युर शिष्य के कायिक, वाचिक और भानसिक मल को दूर करे ॥८०॥

इस त्रिविद्धि पाप को सूर्य-हृदय आदि मंत्रों द्वारा दूर करे, घुटनों के

१. परिमाण माप के लिये प्रयुक्त होता है । देखिए बृहतसंहिता, ५७, ३, २५.

२. मनु० २.४३ के अनुसार यह एक प्रकार की भोटी धास होती है ।

बल जमीन पर बैठकर और फूलों से अंजलि भरकर ॥ द१ ॥ 'खखोल्क' इस मंत्र द्वारा पुष्पों को कमल पर चढ़ाये । वह पुष्प कमलचक्र में बने हुए जिस देवता के बागे गिरे ॥ द२ ॥ वही उसका कुल-देवता तथा सर्वार्थ-साधक है । उस उत्पन्न साक्षात् ब्रह्मरूपी परमात्मा को चारों ओर देखकर ॥ द३ ॥ तब उस कुल-देवता खखोल्क को यत्नपूर्वक क्रम से प्रणाम करे और पद्म राग अथवा स्वर्ण से युक्त सबको निविष्ट करे ॥ द४ ॥ इसके बाद गुरु शिष्य को ईशान दिशा में लाकर कुशासन पर बैठाये और तब राजा यज्ञ करे ॥ द५ ॥ गुरु कुश के अग्रभाग से कलश से जल लेकर पूरब की ओर मुँह किये हुए शिष्य का सूर्य-मंत्रों से अभिषेक करे ॥ द६ ॥ शिष्य के अभिषेक-काल में ब्राह्मण लोग क्रमानुसार तीनों देवों की उपस्थिति में त्रिशिक्षा<sup>१</sup> का पाठ करे ॥ द७ ॥ 'अस्यवासोद्वयम्' इस मंत्र द्वारा स्थापना करें, 'आङ्गुष्ठेन,'—इस मंत्र द्वारा यजुषों की आठ आहुतियाँ तीन बार दे ॥ द८ ॥

आदित्य-व्रत वाले और श्वेत वस्त्र वाले शिष्य को सब लोग संयत मन होकर साम द्वारा अभिषेक करे ॥ द९ ॥ तदन्तर अग्नि के समीप जाकर और सूर्य-हृदय-मंत्र द्वारा कुश से उस शिष्य को शुद्ध करके गुरु स्वयं होम करे ॥ द१० ॥ गर्भधान, पुंसवन, सीमन्तीनयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन ॥ द११ ॥ चूड़ाकर्म, उपनयन<sup>२</sup> स्नान, पेय एवं यज्ञों आदि कार्यों में कुशों के अग छूकर सम्पन्न करे ॥ द१२ ॥ तब कुश युक्त हाथ से शिष्य की मूर्ढादि के कारण अनाहत शिखा को काटकर घी में लपेटकर अग्नि में दग्ध कर दे ॥ द१३ ॥ अथवा मस्तक भाग को छूकर कुशों का हवन कर दे और पाक संस्थान<sup>३</sup>

१. त्रिशिक्षा से अभिप्राय है त्रिवेद अर्थात् ऋक, यजुष और साम ।

२. विस्तृत ज्ञान के लिये देखिये राजबली पाण्डेय, हिन्दू संस्कार, महानिर्णितत्त्र, अध्याय ८.

३. गृह्यज्ञ, मनु० २.१४३. पर उलूल्क की टीका

हविः संस्था<sup>१</sup> तथा होम संस्था<sup>२</sup> कार्यों को करे ॥६४॥ पहले कही गयी विधि के अनुसार शुद्ध धूत से शिष्य लक-स्त्रुता से यज्ञ करे ॥६५॥ तब शिष्य सामने बैठकर अपने गुह को कुश से छुए ॥ और तब गुह स्वयं भुवनों के साथ सूर्य का यज्ञ करे ॥६६॥

अंत में अभितर्पण में वषट्कार करना चाहिये जो इस प्रकार है ॥६७॥<sup>३</sup> ओम प्रारम्भ में और ठः ठः वाद में कहकर कालाग्निरुद्र के लिए, कालरुद्रो के लिए, भस्मरुद्रों के लिये, श्वेताधिपति के लिये, पिंगल रुद्रो के लिए, कालरुद्रो के लिये, हिरण्यवर्ण के लिये, काल के लिये, लोहित्य के लिये, रक्तपिंगल के लिये, अनन्त के लिये, पुण्डरीकासा के लिये, सहस्रशीर्ष के लिये, महोज्ज्वल के लिये, सज्ज्वल के लिये, आशीषिष के लिए; अनन्त के लिये, वरुण के लिये, अविच्छिन्न के लिये, रौरव के लिये, तामिस्त्र के लिये, तामस के लिये, अन्ध-तामिस्त्र के लिये, शीत के लिए, उष्ण के लिए, सन्तापन के लिये, सुप्रतपन के लिये, संहृत के लिए, काकोलूक के लिये, पञ्चमलोचन के लिये, संयमन के लिये, जम्बुक के लिये, उलूक के लिये, व्याधि के लिये, पूतिमृत्तिक के लिये, कालसूत्र के लिये, सूचीमुख के लिये, लौहशंकु के लिये, क्षुरधारोपम के लिये, बिरीक के लिये, दंशक के लिये, तप्तकुंभोपम के लिये, पूयशोणितप्रवाह के लिये, कूटपर्वत के लिये, तीक्ष्णशत्रुप के लिये, चक्रपिपड के लिये, सतुण्ड तार्द्य के लिये, मेदोसृकपूयप्रवाह के लिये, क्रकचच्छेदन के लिये, अस्थिभंजन के लिये, तप्तवालुक के लिये, पंकलेपन के लिये, निरुच्छवास के लिये, यमल पर्वत के लिए, कूटशालमलि के लिये, इन सबको आहुति स्वाहाकार मंत्रों सहित प्रदान करना चाहिये। ब्रह्मा बोले — दस भागों में बटे हुए इस यज्ञ के पुनः बारह भाग है और है देवेश ! उम विधान में आपका अत्यधिक विस्तार

१. एक प्रकार का यज्ञ

२. ब्राह्मणों द्वारा किये जाने वाले दैनिक पंचयज्ञों में से एक यज्ञ जिसे देवयज्ञ कहते हैं ।

है॥६६॥ उन तंत्रों में आपकी श्रेष्ठ भक्ति बताई गयी है और महान् तपस्या से अत्यन्त विस्तृत सिद्धि प्राप्त होती है॥६६॥ हे देव ! तत्त्वार्थ की सिद्धि के लिये उस श्रेष्ठ रहस्य को बताए, प्रत्येक मंत्र के प्रयोगार्थ को और ध्यान-सिद्धि को तत्त्वतः बताये॥१००॥ आपने यह जो अचिन्त्य परम रहस्य मुझे बताया इस तंत्र में, हे प्रभो ! जितनी मन्त्र-सिद्धि विद्यमान है वह बताए॥१०१॥ सूर्य बोले—पूछे जाने पर उस आदि देवता ने सत् और असत् रूप वाली सृष्टि का व्याख्यान किया। असत् से सर्वप्रथम् १६ आत्मावाला वर्ण<sup>१</sup> उत्पन्न हुआ॥१०२॥ इसके बाद क्रमशः सत्ताइस वर्ण हुए। तदन्तर सृष्टि के लिए दोनों से निरमंथन के पश्चात् बीस वर्ण और उत्पन्न हुए॥१०३॥ आदि में सात प्राण स्थान में मंथन करने पर यच्चीस अयोनिज देवता परमेष्ठी आदि उत्पन्न हुए॥१०४॥

वक्र रूप से मंथन करने पर परमेष्ठी के दक्षिण भाग से पारमेष्ठ्य उत्पन्न हुए, पुनः वाम भाग में मंथन करने से पुन्र उत्पन्न हुआ,॥१०५॥ और पुनः वाम भाग के मंथन से नासिका से उत्पन्न होने वाले जुड़वे अश्विनी कुमार पैदा हुए॥१०६॥ तब उनके सबके अवरोधार्थ सृष्टि के संहार का कारण वह प्रणवान्त कारण काल उत्पन्न हुआ॥१०७॥ इस प्रकार मूर्धभाग में और अन्य अंगों से सृष्टि हुयी॥१०८॥ शिव द्वारा निमित् देवी के हृदय के अग्र भाग में उस देवता<sup>२</sup> की दक्षिण भुजा में समस्त क्रियाओं की स्थापना करनी चाहिये॥१०९॥ भुवनाधिपति सूर्य उसके बीजयोनि है और सृष्टि

१. द्रष्टव्य है कि अध्याय ५५ के ६६ श्लोक से अध्याय ८३ तक यह पुराण शैव विचारधारा से प्रभावित है देखिए हाजरा, आर० सी० दो सम्ब पुराण, ए सौर वक्र आफ डिफरेन्ट हैन्डस, अनाल्स आफ भृडारकार औरियन्टल रिसर्च इन्स्टीच्यूट, ३६, (१९५५-५६) पृ० ८३-८४।

२. शक्ति वर्णमय है विस्तार के लिये देखिये बुड़राफ, दी गारलैण आफ लेटर्स, पृ० २१४-२२७।

## अध्याय ५६

वहाँ उस (सूर्य-रहस्य) में तीन तत्त्व हैं—बीज-तत्त्व, वर्ण-तत्त्व और योनि-तत्त्व ॥१॥ चार पदार्थ हैं निष्कल, सकल, सिद्ध, पञ्चविंशकभाव ॥२॥ अब उस सूर्य के हृदय-तत्त्व का रहस्य बता रहा हूँ जो कि गोपनीय से भी अधिक गोपनीय है। उस सूर्य-हृदय में ऊपर सात स्रोत हैं और बारह नाल हैं ॥३॥ उस कमल की पंजिका कणिका पाँच मकार की बताई गयी है, केसर सौलह प्रकार की और उसका पच्च बारह दलों वाला है ॥४॥ सात उसके सूंग हैं, अपार मेरु और मंदर से विभूषित हैं और बारह योनियाँ हैं जो प्रत्येक यन्त्र<sup>२</sup> में प्रतिष्ठित हैं ॥५॥ इस प्रकार एकुक्षार श्रेष्ठ बीजवान प्रभु सूर्य-तत्त्व के निर्मथन से उत्पन्न हुआ जो आधी कला की मात्रा के बराबर है ॥६॥ हृदय में विद्यमान उस देवता की आत्मा अर्धकला से युक्त सात प्रकार की है ॥७॥ इस प्रकार सात सूंगों से और सात कलाओं से युक्त यही श्रेष्ठ

१. द्व० में निष्कलं मुद्रित है निष्कलं होना चाहिये ।

२. यन्त्र द्वारा पूजा तन्त्र-पूजा का एक विशिष्ट अंग है इसे चक्र भी कहा जाता है। धातु, पत्थर, कागज अथवा किसी अन्य वस्तु पर खोदी हुई अथवा तक्षित या रंजित ज्यामितीय आकृति को यन्त्र कहते हैं जो किसी देवता विशेष को प्रसन्न करने के उद्देश्य से बनाया जाता है देखिये कुलार्णव-तन्त्र, ६०-६४-६६., रामपूर्वतापिनी उपनिषद्, १०-१०६, शारदातिलक, ७.५३-६३.२४. अहिवृद्यसंहिता, अध्याय २३-२६, जिम्मर, मिथ्स ऐण्ड सिम्बल्स इस इष्टियन आर्ट ऐण्ड सिविलाइजेशन पृ० १४० १४८

बीज उस सूर्य-देवता का है ॥८॥

प्रारम्भ में जो पन्द्रह संज्ञाये बतायी गयी है वह यह नहीं है । विन्दु सहित विसर्गों को यथाक्रम जानना चाहिये ॥६॥ अकार से प्रारम्भ करके ओंकार तक के वर्ण प्रथम केसर में विद्यमान है । ककार से प्रारम्भ करके हृकार के अंत तक द्वितीय केसर में विद्यमान है ॥१०॥ अकार से प्रारम्भ करके ऋकार तक यन्त्र संख्या के अनुसार चत्तास वर्ण<sup>३</sup> है यही उस देवता के हृदय पद्म के बीज योनि कहे जाते हैं ॥ ११ ॥ इसका ध्यान करके पापविहीन होकर मनुष्य बंधन मुक्त हो जाता है जो व्यक्ति विधिपूर्वक दीक्षा लिए हुये है इस बीज योनि से उत्पन्न होने वाले मण्डल में ॥ १२ ॥ निष्कल, सकल और सकल-निष्कल सूर्य का सारा स्वरूप व्यान-योग से प्राप्त करता है ॥१३॥ इस प्रकार साम्ब-पुराण में ज्ञानोत्तर नामक ५६वें अध्याय में तृतीय पटल समाप्त होता है ।

३. अरीर में ६ चक्र हैं और कुल ५० दल हैं वर्णभाला के अकार भी ५० हैं, देखिए काणे, हिन्दू आफ धर्मशास्त्र (हिं) ५- पृ० २४-२५

## अध्याय ५७

अब मैं वह तत्त्वज्ञान बता रहा हूँ जो इन बीजों से भी अधिक श्रेष्ठ है, जो ज्ञान अत्यन्त गोपनीय है और आदि-अंत विहीन है ॥१॥ सृष्टि के प्रारम्भ में धर्म के वशीभूत होकर आदि पुरुष ने समस्त जीव की सृष्टि की ॥२॥ सर्वप्रथम उस आदि पुरुष से अवर्ण<sup>१</sup> उत्पन्न हुआ जो न विवृत या न संवृत् ॥३॥ वह वर्ण उस विराट पुरुष के जिह्वा के मध्य में विद्यमान हुआ, वर्ण-संहार से इ और मन से उ वर्ण पैदा हुआ ॥४॥ उसके अन्त में विन्दु<sup>२</sup> उत्पन्न हुआ और सबके बाद शाश्वत प्रभु, वायु के निर्धारण से कंठ में विसर्ग युक्त हकार पैदा हुआ ॥५॥ बाद में अह से वर्णों की उत्पत्ति स्वयं हुई। अवर्ण के अपर वर्णों के साथ अनुलोम योग होने से एकार उत्पन्न हुआ ॥६॥ विलोम विधि से यकार उत्पन्न हुआ और औंकार तथा वकार उत्पन्न हुए ॥७॥ औंकार के ही साथ ह्रस्व, दीर्घ एवं प्लुत उत्पन्न हुए। ऋकार और लकार ये सब स्वर जिह्वा के अग्रभाग से उत्पन्न हुए ॥८॥

ये दोनों वर्ण परस्पर संहत हैं जिह्वा के मध्यस्थ हैं और अंशतः प्रविष्ट हैं ॥९॥ आकार और ऐकार इनका प्रारम्भ विन्दु ईकार का अद्व्युभाग है यही इन सबका विस्तार लक्षण है अब विद्यातत्त्व की सिद्धि के लिये स्पर्श

१. आदि-पुरुष से वर्णों की उत्पत्ति के लिये देखिए सर जान वुडराफ दी गारलैण्ड आफ लेटर्स, पृ० २१४-२२७.

२. विन्दु शक्ति के सर्जनात्मक तत्त्व को कहते हैं विस्तार के लिए देखिए सर जान वुडराफ, दी गारलैण्ड आफ लेटर्स पृ० १२६ १४२

वर्णों का उपदेश दिया जा रहा है ॥१०॥ कवर्ण आदि के मंदर्भ में जिह्वा के मूल भाग और दाढ़ी का परस्पर स्पर्श होता है ॥ तीसरे प्रकार के वर्ण वे हैं जिनमें तालु का स्पर्श होता है ॥११॥ और चतुर्थ वर्ण के वर्ण वे हैं जिनमें मूर्धी भाग का स्पर्श होता है, पाँचवे वर्ण के वर्ण वे हैं जिनमें होठों का स्पर्श होता है ॥१२॥ लकार दन्तमूल में उत्पन्न होता है और चौथा वर्ण अर्थात् तबर्ण हौड़ और दोतों के संयोग ने उत्पन्न होता है ॥१३॥ उष्म वर्ण नासिका से प्रभावित होते हैं ॥ ये सब वर्ण आद्यान्त विहीन हैं और सृष्टि करने के इच्छुक उस सूर्य देवता से उत्पन्न हुये विद्या-तन्त्र की वृद्धि के लिये इन्हें जानना आवश्यक है ॥१४॥ अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, झू, लू, छू, ए, ऐ, ओ औ अं और अः ये सोलह स्वर हैं । क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, अ, ट, ठ, ड, ढ, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, यह स्पर्श वर्ण हैं । य, र, ल, व, यह चार अन्तस्थ वर्ण हैं । श, प, स, ह, यह ऊष्मवर्ण हैं । क ख ग घ ये यम वर्ण कहे जाते हैं । नपुंसक वर्णों के विषय में तृतीय अध्याय में बताया जायेगा ॥१६॥

इस प्रकार साम्ब-पुराण में ५७वें अध्याय<sup>१</sup> में ब्रोजोत्तर नामक चतुर्थ पटम समाप्त होता है ।

१. इस अध्याय का रचना काल १२५०-१५०० ई० के भूष्य माना गया है देखिए हजारा-बही, पृ० १३

## अध्याय ५८

प्रारम्भ में गिनाये गये स्वर हैं और बाद में आये हुए वर्ण स्पष्ट संज्ञक हैं ॥१॥ द्वितीय के अन्तिम चतुर्थ ये उत्तम माने गये हैं चतुर्थ वर्ग के तीन वर्ण और तृतीय वर्ग के दो वर्ण श्रेष्ठ हैं ॥२॥ द्वितीय और प्रथम वर्ग के चार वर्ण अनुनासिक कहे जाते हैं ॥३॥ यही वर्ण शोभन जन सृष्टि के मूल इनमें से चार वर्ण विवर्ण कहे जाते हैं और तीन विन्दुओं से दीपित हैं ॥४॥ स्वरों की यह सन्तति दीपनी है, बीजिनी है और पावनी है जो श्रेष्ठ निवरण को इच्छा करे, उसे नित्य इन वर्णों का जप करना चाहिये ॥५॥ यह चालीस अक्षरों की अविनश्वर सृष्टि परमशक्ति मूर्य द्वारा संसार में चारिणी के रूप में स्थापित कर दी गई है और यह परम शक्ति<sup>१</sup> से समन्वित है ॥६॥ इस प्रकार ५८वें अध्याय में ज्ञानोत्तर बीजप्रसव नामक पंचम पटल समाप्त होता है ।

---

१. अक्षरों को उत्पत्ति के लिये देखिए काणे, हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र (हिं) ४, पृ० ५१

## अध्याय ५६

इन वर्णों के क्रमशः सात विभाजन हैं और प्रणव आदि वर्ण तीन प्रकार से भिन्न हैं ॥१॥ प्रणव को अन्तस्थ और सप्तम प्रसव माना जाता है । इन वर्णों के जो आदि पद हों उनको अन्यों से युक्त करना चाहिये ॥२॥ समस्त सृष्टि के प्रवर्तन के लिये यही वर्ण-योग्य मुख्य हैं और प्रतिलोम विवान से सृष्टि होती है ॥३॥ इस प्रकार साम्ब पुराण के ५६वें अध्याय में जानोत्तर बीजस्वर प्रसव नामक छठा पटल समाप्त होता है ।

## अध्याय ६०

इसका यहन पूर्वक ध्यान धरना चाहिये क्योंकि यह वर्ण समुदाय समस्ते  
संसार की सेवा करता है। यह आत्मतंत्र में विद्यमान भवचारिसी परम  
शक्ति है ॥१॥ अँ अँ इँ अँ यह व्योम व्यापी (सूर्य) के लिये है ॥ सातों  
के अनुषंग<sup>१</sup> से ऋगशः वर्णों का सम्पुट होना चाहिये ॥ पादान्त में स्थित  
यह बीज नामक योनियाँ हैं । अँ अँ व्योमव्यापी सूर्य के लिये हैं अँ इँ और  
आँ यह व्योम के लिये है, अँ आ इँ ऊँ व्यापित व्योम के लिए है । ऊँ इँ अँ  
अँ व्योम व्यापी के लिए भूति<sup>२</sup> का चुम्बन करे । इस प्रकार मैंने  
विस्तार पूर्वक वर्णों की प्रकृति<sup>३</sup> बताई ॥२॥ अब कल और आत्मा का  
प्रसूति मंत्र राज की मुक्ति के लिए बताऊँगा जैसा कि शास्त्र का  
विनिश्चय है । हे प्रभु ! यह सम्पूर्ण संवत्सर तीन नासिकों वाला चक्र  
है ॥३॥ उस चक्र का मैं बारह तीलियाँ हैं और तीन सौ साठ दिन और  
रात्रियों का इनमें मिश्रण है<sup>४</sup> ॥४॥ इनमें कला, मुहूर्त, दण्ड और  
निमिष प्रतिष्ठित हैं उसका आधा शब्द देहमय विश्वात्मा है ॥५॥ पाँच  
से युक्त सप्तक जो कि चारों ओर से विन्दुओं से युक्त है वही विद्वानों  
द्वारा १६ से वर्धाँ हुआ है त्रिनाभि कहा जाता है ॥६॥ दूसरा सात से

१. शब्दों का धारस्यरिक सम्बन्ध
२. विभूति
३. वे० में प्रभूति मुद्रित हैं, प्रकृति होना चाहिये ।
४. तुलना कीजिये बिष्णु पु०, २०८.१-२०.

बद्ध कहा गया है जिसकी परम कहा गया है वह नाभि के गर्भ में रहता है जिनके सात कारण हैं जो शूचिका को व्याप्त करके रहता है ॥७॥ ६ दीर्घ स्वर है तीज और नव में छः घटाने पर ३३ वर्ण स्वर के साथ स्थित होते हैं ग्रह (६) और नक्षत्र (२७) कारण को व्याप्त कर ऊपर वे स्थित हैं ॥८॥

अब मैं आगे कह रहा है कि इस तीस को ३ से गुणा करने पर ६० संख्या बनती है। शलाका में शब्द विद्यमान है उसमें बीस है ॥९॥ २४ संख्या उसको बढ़ाकर बैठाना चाहिये। इसके १६ भेद होते हैं। मध्यमा के दो कारण हैं ॥१०॥ २ तीस और ६ ये दो कारण हैं। १० पदों में ये आयेंगे। विद्येश्वर के लिये एक लाख जप करना चाहिये ॥११॥ कारिका, (करका') पर्ण शक्ति ये सात हृदय में सिद्ध होते हैं। ३५ आँ ई ऊं तथा व्योम व्यपिन ओम ये पांच विद्येश्वर प्रस्ताव में सिद्ध हैं। अ आई उऊकृकृल्लू एएओ औ अं अः ये १६ तत्त्वज्ञान में सिद्ध होते हैं। कखगघड चछजङ्गज टठडहण तथदधन पफबभम यरलवशषसह-ये ३३ स्पर्शं ज्ञान में सिद्ध हैं। आहव<sup>२</sup> का प्रत्येक अक्षर आसन में समझना चाहिए। यह प्रथमा प्रविष्टि है। चार ३५ बारह वर्ण हो सकते हैं। अलग से इसकी व्यवस्था है अतएव यह प्रकृत कारण से प्रसिद्ध है।

इस प्रकार साम्ब-पुराण में ६०वें अध्याय में ज्ञानोत्तर में सोमसूत्र नामक सातवाँ पटल समाप्त होता है।

१. वज्र का द्योतक।

२. अनुवार, विसर्ग, साम्ब-पुराण ६१.६.

## अध्याय ६९

नाभि से उत्पन्न होने वाले ये तीन वर्ण (ङ = अ, ऊ, म) सर्वत्र प्रथम पद हैं, परमपद है प्रत्येक के मध्य में और सभी में विद्यमान हैं ॥१॥ ओंकार से अदीप्त अकार से लेकर मकार तक के समस्त वर्ण समस्त दिशाओं में अतिष्ठित हैं ॥२॥ अकार से लेकर मकार पर्यन्त जो दीर्घ वर्ण है नैऋत्य दिशा में रहते हैं। इ वर्ग से युक्त पकार वर्ण वायु की दिशा में आश्रित हैं ॥३॥ एकार से युक्त न ईशानकोण के बाहर अधिष्ठित हैं पहला दक्षिण में है, दूसरा उसके भी दक्षिण में है पुनः आठ बाहर में है ॥४॥ दूसरे में मकार होते हैं। ऊकार और रेफ यह तृतीय पद में आश्रित हैं ॥५॥ अकार से दीप्ति होने वाला पकार वर्ण नैऋत्य कोण में स्थित है और उसके उत्तर में पकार का द्वितीय अर्थात् फ स्थित है ॥६॥ इस प्रकार विन्दु नीचे शुभ पूर्व पक्ष को पूरित करता है। जैसे इन वर्णों वाला यह पूर्व पक्ष है इसी प्रकार इनका उत्तर पक्ष भी होना चाहिये ॥७॥ दो अकारों में भेद नहीं है अक्षर में ही उसका निश्चय होता है ॥८॥

अ, क, च, ट, त, प, य, श अकारों के ८ वर्ग प्रसिद्ध हैं। ओंकार ऊपर और अनुस्वार और विसर्ग बाद में होने चाहिये ॥९॥ ऐकार तथा दो आद्य स्वर (अ, आ), से युक्त नंकार विन्दु दीप्ति होकर मन्त्र बनाता है उसमें पहला दीर्घन्ति है जैसे नैः उसके पश्चात् नं, उसके बाद नां, उसके बाद नः ॥१०॥ थकार और यकार प्रकृत स्वर से युक्त होकर तथा नाकार ये चारों विसर्ग से युक्त होकर मन्त्र बनाते हैं (अर्थात् श्यः श्याः नाः) ॥११॥, ओंकार के बाद य, ह, वा को जोड़ना चाहिये

इ से लेकर न पर्यन्त विसर्ग से युक्त होते हैं यही भाषा है। इसके बाद इसमें व्यापिने, शिवाय, अनंताय, अनाथाय जोड़ना चाहिये, अनाथ का अर्थ मधुमास है। इस प्रकार दूसरी प्रधि<sup>१</sup> सिद्ध होती है। त अक्षर मेरेफ नीचे और अनुसार ऊपर दीर्घ से युक्त करने पर मन्त्र बनता है (त्रा)। उसके बाद ह्रस्व उकार से युक्त वकार (वु) बनता है ॥ १२ ॥ य से लेकर श तक में य को ओंकार से युक्त करना चाहिये और अन्य अनुस्वार से युक्त होगी। र इकार से युक्त होगा ॥ १३ ॥ अ से लेकर श पर्यन्त जो द वर्ग है ये सब दूसरे अर्थात् दीर्घ आ के साथ और अनुस्वार विसर्ग के साथ युक्त होकर मन्त्र बनाते हैं। इसके बाद ओंकार लगाना चाहिये। और पोडशस्त्र ध्रुव, शाङ्खत योग पीठ, लगाना चाहिये। मन्त्रों की तीसरी प्रधि समाप्त होती है ॥ १४ ॥ आद्या<sup>२</sup> यतोयकारः स्याज्ञाहताश्वस्वरेणवः ॥ अंतरंचन मस्कारौविसर्गश्चान्त्यतः पदे ॥ १५ ॥ विद्वन्तः पूर्वपक्षोन्तं विसर्गश्चोत्तर ध्रुवः ॥ वसन्तएषविज्ञेयस्त्वमेग्रीष्मादयः श्रुभाः ॥ १६ ॥

हवोअहवाअधस्तात्वयोमअथमुपरिष्टात् ॥ इशावःआतअयइनतपअम उपजामम ॥ आषयआसावरचआरअयषोडशोविसर्ग ॥ स्थितायपरित्यागिते ध्यानहाराय अँ नमः सिद्धाः चतुर्थीप्रधिः द्वितीयान्तः माधवोमासः ॥ तसंतर्तुः विसर्गवास्तुमः शुक्लेप्रकृत्यन्तः शावयुतः ॥ स्वरवंतौयशीज्ञेरेफाद्यन्तौपयो स्मृतौ ॥ भक्तारान्तोवकारस्तुप्रसवांसर्वं दैवहि ॥ यश्चेज्ञानस्तथान्यश्चस्पृष्टोदिष्टः सविन्दुकः ॥ १७ ॥ अक्षेटतपयशाभवेदधस्ताव्योमअयमुपरिष्टात् अमद्यथावअपमभरअपरअभयेवइशबायअयइआस आसअग्नेषोहशत्वम्

१. तन्त्र के अनुसार जहाँ मन्त्र की समाप्ति हो उसे प्रधि कहते हैं।

२. यहाँ से लेकर ४९ इलाक तक पाठ अक्षरों से मन्त्र बनाने की रहस्यात्मक विधि से सम्बन्धित है अनुवाद उचित नहीं है अस्तु मूलपौठ प्रस्तुत है ।

३५ नमोनमः सर्वप्रभवेऽशानाम् असिद्धापंचमी प्रधिः ॥ उकारोदीपित्तोमः स्याद्रैफादिन्द्रायुधोधनुः ॥ स्वरवन्तौयतौतेनयुक्तयनुतयाभवेत् ॥१८॥ स्वरवं तौपञ्चौकादिरेफान्तश्चयथायुतः ॥ पश्चात्खद्योत विज्ञेयोहृदयश्चयथोदितः ॥१९॥ भवेदधस्ताद्योमअयमुपरिष्टात् ॥ यमआरदधनयः अतत्तुषडः असः अबआकतरअय अउधअरक्षह अदः षोडशोविसर्गः ॥ मूढवितल्युर्षायव्यक्तायअघोरहृदयायच ॥ अतः स्तृतीयोरः शुक्रोमासः सिद्धाषट्टी प्रधिः ॥ असौयययतोन्यश्चहृस्वोषश्चायतोयतः ॥ मदमोमध्यमैकारादगुकानेणवदीपिता ॥ २० ॥ वदीर्घश्चैवदीर्घः स्पात्स्वरवन्तीयशीततः ॥ दकारादिर्घऽतुश्च स्याद्वीर्घोयस्तः स्वरेणाच ॥ २१ ॥ उकारवान्मकारः स्याद्रैफादितन्मनोन्नतः ॥ यहैहन्तेचबिदुः स्यात्पक्षेशुक्लेतुपूजितः ॥२२॥ कचटतपयसाः चारिणिअधस्ताद्योमअयमुपरिष्टात् ॥ आयअयआचअमयपदभववऊआइयअयअस उदयआयअतउम अरतः पायवासदेवगुह्यायसद्योजातायमूर्त्ये ॥ असिद्धास-प्तमीप्रधिः ॥ ऐकारान्तोयकारः स्यादक्षारंपरमं पदम् ॥ नकारोनमश्चस्य-स्ततोगाम्यादुकारवान् ॥ २३ ॥ हीद्यायदश्चयस्तस्मादिकारान्तस्तथैववत् ॥ आवेद्विद्विधिपुनर्यश्चगतकांतः सउत्तनः ॥२४॥

एकारान्तोसरेफौद्वौतदन्तेस्वरएवच ॥ तावेतैग्रैष्मिकौमासौनमोतः संप्रव-  
क्षयते ॥२५॥ चारिणिअधस्ताद्योमअयमुपरिष्टात् ॥ ऐष अँ डअन अँ डम  
अनबमडगमाहयहतङ्गम्पृहयः अँ डयस्तत्तरः अषोडशोविसर्गः ॥ अँ यः अँ  
नमोनमोनमः गह्यातिगुह्यायगोप्तेनशाचतुर्थोचः ॥ शुचिमसिंग्रैष्मअहतुः-  
सिद्धाअष्टमीप्रधिः हकारान्तोनकारः स्पादस्तुतआयतः स्वरः ॥ स्वरवंतौय-  
शीतश्च रैफादीरोयुनश्चयः ॥२६॥ गोदीर्घाथःप्रकृत्यन्तः ककारस्तवचदीर्घवान्  
यकारः स्वंर वान्जादियश्चैवोकारदीपितः ॥ २७ ॥ हकारान्तस्तथाकारोरेक  
ऊकारवास्ततः ॥ बिन्दुरत्यपदोजेयोनभस्मः पूर्वपक्षकृत् ॥२८॥ अकचटतव-  
यशाअत्मतंत्रे ॥ अधस्ताद्योमअयमुपरिष्टात् ॥ हेतअध आरीअपअसारव  
उप आगहेषसक आतअौपउजयहेतउतनिधनायसर्वगोधाकृताकष्टोतिरूपसिद्धा  
नवमीप्रधिः ॥ षोडशच्चपरोदीर्घः एकारः स्यात्पराश्चये स्वरोदीपितः ॥ आच-

इच्चेत्यान्नास्युश्चशुश्रवैकारेणदीपितः ॥ २६ ॥ व्याख्यातोवैनमस्त्वेषयथान्  
वह्नक्षणान्वितः ॥ नमश्चैवोच्यते भूयोयथावर्णोयथाक्लमम् ॥ ३० ॥ आत्मतेऽन्  
अधस्ताद्वृद्धौमव्यमुपरिष्टात् ॥ आयअयअयअरआपअयन्तर अपअपयअतंजन  
एवविसर्गःषोडशः ॥ अजायपरमेश्वरपरायअचेतन अपंचमोत्तमोमासः सिद्धाद-  
शमीप्रधिः ॥ स्वरएवास्तुतवनव्योम्निस्यात्सानुनासिकः ॥ पुनः सत्यश्चदीर्घ-  
श्चपश्चात्स्यादिनकारवान् ॥ ३१ ॥ अयमेवमथाप्रमेयश्वरेकउकारादीपित ॥  
पूर्ववच्चयकारः स्यात्तत्सर्वपुनरेवतु ॥ ३२ ॥

अकचटतपयशात्तदितिमिथते ॥ अवस्तादव्योमभ्यमुपरिष्टात् ॥ अवअन  
उवयद्वयनआवयद्वयनआवय इवनअधरपोडशोविसर्गः ॥ लेनव्योम्निऽअङ्गहित्  
अरूपंसिद्धाएकादशीप्रधिः ॥ परेपिन्यश्चरेकान्तः स्थश्चनस्यान्स्वरवस्तुतः मकारः  
प्रथमाश्चेत्स्युस्नेजश्चविविसर्गतान् ॥ ३३ ॥ योगीन्तस्थः प्रकृत्यंतोविसर्गश्च  
पुनश्चत्तौ ॥ नमस्वापव्याख्यातोवपरिष्यश्चक्षतुश्चयम् ॥ इनस्त्वमेअधस्ताद्  
व्योम अथमुपरिष्टात् इयनअपरअयअमएतअयऐतअपद्रतःपोडशोविसर्गः यिनः  
प्रथमः ॥ लेजः ॥ ३५ ज्योतिः ३५ षष्ठीवः नमस्योगासः ॥ वर्णस्यक्षतुः ॥  
सिद्धादशीप्रधिः ॥ इषआदिगकारः स्याद्ग्रुषाच्चतदनन्तरम् ॥ अश्चलोलग्न  
एकारंआद्यः स्यात्तदनन्तरम् ॥ ३४ ॥ वृकारश्चयआश्चश्चभस्मेशाच्चन्तर्पूर्वच ॥  
अकारादिपितीनः स्यादश्चैकारेणदीपितः ॥ ३५ ॥ कचटतपयशाभूतिरथस्ताव्यो  
मअयमुपरिष्टात् ॥ अदुरः अयमअनअग्नजभवअमअन्यसम जआवपऐपोडशत-  
त्वअरूपअनग्नेअधूपअभस्मअनदियसिद्धात्रयोदशीप्रधिः ॥ दीघनिकाराश्चत्व  
रोधूकराश्चतथैवच ॥ ऊकारात्तसमोज्ञेयः सोक्षरोभयदीपितः ॥ ३६ ॥ पुनविस-  
र्गंरहितोरस्वोवसुविसर्गवान् ॥ अक्षरश्चोयवक्रान्तोविसर्गेणविभूपितः ॥ ३७ ॥  
भूरधस्ताद्ययोमव्यमुपरिष्टात् ॥ आनआनऊधऊव ३५ ३५ रभउभ ३५ आवस-  
षोडशः ॥ नाना नानाधूवधूधू ३५ भूः ३५ भूवः ३५ स्वः आसप्तमौरसः इषोमासः ॥  
सिद्धाचतुर्दशीप्रधिः ॥ ऊज्ज्ञस्योर्कादिः स्यान्नदेकारेणदीपितः ॥ स्वरवन्तो-  
ष्णनो भूयोनिधौनः परिकीर्तितः ॥ ३८ ॥ ओकारान्तोनकारस्याद्गादिभौवस्वरा  
पितः ॥ प्रकृत्यासोमकारश्चैशकारोविदुरेवच ॥ ३९ ॥ अकचटतपयशा-

मटीरधस्ताद् व्योमअयमुपरिष्टात् ॥ आइतअधः अमइनअवअनइनअधः ३०  
नअदभअवइश अवः अमषोडशतस्त्रिं अनिवननिधालोद्गवशिवशः ॥ सिद्धापंच द-  
गीप्रधिः ॥ रेफपूर्वोद्गकारस्यात्परोस्वरेणमानवः ॥ आदिर्मध्य, ह्यकारेणम  
वारश्चस्वरान्वितः ॥ ४० ॥

पकारादीपितोहश्चसाक्षादीर्घेरमाततेः ॥ हकार अपतोदस्यादेकारेणतुदी-  
पितः ॥ ४१ ॥ वः स्यात्स्वरवान्नरश्चदकारोभयतस्तथा ॥ अंतवतीशरेखालक्षण  
तश्चशरदृतुः ॥ ४२ ॥ महावस्तादः व्योमअयमुपरिष्टात् ॥ अरचअपअरआम  
अतमनपअसवअरअमआहयत अवअसआद्यः षोडशोविसर्गः पूर्वपरआत्मनेमहे-  
श्वरमहादेवसमाः अष्टमीदीरः ॥ ऊर्जोमासः ॥ शरदृतुः ॥ असिद्धाषोडशी  
प्रधिः ॥ ऐकारांतः सहेवः स्यात्तरादिस्तुद्धांतवः ॥ नमौदीर्घौहकारः स्या-  
देकारेणतुत्तसह ॥ ४३ ॥ स्वरवान्वैजकारोद्वयशोकारेणदीपितः ॥ गआयतः  
प्रकृश्नावयकारस्तच्चपूर्ववत् ॥ ४४ ॥ वमव्योमधुकारेणदीपितौतुमविन्दुकौ ॥  
विद्वन्तः शुक्लपक्षः स्याद् व्योमन्तः स्थादिरुच्यते ॥ ४५ ॥ भूम्यधस्ताद् व्योम  
अयमुपरिष्टात् ॥ ऐवअसरअन्तअमआहऐतअजआयआयइवअवउमषोडशतस्व  
चेश्वरम् ॥ हातेजावायो गाविपतयेमुंचमांच ॥ असिद्धासप्तदशीप्रधि ॥  
चकारादिर्मणुषलेथस्याद्रान्तोयोमधौततः पुनरेतेशकाराफोदीर्घभूयउवचतौ  
॥ ४६ ॥ स्वरवंतौचभौद्विस्तौविसर्गश्चांतिमेपदे ॥ सहऐषसमाख्यातस्तसहस्य-  
सूयसंततः ॥ ४७ ॥ भूम्यमस्तादव्योमअयमुपरिष्टात् ॥ अवअपरअमअलअपरअल  
अपअथअशब्दरच अमअरअवषोडशोषविसर्गः ॥ वः प्रथमः ओम सर्वः ओम भवः  
ओम अनवमोनः ॥ सहोमासः ॥ सिद्धाष्टादशीप्रधिः ॥ भंजाजदिर्वंजोकारा  
तीदादिर्भः स्यात्स्वरंगवः ॥ शकारोवश्चुरेफांतोद्विरकारांतौन्तस्तस्तथा ॥ ४८ ॥

उकारवान्सश्वपीथरेफान्तः पादशौततः ॥ रेफादीर्घः सदीर्घत शुक्लोर्घिन्दु  
दीपितः ॥ ४९ ॥ हक्कोस की संख्या में प्रधि है । सूर्यभक्त को चाहिये  
कि वह सुसिद्धि के लिये ब्रत का आचरण करे जैसा कि आगे बताऊँगा  
बीज-तत्त्व (५०) के सहारे एक हजार प्राणायाम धारण करे ॥ ५० ॥ केवल  
वायु भक्षण करके शान्तचित्त से युक्त होकर पंचाग्नियों का सेवन क-

और तीन तीन दिन तक तीन बार जल में अथवा वाम में खड़ा होकर मन्त्र का जप करे ॥ ५१ ॥ गुरु की आज्ञा से उचित भक्ष्य ग्रहण करे। परिमित भोजन करना चाहिये। योग की नित्य विवि है ॥ ५२ ॥ इस पवित्र व्रत का पालन करके मनुष्य समस्त पातकों से मुक्त हो जाता है, समस्त सिद्धों द्वारा पूजा जाता है और उसका ज्ञान आगे बढ़ता है ॥ ५३ ॥ धनवान पुरुषों में जो दोपी होते हैं वे भी दिव्य मनुष्य हो जाते हैं। शरीर से उत्पन्न होने वाले समस्त दोष निभ्रय ही नाट हो जाते हैं ॥ ५४ ॥ मनोरम एकान्त में प्रत का आचरण करे और अपने ही समान सहायक रखे जो कि बीज-मन्त्र के जप द्वारा पाप से मुक्त हो चुका हो ॥ ५५ ॥ २१ इन्द्रियों से उत्पन्न होने वाली व्याधियों को समझ कर ललाट में पीड़न द्वारा निवारण करना चाहिए इसके निवारण से सभी विघ्नों का निवारण होता है ॥ ५६ ॥

समस्त देवताओं के आहारार्थ यथाक्रम सम्यक् आचरण करे। दरुण के व्रत<sup>१</sup> में पानी का आहार करें अथवा बकरी का दूध पीकर रहे ॥ ५७ ॥ उस शवितशाली वहन देवता के लिए जप करते समय इन विघ्नों पर ध्यान रखे-मेघों की गर्जना, विजली, बूँदि और समुद्र का झोभ ॥ ५८ ॥ वारुण व्रत करते समय मत्स्य आदि खाना चाहिए। आग्नेय व्रत<sup>२</sup> का आचरण करते समय कृष्णलाला गाव का शूत भक्षण करके व्रत-चरण करे। उसका सब कुछ शुक्ल वर्ण का होना चाहिये। वायु सम्बन्धी व्रत में मनुष्य वायुमक्षी हो और सफेद बकरी का दूध पिये ॥ ५९ ॥ इस

१. दरुण-व्रत के विस्तार के लिए देखिए कृत्यकल्पतरु, व्रत, ४५० हेमाद्रि, व्रत, २,६०२, मत्स्य पु० १०१. ७४. विष्णुष्मोत्तर पु० ३.१६५. १-३

२. किसी नवमी को एक बार, पुष्पों (पाँच उपचारों) के साथ विन्ध्य-वासिनी की पूजा, हेमाद्रि, व्रत, १.६५८.१६.

ब्रत में अशनिपात और 'भयंकर अंधी'-इनका विघ्न संभव है। लाल रंग की गाय का दूब पीकर इस ब्रत का आचरण करें ॥६१॥ तारों का टूटना अथवा किसी प्राणी की मृत्यु-ये पड़ने वाले विघ्न हैं। इन ब्रतों का आचरण करे ॥६२॥ इन्ही में से किसी एक ब्रत के करने से भूतियोनि नामक ब्रत होता है। जो अन्य ब्रत से सिद्ध नही होता वह इस ब्रत से सिद्ध हो जाता है ॥ ६३ ॥ देवप्रदत्त, भूमिजन्य और स्वदेहजन्य रोगों का मन्त्र निवारण करे ॥६४॥

सूर्य का ब्रत करते समय मनुष्य शाकाहारी रहे, साध्यों<sup>१</sup> ऋषियों और समस्त वसुओं<sup>२</sup> की भली भाँति उपासित करे ॥६५॥ यही विघ्न प्रशमन है और यही सम्पूर्ण मंत्रविधि है। अध्याय के बीच में सूर्य-तत्त्व और सूर्य-हृदय के मंत्रों का जप करे ॥६६॥ मनुष्य ब्रत करते समय दृढ़ आसन वाला हो, स्थिर मन हो, जितेन्द्रिय हो, ऐसा व्यक्ति उच्च कोटि की सिद्धि को प्राप्त करता है ॥६८॥ इस प्रकार साम्ब-पुराण में ६१वें अध्याय में शानोदर में शरीर-साधन नामक आठवाँ पट्ट द्वारा लिखा गया ब्रत है।

१. दिव्य प्राणियों का विशेष समूह, मनु०, १.२२, ३.१६५.

२. एक देव समूह जो आठ है—आप, श्रुत, सोम, चर, अनिल, अनुल प्रत्यूष, प्रभास ।

## अध्याय ६२

समस्त कार्यों की सिद्धि के लिए विधान बताया जा रहा है। संपुटो के तत्त्व कर्मों की सिद्धि के लिये है ॥१॥ अपनी देह को सकलीकृत करके प्राणायाम योजित करे। शिव नाम वाली और परमा नाम वाली योगि की हृदय और नाभि के संहारे ॥ २ ॥ वायु और अग्नि के नीचे ले जाकर नष्ट करे और बीच में प्राणवायु को ले आये। योगवित्त तुरन्त ही सिद्ध कर लेता है ॥ ३ ॥ ब्रह्मतत्त्व से तीन बार शोभित करने की क्रिया शुभ होती है ऐसा करने से जापक व्यक्ति शशुओं के गांव, नगर ॥ ४ ॥ घर और अनुलंघनीय महाबलवान् प्राण को भी नष्ट कर देता है जैसे अग्नि इनधन को ॥ ५ ॥ व्याघ्रि, दुष्ट बाधाएँ, भौतिक आथवा दैविक विषत्ति-इन सबको सूर्यब्रती मनुष्य शीघ्रता पूर्वक नष्ट कर देते हैं ॥ ६ ॥ पृथ्वी और अरुण के बीच में बीजयोगि होती है और पहले की भाँति यहाँ भी ध्यानयोग और प्राणयोग होता है ॥ ७ ॥ इन सब के अध्ययन में पूर्व विहित शान्ति का प्रयोग करे तो मनुष्य कृत-कृत्य होता है ॥ ८ ॥

किसी का द्रव्य अपहृत करने में, घरीहर लौटाने में, विनाश में और देवताओं का गृह (मन्दिर) उत्पन्न कर देने के कार्य में ॥ ९ ॥ योगी व्यक्ति इन क्रियाओं को करता हुआ सफल होता है जैसे वायु-युक्त अग्नि इनधन को ॥ १० ॥ जो कुछ भी संसार में विद्यमान है उसे संहृत करने में यह

१. ध्यान योग के प्रकार के लिए देखिए वुडराफ, इन्डोइंडशन टू कंनेक्टर्स, पृ० २३८.

व्रा<sup>१</sup> समर्थ है परन्तु जो व्यक्ति सन्देह से युक्त है उसके लिए अन्यथा फल होता है ॥११॥ साधक व्यक्ति जब किसी रोग से युक्त होता है तो इस व्रताचरण से तत्क्षण उन समस्त रोगों की नष्ट कर देता है ॥१२॥ स्थावर, जंगम अथवा कृत्रिम जो भी विष हो उसे तत्काल यह व्रत नष्ट करता है । यदि यह सम्यक रूप से प्रयुक्त किया जाय ॥ १३ ॥ शिवसंपुट से युक्त वारुण व्रत<sup>२</sup> में शान्ति के लिए बीजयुक्त भूत-योनि वाले वायु का ध्यान करे, क्योंकि वह वृष्टि कराता है ॥१४॥ इस वृष्टि से पड़विध रसों<sup>३</sup> की उत्पत्ति होती है । यह विशाल संसार वायु से ही आवेष्टित है ॥१५॥

सूर्य के अश्वों के मन्त्र का जप करें । उसमें योगियों की गति, मिलती है तथा नृण, व्याधि एवं विष का लोप होता है ॥१६॥ मंत्रार्चन में मनुष्य ध्यान धरे और होम करे । उद्घाटन में तथा संहार में दशात्मक की उपासना करनी चाहिये ॥१७॥ सर्वत्र वेष्टन करके शान्ति का प्रयोग करे । परमपुढ़ के मध्य में द्रव्यमन्त्र से पूजा करनी चाहिये । निसंदेह मन्त्रभागों से वंघक<sup>४</sup> सिद्धि प्राप्त होती है ॥१८॥ इस प्रकार साम्ब-पुराण में ज्ञानोत्तर नामक ६२वें अध्याय में नवम पटल<sup>५</sup> समाप्त होता है ।

१. लान्त्रिक पूजा में व्रत के महत्त्व एवं प्रकार के लिये देखिए इन्द्रोडवशन दू तत्त्वशास्त्र, पृ० १००.

२. वरुण-व्रत के लिए देखिए कृत्यकल्पतरु, व्रत, ४५०, हेमाद्रि, व्रत, २-६०५, सत्स्य पृ० १०१-७४; विष्णुधर्मोत्तर पृ० ३-१६५. १-३.

३. रस छः है कटु, अम्ल, अद्युर, लवण, तिक्त, और कषाय ।

४. इस अध्याय का रचना काल १२५०-१५०० ई० के मध्य माना गया है देखिए हाजरा, वही, पृ० ६३.

## अध्याय ६३

कभी-कभी सांसारिक कायों में लगे हुए साधक को दारुण रोग हो जाता है। और चिकित्सा से भी लाभ नहीं हो पाता ॥ १ ॥ मूलतत्व के एक ग्रह (सूर्य) को कोष्ठ में स्थापित करने पर भी तथा मनसा स्मरण करने पर भी पाप-मंत्रों से शान्ति नहीं हो पाती ॥ २ ॥ ऐसी स्थिति में ध्रेव से, चाण्डालों<sup>१</sup> की बस्ती से और अग्नि होव्र गृह से मिट्टी लेकर रोग का उपाय सोचना चाहिए ॥ ३ ॥ ध्रेव से, चाण्डाल बस्ती से तथा दूसरे द्विजों से लाई हुई इन सब मिट्टियों को परस्पर मिलाकर बांध ले ॥ ४ ॥ कपड़े में बांधकर उनकी तीन पोटलियाँ बनाये और समार्जनतट<sup>२</sup> में चरु<sup>३</sup> की क्रिया प्रारम्भ करे ॥ ५ ॥ इस प्रकार विधान करने से कौसा हो दारुण पातक क्यों न हो ॥ ६ ॥ किन्तु जब तक वह पोटली वर्जन में उबलती है तैसे ही रोग विनष्ट हो जाता है ॥ ७ ॥ बंधी हुयी पोटलियों को यथापूर्व स्थिति में रखकर वरण की आड़ति बनाकर और छुरे से चौरकर होम

१. वर्ण-संकर जाति जिसकी उत्पत्ति शुद्ध<sup>१</sup>पिता तथा आह्मा माता से मानी जाती है मनु० ४.१३१. १०.१२, १६, ११.१७५.

२. सम्भवतः भंगी-बस्ती से अभिग्राय है ।

३. उबले चाबल आदि से देवताओं तथा पितरों की सेवा में प्रस्तुत करने के लिये तैयार की गई आहृति को चरु कहते हैं दृष्टव्य रघुवंशा०, १०/५२; ५४, ५६ 'देवतार्थं परमान्नम्' भारती उद्धरित बुडराफ, महानिवण-संस्क० पृ० २२६, पाद टिष्पणी, ८.

कर दे ॥८॥

आहुति के अंत में रुधिर और विष मिथित तेल का दिया जलाये । और अन्य दो पोटलियों की जूल से तक्षित करके हवन कर दे ॥९॥ तृतीय भाग को बांधकर चह-किया का समारम्भ करे । इस प्रकार बलि निवेदन करके स्नान करे तो वह विधान रोग को तत्काल नष्ट कर देता है ॥१०॥ तत्काल मनुष्य चन्द्रमा की भाति निर्मल होकर शुद्धि प्राप्त कर लेता है इस प्रकार अपने हजारों रोगों का विनाश करके तब मनुष्य साध्या (माई देवी) की सिद्धि प्राप्त करें ॥११॥ फ़रीर अथवा भन के जो अत्यंत दारुण रोग हैं उन सारे यातकों को साधु सम्पत और कृतज्ञ सूर्य नष्ट करें ॥१२॥ राजा, विष तथा अन्यात्य वणी<sup>२</sup> के लोग जो साधना के लिए सुशोभ्य हैं वे इस विधान द्वारा आपत्तियों का नाश करें ॥१३॥ यह रुद्र का वचन है कि इन सिद्ध मंत्रों से विनायक<sup>३</sup> दोषों का विषात अवश्य करने हैं ॥१४॥ इस प्रकार साम्ब-पूजाण में ज्ञानोत्तर में दृढ़ अध्याय में दसवाँ पटल समाप्त होता है ।

१. वैदिक एवं पौराणिक परम्परा में भी सूर्य को रोगनाशक के हृप में चित्रित किया गया है देखिए वीवास्तव, सनवरशि । इन ऐन्सियन्ट इण्डिया पृ० ५४-५५।

२. राजा अर्थात् क्षत्रिय, विष अर्थात् ब्राह्मण तथा साधना योग्य अन्यात्य वणी का उल्लेख करके पुराणकार ने संकेत किया है कि समाज के सभी वण साधना के योग्य नहीं थे, यद्यपि तत्त्व-पूजा में जाति-भेद नहीं होता था ।

३. विनायक गणेश विघ्नो के विस्तार के लिए देखिए अतिस गेट, गणेश, पृ० ३. तथा भंडारकर, बैठणविज्ञ, शेविज्ञ ऐ०ड माइनर रेलोज़स सिस्टम्स, पृ० १४२.

## अध्याय ६४

अभिचार-विवि को सुनकर समस्त विषत्तियों को नष्ट करने वाला यह मंत्र है अथः पूर्णो, करव्रहो<sup>१</sup> तथा कूर भयंकर महावली भैरवो<sup>२</sup> को ॥१॥ तथा महामारी वाले कुर्लों में उत्पन्न होने वाले समस्त रोगों को नष्ट करता है यदि कोई मन्त्र-ज्ञाता व्यक्ति मृग्य-भूत-भयंकर यमजिह्वारे का धन्त करे ॥ २ ॥ इस यम-जिह्वा का आवाहन महारोद्र है, शत्रूपक के लिए भयंकर है। यह कंटकशाल<sup>३</sup> दक्षिण दिशा में किया जाता है ॥३॥

१. ऐ० में 'गृहान मुद्रित है' 'ग्रहान' होना चाहिए।

२. शिव का विनाशक रूप-इसके आठ रूप बताये गये हैं—असितांग, हर, चौड़, क्रोध, उभ्मत्त, कापानिन, भीषण, एवं सहार। कापानिक भैरव-रूप को पूजा करते थे देखिए ढंगिड एन०, लौरेजन, दी कारालिकाज ऐण्ड कालामुखाज, पू० द३०-६५, सामान्य जन में यह बारणा प्रचलित है कि भैरव भूत प्रेतादि के समान कष्ट देते हैं।

३. भारण का मत्त्रानुष्ठान।

४. तात्त्विक परम्परा में अभिचार किया को स्थान दिया गया है यद्यपि यह गौण महस्त्र भी है वर्तीकि अभिचार कियाये अस्थायी महस्त्र की है, तन्त्र-साधना का अन्तिम लक्ष्य आत्मज्ञान है। अभिचार किया से अभिग्राम है हिंसकर्म जिसके इ मुख्य प्रकार बताये गये हैं इसमें से इस अध्याय में मारण का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है। देखिए नारायण, दत्त श्रीमाली तत्त्वसाधना, पू० ६७-६८।



नैकृत्यको एवं अथवा इमग्रान् भूमि में विकोग पञ्चुङ्ग बनाये। केश से आच्छादित एवं कंटकों से घिरे हुये इमग्रान् में करता चाहिये ॥ ४ ॥ फिर उसमें द्वार बनाये जिसकी अंगता कांडों से कठियत की गई हो, अंतोंडियों की पाला हो ॥ ५ ॥ और चारों ओर से बहुत से तरमुण्डों से घिरे हों ऐसे स्थान में विकोग अग्निकुण्ड साधक बनाये ॥ ६ ॥ रक्त से सने हुये सूत से चारों ओर यज्ञकुण्ड लपेटे, जिसेन्द्रिय को इमग्रान् की राख से स्नान करता चाहिए और काला वस्त्र पहनना चाहिए ॥ ७ ॥ मन्त्र के आधाहन करने वाले की लाल पगड़ी ही, लाल यज्ञोपवीत हो, क्रोध में चढ़ी हुयी भूकुटियाँ हो, वह रक्तचन्दन लपेटे हों और सूत लिये हों ॥ ८ ॥

अभिचारबान को पुष्पयुक्त लौह निमित उत्तम शूल हाथ में धारण करना चाहिए और वह खैर में अथवा रक्त से लिप्त हो ॥ ९ ॥ बुद्धमान व्यक्ति को अभिचारबान के दीव में प्रतिमा निर्माण करना चाहिए और वह प्रतिमा शत्रु के मूत्र और पुरीष से एवं अंतराश से युक्त हो ॥ १० ॥ पैर से इमग्रान वाली मिट्टी को अच्छी तरह आलोड़ित करके और उत्तम दीपक की बाँधी की मिट्टी मिलाकर शत्रु की प्रतिमा बनायें ॥ ११ ॥ खैर

१. अंतोंडियों की माला, नर मुण्डों से घिरे होने का विधान कापालिक प्रभाव को प्रकट करता है देखिए डैविड, एन०, लोरेन्जन, दो कापातिकाज ऐण्ड कालामुखाज, पृ० ८५-८०.

२. तुलना कीजिए शुह्यसमाज, पृ० ८४-८६ जहाँ पारण अभिचार का वित्तारपूर्वक वर्णन किया गया है, देखिए शारदातिलक तन्त्र, २३-१२२-१२५, तथा प्रपञ्चसार २३-५. अत्थवा पुराण ८३-१४६-५५. में विद्वेष्टु के संदर्भ में इसी प्रकार के अनुष्ठान का उल्लेख है। तुलना कीजिये अरित पृ० अध्याय १३८. अहिन्दुक्यसंहिता, ५२-२-५८.

## साम्ब पुराण

१ लकड़ी से उस प्रतिमा में ऊपर केश बनाये और प्रतिमा के चारों ओर इश लपेटकर शत्रु के प्राणों को नष्ट करे ॥१२॥ तदुपरान्त विचक्षण उस शत्रु प्रतिमा के पैरों को और मस्तक को शूल से काट दे । लोहे की स्त्रुवा कर होम करे ॥१३॥ अभिचार की यह विधि दस प्रकार की बताई गई -काले बकरे, ऊँट, हाथी, पतंगों के रक्त से एवं ॥१४॥ विष, गन्दे तेल और चारों बणों के मनुष्यों के खून-से अभिचार विधि सम्पन्न करें, ये हाथ में स्त्रुवा लेकर दक्षिण की ओर मुँह करके ॥ १५ ॥ कोधपूर्वक नो संघ्या वेला में फटकार सहित मन्त्र साधक हवन करे, तीन नररुणों ऊपर बैठकर दो नरमुणों के ऊपर पैर रखे ॥१६॥

मनुष्य को ऊर्ध्व, शुक्ल एवं तरुण लकडियाँ से हवन करना चाहिए । तक से सनी हुई खैर और नीम की लकड़ी से यज्ञ करे ॥१७॥ बुद्धिमान यथोक्त अन्य वस्तुओं से रहस्यात्मक होम करना चाहिए । जब तक पना कोष नष्ट न हो जाये तब तक प्रकुपित होकर यज्ञ करे ॥१८॥ त्योऽ मे कहा गया कि यह अभिचार अपनी सिद्धि के लिए करना चाहिये । अभिचार से साधकों को तेरह प्रकार की सिद्धि होती है ॥ १९ ॥ शत्रु का द्वेष-परित्याग, व्याधि, धन सम्पत्ति का नाश, उनमत्ता, अंधता सी अंग का नाश ॥२०॥ बध, वंधन, राजा का उसके ऊपर कोधित जाना, अकस्मात धन का क्षय, भाग जाना, भिक्षावृत्ति, अरथ इन-ये १३ प्रकार की सिद्धियाँ हैं ॥२१॥ इन उद्देश्यों से दीप्त एवं शुद्ध तके विधिपूर्वक साधना करे तो मंत्र अवश्य ही सिद्ध होता है ॥२२॥ द्विन होने पर अपने मंत्र का ही उत्ताडन होता है और साधक को यह हानि होती है ॥२३॥ इस अभिचार कर्म में शृष्टि होने से कोधित शृणु-पीडित मनुष्य स्वयमेव प्राणहीन होकर माण सर में देह छोड़ मृत्यु है ॥२४॥

२. छ: वेदांगों में से एक जिसमें यज्ञ का विधि-विवान निहित है तथा यज्ञामुण्डोनों एवं धार्मिक संस्कारों के नियम लिखे हैं ।

और प्रतिलोम विधि से प्रयोग करने पर इन्द्र और ब्रह्मा सहित गवकों तत्क्षण नष्ट करता है ॥२५॥ जब साधक मनुष्य संशयापन्न हो जाये तो आपत्तियों में इस मंत्र का प्रयोग करना चाहिए ॥ विपत्तियाँ शारीरिक और मानसिक दो प्रकार की बताई गई है ॥२६॥ शारीरिक कष्टों को त्याधि कहते हैं और मानस कष्टों का बहुत विस्तार है ॥२७॥ जब कोई साधक इन दारुण उपसर्गों<sup>१</sup> से पीड़ित होता है तो होम-मंत्र पुरस्कृत करके इन सिद्ध वाक्यों (मंत्रों) का प्रयोग करे ॥२८॥ निःसन्देह सच्चे साधक के ये योग वुद्धि से सिद्ध हो जाते हैं जो स्त्रियों के लिए लालायित हैं अथवा धन की चिन्ता में रत है उनको सिद्धि नहीं मिलती ॥२९॥ जो लोग पर स्त्रियों में, अपनी भार्णी में, शूद्र भार्या में अथवा परकीयाओं में अनुरक्त हैं, जो क्रिया लोभी, अनुरीषी, व्यसनी, तृष्णा द्वारा आहृत हैं ॥३०॥ ऐसे व्यक्ति भी इस विधान के लिए अग्राह्य हैं जो व्यक्ति आचार्य का अत्यन्त भक्त हो, तपस्वी हो, जितेन्द्रिय हो वह ही इसे सम्यक रूप से जानकर समस्त रोगों का विधात करता है ॥३१॥ इस प्रकार साम्ब-पुराण में मारण अभिचार वाले ६४वें अध्याय<sup>२</sup> में ११वाँ पटल समाप्त होता है ।

१. कीर्णं हन्युँचोपसर्मः प्रभूताः, सुश्रूत, उद्दरित आष्टे, वही,  
पृ० २१२.

२. वे० में क्रियालोपी मुद्रित है 'क्रियालोभी' होना चाहिए ।

३. यह पूरा अध्याय तान्त्रिक शैव प्रभाव से अनुप्राणित है इसकी तिथि १२५०-१५०० ई० के मध्य निश्चित की गई है देखिए हाजरा, साम्ब-पुराण ए सौर वर्क आफ डिफरेन्ट है इस, अनाल्स आफ भंडारकर औरियन्टल रिसर्च इन्स्टीच्यूट, भाग ३६, पृ० ८३.

## अध्याय ६५

अब मैं अंग प्रत्यंग के योग से उत्पन्न होने वाले नेत्रों को बता रहा हूँ। दोनों के अर्थ को जानने वाला मंत्रवेत्ता इसके द्वारा शब्दों को मारता है॥१॥ इस बीज<sup>१</sup> के प्रारम्भ में धातक (पुरुष) पहले बीजयोग से योनिस्थ स्थान स्त्रम्भ का निर्देश करे॥२॥ दोनों नेत्रों में धौर कानों में पीला रंग, मुख में सिन्धुर वर्ण, भूजाओं धौर कन्धों पर हरा, उदर में काला॥३॥ गुदा के अंगों में बहुरंगी, जांघों में नीला और विनकदरा, पैरों में कुकुट वर्ण प्रयुक्त करे और समस्त अंगों में बलि एवं माला धारण करे॥४॥ तब अपने स्थान में पूजा करे और विदरीन प्रक्रिया से रोग का नाश करे। जब व्याविं इस प्रकार प्रेम माला से पूजन होने पर भी नष्ट न हो॥५॥ तब मंत्र करने वाले शारद्वारा उत्तमा नियम करना चाहिये और उसे वर्णों से दृढ़ योनिस्थ की कीर्तिकरके रक्षा करनी चाहिए॥६॥ सिर पर बेल, मुख तथा नेत्रों में जमा हुआ द्वय, कानों में गायक, एवं कील का प्रयोग करे॥७॥ वृक्ष पर शाकज्ञ<sup>२</sup> और पीठ पर बादर<sup>३</sup> में लदा अन्य अधोवत्ती अंगों में चन्दन, जंघों में शनि<sup>४</sup>॥८॥

निचले शरीर में देवदारु इस प्रकार क्रमशः अंदरित सब और और प्रत्येक स्थान में कील रखें और॥६॥ बुद्धिमान विनाश कार्य के लिए

१. बीजमन्त्र

२. सामौन अथवा शिरीय का वृक्ष

३. कृपासु अथवा बैर का वृक्ष

४. अस्त्र की नोक



श्लोभमातक<sup>१</sup> और विभीतक<sup>२</sup> का प्रयोग करे तथा सभी कर्मों में कीलों का सहचर रखें ॥ १०॥ अथवा रक्त से आकृति को स्नान कराए और कील रखें, रोग का श्रेष्ठ घात करना चाहे तो घातक विनाशक देवता का ध्यान करे ॥ ११॥ अदृश को उतार कर शान्ति प्रवर्तित करे । इस प्रकार का विधान करने से चाहे स्वयं ब्रह्मा ही क्यों न हो लेकिन वह भी दर्शाग्नि से नष्ट हो जाता है ॥ १२॥ विघ्न करने वाले शत्रु की आकृति सदैव मांस में बनाई जाती है और उसकी मूर्ति को परशु से संक्रमित करना चाहिये ॥ १३॥ बुद्धिमान साधक को चाहिये कि धीरे धीरे मांस से ही योग्य ब्रीज के स्थान में सभी और उसका संहार करे ॥ १४॥ समस्त अंगों में उत्पन्न होने वाले रोग इस विधान से चिकित्सा करने योग्य होते हैं । मन्त्रिण उन्हें खेल खेल में ही समाप्त कर देता है ॥ १५॥ जो जो कीलक इस विधान में बताये गए हैं चार माला के उपर्यार से उसकी चिकित्सा करनी चाहिए ॥ १६॥

इस प्रकार साम्ब-पुराण में ६५वें अध्याय में १२ पट्टल समाप्त होता है ।

१. लिसोड़े का वृक्ष

२. बहेड़े का वृक्ष

## अध्याय ६६

जब मन्त्रज्ञ सार्वजीकिको सामान्य चिकित्सा को किसी राजा द्वारा प्रार्थना किये जाने पर करता है तो इस विधि का पालन करना चाहिये ॥ १ ॥ नायकों<sup>१</sup> की शान्ति के लिए ब्रत का आदेश पहले किया जा सकता है। अद्भुत-होम के द्वारा विनायक-तत्त्व<sup>२</sup> की शान्ति करे ॥ २ ॥ समस्त कार्यों में सावक व्यक्ति अपने शरीर से नष्ट करे इसलिए समस्त उपद्रवों की शान्ति के लिए ब्रत करना चाहिये ॥ ३ ॥ अन्यथा मंथनीन हो जाता है। अपने शरीर से यज्ञ करना चाहिये। मंत्री को चाहिए कि श्वेत वस्त्र धारण करके श्वेत माला पहन करके अनुषेष्ठा करके मंत्री ॥ ४ ॥ जितेन्द्रिय बनकर, प्रशान्ततमः बनकर, श्रेष्ठ की तरह मौन होकर सुनियंग्रित होकर शुद्ध वर्ण वाली, विशुद्ध वर्ण में उत्पन्न हुयी स्त्री<sup>३</sup> के साथ लेकर ॥ ५ ॥ उसके साथ दस दिन ब्रह्मचर्य-ब्रत का पालन करे। मूढ़ होकर मन से भी सभोग न करे ॥ ६ ॥ दस रात्रियों के बीत जाने पर द्वितीय वर्ण वाले ऋत्रिय शरीर को समस्त पीले वर्ण वाले शुंगारों से विभूषित करके ॥ ७ ॥ श्रेष्ठ मन वाला, दृढ़ चित्त होकर ऋत्रिय का पति बनकर उसी ब्रह्मचर्य का पालन करे। वैश्य मृण से युक्त होने पर

१. प्रधान देवताओं से अभिप्राय लगता है।

२. विनायक विघ्नकारक देव है। देखिए गेटे, गणेश,

३. शुद्ध वर्ण की स्त्री से सम्बन्ध स्थापित करने का निर्देश है जो सामाजिक स्तर-विन्यास की ओर सकेत करता है। देखिए दी स्ट्रगिल फार इम्पायर, ४७८-७६.

तो पीले वस्त्र पहन कर अनुलेपन करे ॥८॥

दृढ़चित होकर दस दिन तक ब्रह्मचर्य करे । कृष्ण वर्ण को काले वस्त्रों के उपहार से युक्त करे ॥९॥ सभी वर्णों को और पंचम वर्ण<sup>१</sup> को और गणिका को काले ही वस्त्रों से संयुक्त करे और इस प्रकार व्रत की समाप्ति<sup>२</sup> करके योनि-चक्र को पूजा करे ॥१०॥ इस व्रत में अपने को अभिषिक्त करके रोम को मूल से उखाड़ फेंके, जितने समय तक व्रत करे तब तक यज्ञ भी करे ॥११॥ दिन में देवता की उपासना करे, रात्रि में पूजा न करे, तुम्हारे द्वारा कहा गया यह व्रत साधकों को परम सिद्धि देने वाला है ॥१२॥ समस्त फिद्धियों में लगा हुआ साधक इस व्रत का आचरण करे । हाथ पैर को चपल नहीं होना चाहिए । आंखों को चंचल नहीं होना चाहिए ॥१३॥ वाणी को चपल नहीं होना चाहिए । लघु आहार वाला हो और जितेन्द्रिय हो संयत होकर इस व्रत को साधे और विषत्तियों से उद्धार करे । यह नराकृत सब विष्टों का हनन करने वाला है ॥१४॥ इस प्रकार साम्ब-पुराण में जानोत्तर नामक ६६वें अध्याय में १३वाँ पटल समाप्त होता है ।

१. यहाँ पर चारों वर्णों का उल्लेख किया गया है पंचम वर्ण का भी वर्णन है, यह सामाजिक जाति-भेद एवं स्तरविभ्यास का द्वोतक है इस काल में सामाजिक स्तर-विभ्यास के लिए देखिए घुरे, कास्ट, क्लास ऐण्ड अफ़-वेशन; दी स्टूगिल फार इस्पायर, पृ० ४७४-७५.

२. वै० में समाप्त अशुद्ध हैं, समाप्त होना चाहिए ।

३. योनिचक्रपूजा तानिकों की एक विशिष्ट परम्परा है देखिए हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, ५, पृ० ११३७-११३८.

## अद्याय ६७

यह अत्यन्त पुण्यकारी व्रत उत्तर-साधन में किया जाना चाहिए । आवा अबम योग में और एक चौथाई अधम में ॥१॥ प्राचीन काल में कल्प में महातेजस्त्री (सूर्य) द्वारा उस साधन में जो कहा गया अब वे उन्हीं दिव्य एवं पाथिव अर्थों के सावको वाले योगों का उपदेश करूँगा ॥२॥ मंत्रों की नीन योनियाँ हैं सत्त्व, रजस और तमस । ब्रह्मा, विष्णु और हनुम ही साधक के साध्य हैं ॥३॥ अचंना में उसी प्रकार काम संकल्प करना चाहिए जैसे अग्निकार्य में, नारी के दुःख की प्रकृति में, लिंग में तथा सर्वकामनाओं में ॥४॥ अंधिष्ठात्री देवी<sup>१</sup> चार भूजाओं वाली होती है नर<sup>२</sup> को अग्रक्रम्य करके स्थित होती है । उसके दाहिने हाथ में यज्ञांग होता है और बाये में कपाल ॥५॥ उसके नीचे चक्रपर होता है दिव्य मनुष्यों को उसकी पूजा करनी चाहिए । वह कूर<sup>३</sup> दातों वाली है और तेज सम्पन्न है ॥६॥ साधक को सयत होकर क्रम-योग से एक लाख मंत्रों का जप करके उसका सम्पुट पाठ करना चाहिए ॥७॥ द्रवत के अनन्तर उस साधक द्वारा कार्य कर्म करना चाहिए । माँस, गुग्गुल और बकरे का मैस मिलाकर ॥८॥

१. काली से अभिप्राय है । मृत्यु की देवी है । मारणादि अभिजार की देवी काली है देखिए श्रीमानी, तन्त्रसाधना, पृ० ६८,

२. परमात्मा-शिव

३. दै० में 'करा' अशुद्ध है कूरा होना चाहिए ।

तीनों संघ्याओं में ताड़न किया करनी चाहिए और उसके बाद प्रति सध्या में सहस्र बार होम करना चाहिए । जब तक कि महीना वीत न जाए ॥६॥ इस प्रकार सिद्ध किया गया मंत्र सदैव कामद होता है । यंत्र वेत्ता अथवा तत्रज्ञ (व्यक्ति) इस प्रकार इसे साधे ॥ १० ॥ साधक को सुन्दर सहायकों से सम्पन्न प्रसन्न आत्मा वाला, निरन्तर योगयुक्त सात्त्विक विचार वाला होना चाहिए । यदि कोई व्यक्ति अज्ञान के कारण वेदवजित<sup>१</sup> होकर यह साधन प्रारम्भ करता है ॥११॥ तो वही देवता हीन कर्म<sup>२</sup> में कृत्यां॒ बन जाते हैं । साधक को जंगल में काष्ठवत मौन होना चाहिए । यज्ञों और विप्रों से संयुक्त होना चाहिए अन्यथा हीन साधन होता है जिस प्रकार का साधक हो उसी प्रकार का सहायक होना चाहिए ॥ १३ ॥ तपस्वी, जिनात्मा और महेश्वर<sup>३</sup> के प्रति नित्यानुरक्त ऐसे मंत्री को चाहिए कि तत्त्वतः समझे गए योग से साधन कर्म को प्रारंभ करे ॥१४॥ इस प्रकार का साधक व्यक्ति काल से भूत्यु प्राप्त करता है और मृत्यु के अनन्तर अनन्त लोकों को प्राप्त करता है ॥१५॥ पुण्यात्मा वह व्यक्ति पवित्र स्थान में रहता है अथवा सार्वभौमिक राजा होता है । ये साधक पृथ्वीलोक में विद्यासिद्ध होते हैं । इष प्रकार साम्ब-पुराण में ज्ञानोत्तर नामक ६७वें अध्याय में १४ वाँ पटल समाप्त होता है ।

१. देवों में वेद-वजित अशुद्ध प्रतीत होता है, वेद-वजित होना चाहिए ।

२. हीन-कर्म से आभिप्राय आभिचारिक कृत्यों से है क्योंकि तान्त्रिक दर्शन में वास्तविक लक्ष्य हैं आत्म-मुक्ति, आभिचारिक सिद्धिर्यां मात्य हैं किन्तु उन्हें गौण स्थान प्राप्त है ।

३. एक देवी जिसकी यज्ञादि के द्वारा पूजा इसलिए की जाती है कि विनाशकारी एवं जादू टोने के कार्यों में सिद्धि प्राप्त हो ।

४. शैव प्रमाव को प्रकट करता है, देल्हिए हाजरा, अनालस, ३६ पू० ८३ आदि ।

## अध्याय ६८

अब वह साधन बताऊँगा जिससे साधक लोग सिद्धि प्राप्त करते हैं। और जिससे उन्हें नाना सिद्धियों और कर्मों को प्रदान करने वाला विमल वेद्यै योग प्राप्त होता है ॥१॥ छः महीने के लिए यह पुरश्वरण व्रत करना चाहिए। शाकादि के विधान से वथवा जल रो पहले शोषन करे ॥२॥ बाद में ६ लाख बार ओकार का जप सम्यक चित्त से करे ॥३॥ पवित्र शरीर वाला होकर साधक बासगृह बनाकर शास्त्रोक्त विधि से उसमें देवता को स्थापना करे ॥४॥ अविनाशी विद्यांगी का अपने मंत्र-विधि के क्रम से १०००० बार एक करके परिवर्तित करे ॥५॥ इसके पश्चात् शास्त्र के क्रम से परिपूर्ण, विरक्त प्रदीप्त शुभ मनोवाञ्छित्र मन्त्र का मन से आश्रय लेकर जप प्रारम्भ करे ॥६॥ जप के अंत में ब्रत और ब्रत के भी अन्त में साधन सम्पन्न करे। अस्त्रमण्डल में मंत्र के साधन में योग साध्य है ॥८॥

अपने मंत्र के आकार वाले तंत्रोक्त वेद्य को ग्रहण करे और इस प्रकार तंत्रज्ञ यज्ञ किया से साधना करे ॥९॥ होम के अंत में कही गई विधि के द्वारा साधक मनुष्य सिद्धि प्राप्त करता है ॥१०॥ मंत्र के प्रारम्भ हो जाने पर अन्यान्य सेवक मंत्र गग्न उद्घत और महाभंगकर लक्षित होते हैं ॥११॥ इसे विनाशक समझना चाहिए ॥१२॥ उठकर यदि मन्त्र से अर्थ दिखाई पड़ जाय तो उसे साध्य समझना चाहिए यदि शास्त्रोक्त लक्ष्य को पा लेता है तो उसे सिद्ध मन्त्र जानना चाहिए अन्यथा वह सार देता है ॥१३॥

इसके द्वारा मनुष्य विद्या की सिद्धि में अभीष्ट सिद्धि प्राप्त करता है ॥१४॥ जो राजा सिद्ध हो जाता है वह सप्त द्वीप का अधिपति और बली होता है वह पार्थिव भोगों को भोगकर अन्त में शरीर के अन्त होने पर शिव-लोक<sup>१</sup> को जाता है ॥१५॥ ये सर्वकामदा उत्तम सिद्धियाँ कही गई हैं, इसके आधे को मध्यम जाता चाहिये और उसके आधे को अपेक्षाकृत कम समझना चाहिए ॥१६॥

जो व्यक्ति सिद्धि चाहता है वह गुग्गुल आदि के योग से यज्ञ सम्पन्न करता है ॥१७॥ अष्ट राज्य वाला जो नरेश इस सिद्धि से शोधित होता है वह गुण-योग और जप में असिद्ध होने परहुमो ग्रही मनुष्य ॥१८॥ संतृप्त और मन्त्र दीपित होने के बाद हीन से हीन होने पर सुखपूर्वक सिद्धि प्राप्त कर लेता है फिर साधक के लिए क्या ॥१९॥ मन्त्र करने वाले साधक को समस्त कर्मों में सदैव मांस<sup>२</sup> और गुग्गुल का हीम करना चाहिए और सदैव मंकट में जप-वृद्धि करना चाहिए ॥ २० ॥ जो व्यक्ति संकल्प हीन है उसे सिद्धि नहीं मिलती इसलिए पहले संकल्प करके तब साध्य की सिद्धि करनी चाहिए ॥ २१ ॥ जो व्यक्ति सत्यवादी, जित हन्तु<sup>३</sup>, दृढ़चरित, पवित्र, मित्रपोषक, मितभाषी होता है वह उत्तम सिद्धि प्राप्त करता है ॥२२॥ मंत्र-साधक व्यक्ति को प्रमादपूर्वक शूद्र<sup>४</sup> के साथ वार्तालाप नहीं

१. द्रष्टव्य है कि सौरोपासना का फल सामान्यतः सूर्य-लोक की प्राप्ति बताया जाता है यहाँ पर शिव-लोक की प्राप्ति का उल्लेख है जो सौरोपासना पर शैव प्रभाव को प्रकट करता है देखिए श्रीवास्तव, सन वरशिष्ठ इत्यऐन्सियन्ट इण्डिया

२. आभिचारिक क्रियाओं में मासि एवं गुग्गुल के हीम का दहूधा विधान किया जाता है यह तान्त्रिक शैव परम्परा की देन है।

३. समभाव वाला, गीता में वर्णित स्थितप्रलय.

४. तान्त्रिक परम्परा में सामान्यतः जाति-मैद को स्थान नहीं दिया जाता परन्तु यहाँ परे शूद्र से वार्तालाप न करने का आदेश है जो हड्डिगत सामाजिक वैतना के प्रभाववश लगता है।

## साम्ब-पुराण

चाहिये । इस व्रत से जो व्यक्ति रागी न हो वह भी संसार का चर करता है । कामी हो तो अकामुक हो जाता है ॥ २३ ॥ यदि वाला साधक यदि प्रमादी है तो उसे मुड़ढ़ किया करनी साधक को हिंसा नहीं करनी चाहिये ॥ २४ ॥

तक साधक व्यक्ति व्रत करता है उसके लौकिक कार्य सफल होने प्रकार महीने भर जप करके साध्य का प्रयोगन करे ॥ २५ ॥ प्रति प्रसूति का विश्रान करके नम्र की आहुति सात रात्रियों तक तो को अपने वश में कर जाना चाहिये ॥ २६ ॥ धातुक के प्रतिलोम शृंगवेर के विष में हवन करके मनस्ते जन्मुओं को नष्ट करे जो व्यक्ति व्रती नहीं है उसे सिद्धि नहीं मिलती और जो व्यक्ति धान को जाने हुए अज्ञानपूर्वक इस किया को प्रारम्भ करता रहा जाता है ॥ २८ ॥ यदि वेदकाम मन्त्रज रुद्र का चित्र तो उसे पूर्वोत्तर विधान से तीन मुख वाली तथा चार भुजाओं वाली हिए ॥ २९ ॥ अष्ट शक्तियों को दिव्यतियों के रूप द्वारा बनाना से सूर्य की रश्मियाँ होती हैं उसी प्रकार मंत्र की ये शक्तियाँ हैं ॥ ३० ॥ जैसे विष्णु उसी प्रकार रुद्र और बग्न में दीरभद्र की वित को सभी कालों में इन्हीं मन्त्रों के द्वारा करनी चाहिये ॥ ३१ ॥ म काल में जप से विनियोग करे । रोगों के विनाश कर्म में भी अंपनानी चाहिये ॥ ३२ ॥

साधक संशयी हो तो इस विधि को करना चाहिए और अपनी

काली से अभिप्राय है, काली मारण को देवी मानी जाती है ।  
माली, तन्त्रसाधना, पृ० ६७

विष्णु और रुद्र की एकत्यक्ता प्रकट करता है देखिए वासुदेव लोक्योरेत्वोजस कन्डीशन आफ नाथ इष्ठिया,

कामना के अनुसार अर्थों की सिद्धि करे ॥३३॥ राष्ट्रभंग होने पर, संकट वेला में और स्थान त्याग के प्रसंग में इस ब्रत का सम्पूट पाठ तब तक करना चाहिए जब तक कि वह विपरीत काल में आ जाए ॥ ३४ ॥ तदनन्तर मंहादान्त कार्य करके बीच में पुनः मंत्र योजित करे और इसके बाद मंहार का आयोजन करके बीच में बीज से विष्टित करे ॥३५॥ दशवर्ण बीज के द्वारा अंग प्रत्यंग का योजन करके मंत्र की विन्यस्त करना चाहिए ॥३६॥ औंकार स्मरण करके दोनों पैर में दीर्घ स्वर बारम्बार बार्यंहाश में व्योकार ॥३७॥ हृदय में मकार और जठर में व्योकार, पीठ में पिकार और मुख में नकार ॥३८॥ मस्तक पर औंकार साधक को विन्यस्त करना चाहिए ॥३९॥ मंडों की यह विवि सूक्ष्म एवं सर्वतोंमुख है। निससन्दे गुत्त-विवि से मंत्र-वेत्ता इसे सिद्धि करे ॥४०॥

मंत्रग्रहण में मूल साधन का प्रयोग करना चाहिए। आद्यान्त की विधि क्रमशः होनी चाहिए ॥४१॥ जो लोग क्रमानुसार यह साधन नहीं सम्पन्न करते हैं उनकी सिद्धि अपर्याप्त करने पर भी लौट जाती है ॥४२॥ जो लोग मंत्र-जप में लगे होते हैं और जो लोग जप विधि में विद्यमान हैं जो ब्रत-विवि में कुशल है उन्हें सिद्धि मिलती है ऐसा शास्त्रों में कहा गया है ॥४३॥ स्वल्प साधन में भी जप और ब्रत में व्यक्ति को युक्त होना चाहिए। अन्यथा साधक गतिहीन हो जाता है और कर्म भी उसका निरर्थक हो जाता है ॥४४॥ महीने भर साधन योग में संहिता का जप करके असिधार ब्रत पाँच रात्रियों का इत्त पालन करके व्रथाक्रम कार्य करे ॥४५॥ छोटे

१. विं० में बढ़ते अशुद्ध हैं जठरे होना चाहिए।

२. अत्याविह कठिन

३. पाँच रात्र ब्रत बैछण्यों के संदर्भ में आता है देखिए से  
इन्द्रोदशम दू पाँचरात्र ऐष्ट अहित्रुद्ध्य संहिता

भोटे रोगों को, ग्रहों को व्यक्तियों, को, उपद्रवों को इच्छानुसार ही तीक्ष्ण व्रत में लगा हुआ मनुष्य, सिद्ध कर लेता है ॥४६॥ महातपस्वी जितेश्चिद्य अनन्य भक्त महेश्वर ग्रिय साधक व्यक्ति विद्याज्ञान में और तत्त्वों में महा स्थिति को प्राप्त कर लेता है और विद्याधरों की मुख्य लक्ष्यमी को भी प्राप्त कर लेता है ॥ ४७ ॥ उस दशात्मक बीजतत्त्व को पूर्णरूप से जान कर पदबीजों के नियोग को जानकर और पूर्वोक्त ब्रुहिदि सिद्धि प्राप्त करते हैं ॥४७॥ देवता सर्वमंत्रात्मक होते हैं। और समस्त देवता शिवात्मक हैं। शिवतंत्र के पदों के द्वारा सम्यक ब्रुहिदि यथान्याय इन सबका सम्यक् शान्त करके साधक व्यक्ति शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार श्री साम्ब-पुराण में ज्ञानोत्तर नामक इदं वेऽब्ध्याय में सर्वसाधाय साधन नामक १५वाँ पटल समाप्त होता है।

## अध्याय ६६

अब इसके बाद तत्त्वानुसार पथ का वर्णन क्रमशः किया जा रहा है जिस पथ से कोई गृही व्यक्ति (गृहस्थ) शिवलोक को प्राप्त करता है ॥१॥ गण<sup>१</sup> और मष्ठुल<sup>२</sup> के तत्त्व को जानने वाला और उसमें पारंगत अभिषिक्त, शिव सङ्घृत गुरु की पूजा करने वाला ॥२॥ शिवयोनि में अपित और अभिका द्वारा भर्त में धारण किये गये योग से उत्पन्न, योगात्मक, योग से सम्भव ॥३॥ जातकम् गुणों से युक्त, स्नानादि के कारण विगत कल्पष, रक्षण युक्त, धूप के कारण सत्यात्मा, सत्य-सम्भव ॥४॥ विवृत अन्न को कैलाने वाला, शिवात्मा द्वारा मस्तक भाग पर आघात, चूड़ा-कर्मयुक्त, मंत्रशक्ति से युक्त शरीर वाला ॥५॥ विधिपूर्वक उपनयन<sup>३</sup> किया गया, मौन्जी मेखला और मृगचर्म को धारण करने वाला, पवित्र, देवव्रत-

१. गण का अर्थ यहाँ पर जप माला के लिए लगता है जो तान्त्रिक-पूजा का एक अभिन्न अंग है, गण का दूसरा अर्थ - शिव के सेवकों से भी लगाया जा सकता है ।

२. तान्त्रिक पूजा में दिव्य विभूतियों के आवाहन के लिए एक प्रकार का गुप्त रेखचित्र या तत्त्व, देखिए काणे, हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, (हिं), भाग ५, पृ ७१-७३.

३. तान्त्रिक परम्परा में १० संस्कारों को स्थान दिया गया है जिनमें जात कर्म चूड़ाकर्म, उपनयनादि का उल्लेख यहाँ किया गया है देखि महात्मिकाण्डस्त्र, अध्याय १० पृ० २१६-२५३.

धारी, मुण्डी, जटी, भिक्षा का अन्न खाने वाला ॥६॥ विधिपूर्वक विद्याध्ययन किया हुआ, सर्वज्ञ, बीजवित्त, कृतात्मा, कृतविद्या, कृतगोदान, कृतदक्षिणा ॥७॥ पाकयज्ञ, हवियज्ञ करने वाला सोमथागी, शिवभार्गनुसारी, योगवान, घनवान ॥८॥

यथोवित ज्ञान कर्मस्थ, गुणदोषविवर्जित ऐसा व्यक्ति सभी तत्त्वों में सिद्धि प्राप्त करता है ॥९॥ इस प्रकार के गुणों से विशिष्टात्मा वाला, तपस्वी, द्वन्द्ववर्जित, क्रोधादि से विमुक्त, मिट्टी पत्थर और लौने को समान समझने वाला वह साधक व्यक्ति समस्त जीवों में अपने ही समान विचार रखता है और सबको अपने में ही देखता है। प्राणायाम आदि से स्थित ॥११॥ विशुद्ध आचार वाला वह साधक पुरुष ही है। इस क्रमशोण से साधक पुरुष को उस परम् प्रभु में लीन होना चाहिए ॥१२॥ गुरु की तरह कार्य करने वाला, गुरु की तरह ध्यान धरने वाला, आत्मस्थ शिव का चिन्तन करने वाला ऐसा साधक व्यक्ति आचार्य को भी गेष कर देता है। दीक्षा से विमल मन वाला मुक्त वह साधक परम पद को प्राप्त करता है ॥१४॥ उत्पन्न विज्ञान वाला साधक अनिन्दित मुकित्रित की करे, सिद्धि के लिए एकात्म में समा शोल साधक को भूमिका बरना चाहिए ॥१५॥ सदैव आत्मप्रधानहित की बात कहने वाले व्यक्ति को छोड़कर और विषरीत मर्ती को छोड़कर नित्य सदा शिव का व्यान घरे ॥१६॥

जो शिव निराकार है, वर्गिशुद्ध है, श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ है। प्रमाण विषयातीत हैं और दृष्टान्तादि से विहीन लक्षण वाले हैं ॥१७॥ जो नम्भवों के प्रकाश हैं, ज्ञानराशियों के श्रेष्ठ स्थान हैं, तस्वीरों के परम तत्त्व हैं और

१. द्रष्टव्य है कि लान्त्रिक धर्म का अन्तिम उद्देश्य परम ब्रह्म की प्राप्ति है इस आदर्श का निरूपण यहाँ पर हुआ है यहानिष्ठणतंत्र, अध्यार्थ २-३ में इसी परम ब्रह्म का चित्रण किया गया है।

२. पाशुपत दर्शन में शिव को वामिवशुद्ध कहा गया है देखिए दासगृष्टा एन०, एन०, ए हिस्ट्री आफ इण्डियन फिल्मसफ्ट, भाग ४ पृ० १५०,

गतियों की परमगति है ॥१८॥ तत्त्व द्वारा उस शिव को उसके तत्त्व को और फैली हुई उसकी लिङ्कल सत्ता को भली भाँति ज्ञानना चाहिए ॥१९॥ ध्येय योग की जानने वाला, विन्दु, नाद और तनु में विद्यमान ज्ञानमय श्रेष्ठ आत्मा को जानकर मोह छोड़ देता है ॥२०॥ निरन्तर अभ्यास के योग से और काल से प्रायः मनुष्य भाव-शुद्धि-विद्य से श्रेष्ठ पद की प्राप्ति कर लेता है ॥२१॥ आधे मुहूर्त मात्र से बोज कलादि के सहारे आत्मा तत्काल दिवाधर्दे भाग को प्राप्त कर लेता है ॥२२॥ जो प्राकृत तत्त्व है, स्वभाव से ही जो प्रकृत हैं, जो तीव्र तत्त्व है, परम सूक्ष्म है, वे पच्चीस हैं ॥२३॥ तत्त्वज्ञ योगवान् योगपण्डित आत्मा-तत्त्व से युक्त होकर शोध ही शान्ति लाभ करता है ॥२४॥

जपद्यान आदि से दीपित परम दौर्य देवता को योजित करता हुआ साथक व्यक्ति सफलता प्राप्त करता है ॥२५॥ इस प्रकार गुण विशिष्ट जो व्यक्ति तत्त्व मण्डल को युक्त करता है उसे पुण्य लाभ होता है। अगुणों की भी इसी प्रकार योजित करना चाहिए। वह मन्त्रवान् और विद्येश्वर से समादरित होता है। इस प्रकार श्री साम्बपुराण में ६९ वाँ अध्याय समाप्त होता है।

१. इस्टव्य है कि यह सम्पूर्ण अध्याय शैव प्रभाव से अनुप्राप्ति है गूर्यलोक के स्थान पर शिवलोक, सूर्य देव के स्थान पर शिव का उल्लेख किया गया है। पूर्व मठकाल में सौर एवं शैव वर्मों के मध्य सूर्यन्दग स्थापित हो कुका था देखिए श्रीबास्तव, सत वरशिष्ठ इन ऐतिहासिक इण्डिया पृ० ३६१-३६२.

## अध्याय ७०

जप की सम्पूर्ण विधि बताई गई और कर्मों के साथ विश्व-बीज भी बताया गया और वह विधान भी कहा गया जिससे कि परमेश्वर बीज की इच्छा करता है ॥१॥ हे प्रभु ! अब आप सम्पूर्ण रूप से बुकत भक्त को ज्ञान-दान दे । इस प्रकार कहे जाने पर देवता (सूर्य) ने विधि का प्रवचन किया ॥२॥ जिन चालौक अक्षरों को मैंने पहले बताया उन्हें फिर से बता रहा हूँ जिससे कि बीज<sup>१</sup> उत्पन्न होता है ॥३॥ तीन चार, दो, तीन पाँच चार, तीन चार दो, तीन पाँच चार, चार इस प्रकार इन्हीं वर्गों से समाप्तुक रूप में दशात्मक प्रसव होता है । उपर्युक्त और स्वर परमेष्ठी भूताधिपति इनसे उत्पन्न होते हैं और उनसे परम उपर्योगि उत्पन्न होती है ॥४॥ इस प्रकार श्री साम्ब-पुराण में बीज-प्रसव में ७७वाँ अध्याय समाप्त होता है ।

---

१. वर्णों से बीज-मन्त्रों की उत्पत्ति के लिए देखिए बुड़राम, श्री गारंलैण्ड आफ लैटर्स, २५७-२६६

## अध्याय ७९

कृष्णचक्र एवं काल रुपोऽभनीष्टक से युक्त देव अर्थात् देवाधिदेव सूर्य का शरीर बीजों का परम बीज शंकर अर्थात् कल्याण करने वाला परमेश्वर है ॥१॥ भिन्न मूलों में विनयस्त सबिन्दुक और अशर है वह भक्ति इतरा द्विरा हुआ है और देवाधिदेव का शरीर बीजअक्षरों से युक्त है ॥२॥ प्रणव इत्यादि से संदृढ़ है और चार भिन्न बण्डे सदृश जिसकी आत्मा है ॥३॥ ओंकार यत्रिक<sup>१</sup> के पूर्व में और सुकारादि पूर्व-दक्षिण में । इस प्रकार बुद्धिमान व्यक्ति सम्यक् रूप से इस तथ्य को जानकर चतुराखर को स्थापित करे ॥४॥ तत्त्वज्ञ परिच्छम में तकारादि को स्थापना करे इससे कल्याण होता है ॥५॥ तदन्तर तत्त्वज्ञ व्यक्ति पृथ्वी पर आत्म प्रसूति प्राण अन्यान्य अक्षरों को विनयस्त करे ॥६॥ पकार से लेकर चकार से अंत होने वाले शब्दों को पञ्चिकाशक्ति का नाम दिया गया है जिसके बीज में संपूर्ण जगत् के स्वामी शंकर को व्याप्त करके शिवधात्री<sup>२</sup> विद्यमान है ॥७॥ तदन्तर नरेश क्रमानुसार विशिष्ट अन्य अक्षरों को विनयस्त करके ईशान और दक्षिण दिशा में दो दो के दल में स्थिर करे ॥८॥

अकार-इकार और रेफ आदि तदन्तर स्थापित करे ॥९॥ इस प्रकार साम्ब-पुराण में बीज-प्रसव में उक्ता अध्याय समाप्त होता है ।

१. यन्त्र के माध्यम से पूजा तत्त्व की विशेषता हैं काणे, हिस्ट्री आफ धमंशारस्त्र, (हि०) भाग ५ पृ० ७३-७६.

२. भक्ति से अभिप्राय है ।

## अध्याय ७२

शब्द रूपों की सिद्धि के लिए पूर्व दक्षिण दिशा में क्रमशः प्रथम वर्णनानि विधि और व्यंजन<sup>१</sup> क्रमानुसार होना चाहिए ॥१॥ द्वितीय वर्ग को नैऋत्य दिशा में, तृतीय वर्ग को वायु की दिशा में और चतुर्थ की समस्त देवताओं की दिशा में विनयस्त करे ॥२॥ अन्तस्थ वर्णों और प्रथम वर्ग के वर्णों को दक्षिण और स्थापित करे । शेष वर्णों तथा शकार आदि को पश्चिम दिशा में स्थिर करे ॥३॥ उत्तर दिशा में चकार, सकार और बाकार तथा अकार इन चारों को विनयस्त करे ॥४॥ पूर्व दिशा में हस्त, दीर्घ और फलुन इन तीनों को विनयस्त करे और उत्तर दिशा में अन्य तीन को इस प्रकार यह बारह अकार है ॥५॥ एकार को नैऋत्य, उत्तर और वायु की दिशा में स्थिर करे यही दिक्षिणितस्थ बीज-चक्र है ॥६॥ इस प्रकार श्री साम्ब-पुराण में ज्ञानोत्तर में ७२वाँ अध्याय समाप्त होता है ।

१. वे० में ध्यंजनानि मुद्रित है, ध्यंजनानि होना चाहिए ।

## अध्याय ७३

योनि बीज प्रणव को बार बार आद्वान्त जानना चाहिए और कल चाहने वाले (साधक व्यक्ति) को पंचाक्षर स्वरूप वाले परमेष्ठी<sup>१</sup> को पृथ्वी पर विनयस्त करना चाहिए ॥१॥ प्रारंभ में विन्दु सहित अष्टाक्षर बीज न्यस्त करे और शेष प्रणव से प्रारंभ और अंत होने वाले दूसरी दिशा में ॥२॥ दक्षिण दिशा में श्रेष्ठ देवता हो और विपरीत दिशा में सविन्दुक हो ॥३॥ विन्दु और उकार पूर्वक अक्षर पर दिशा में न हों ॥४॥ आद्वान्त व्योम ही परमदेव है विराम में प्रणव है। जैसी बीज योनि हो उसी प्रकार के अक्षर भी जानने चाहिए ॥५॥ प्रसूति नाम वाला देवता नो और सत्रह वर्ण हों ॥६॥ जिसके दोनों और ओंकार हो और पन्द्रह अक्षरों वाला सृष्टि नाम वाला श्रेष्ठ देवता व्योम के बीच में विनयस्त हो ॥७॥ इन (वर्णों) के आदि पदों द्वारा सत् असत् आत्मा वाला देवता इशान दिशा में विनयस्त होना चाहिए जिसे धाता, सृष्टि एवं संहार नामों से जाना जाता है ॥८॥ इस प्रकार श्री साम्ब-पुराण बीज-प्रसव में ७३वाँ अध्याय समाप्त होता है ।

## अध्याय ७४

उन अक्षरों की उत्तरा योनियाँ हैं और उनसे मंत्र निकले दुए हैं। आठ अक्षरों वाली व्योमादि से युक्त पहली शिवयोनि है ॥१॥ ओंकार से प्रारंभ होने वाली तथा हकार से अंत होने वाले श्रेष्ठ अक्षर जिसमें ही और जो मुक्ति के लिए उपयोगी हो उस पुण्ययोनि को शब्द वेत्ताओं ने ॥२॥ परयोनि<sup>१</sup> बताया है। विन्दुसहित आकार जिसके प्रारंभ में हो और जिसके अन्त में अक्षर हो वह कारणयोनि है ॥३॥ इकार से प्रारंभ होने वाली और हकार से अंत होने वाली सर्व कल्याण के लिए पञ्च वर्णों वाली क्रिया शक्ति वाली क्रियायोनि है। वारुणों के द्वारा भूत्योनि होती है। उकार से प्रारंभ होने वाली छः अक्षरों वाली और मकार से अंत होने वाली भुवन और वन के लिए वह भूत्योनि है ॥५॥ भूत योनि के बनन्तर सात अक्षरों वाली व्योम से प्रारंभ और वायु देवता से अंत होने वाली वायव्या बीज योनिक है ॥६॥ हसे बीज योनि कहते हैं। वकार से प्रारंभ होने वाली मकार से अंत होने वाली अद्योम से समीरण तक मध्य में तेरह अक्षरों वाली सुष्ठियोनि है ॥७॥ प्रग्नव से प्रारंभ और अंत होने वाला, सम्पूर्ण वाङ्मय का संहार करने वाला एक मात्र प्रभु संहार्योनि है ॥८॥

ओंकार द्वौ द्वारपाल हैं जो समस्त जीवों द्वारा धारणा किये गये हैं ॥९॥ इस तंत्र की तीन पाथिव योनियाँ हैं जो विभक्ति का प्रणवाष्टक बनकर भूलोक को व्याप्त करती हैं ॥१०॥ क्रमानुसार आदि वर्ण वाली अक्षरों की

१. परम योनि होना चाहिए ?

योनि होती है। ज्ञानी व्यक्तियों के लिए प्रणव द्वारा सर्वेत्र बोजिन का कार्य होना चाहिए। इसे अपा योनि कहते हैं ॥ ११ ॥ अमस्त जीवों के कल्याणार्थ तेजस की योनि होती है। जो कि अग्निवर्ण वाले महापुरुषों की उत्पत्ति के लिए है इसे आमनेयी योनि कहते हैं ॥ १२ ॥ शब्द रूरों की सृष्टि के लिए काल इत्यादि विवि से युक्त शब्द गुणों वाली आकाशात्मिका योनि होती है ॥ १३ ॥ वांगमय की सिद्धि के लिए भूतयोनि का विवान कराये जो कि श्रेष्ठ योनि है और भकार से प्रारंभ होने वाली है ॥ १४ ॥ यम संज्ञा वाले चार अक्षरों को द्वारा देश पर विनायस्त करके जो व्यक्ति विषम श्रेष्ठ देवता की उपासना करे वह सफलता प्राप्त करता है। इसे नपुसक योनि कहते हैं ॥ १५ ॥ इसके अनन्तर विश्व योनि है जो कि द्वारपाल रूपी नमस्कार वर्ण कही गई है। विश्व सृष्टि करने वाली तथा सर्वज्ञा कही गई है ॥ १६ ॥

प्रणव तत्त्व के बीच में नमो नमो होना चाहिए। इस प्रकार का दीपन विश्व कल्याण के लिए होता है इसे विश्व योनि कहते हैं ॥ १७ ॥ भूतात्मा के साथ परम कारण करना चाहिए। बोज योनि और सृष्टि और संहार-यह पुनः आठ हैं ॥ १८ ॥ देवाधिदेव के विवान को मन से ही जो कीर्तित करता है वह समस्त बन्धनों से मुक्त होकर परम देवता में प्रवेश करता<sup>१</sup> है ॥ १९ ॥ इस प्रकार सम्पूर्ण संसार के गुरु श्रेष्ठ देवता (सूर्य) विद्वानों द्वारा पूजा योग्य है चिन्तनीय है और परमार्थ की सिद्ध करने वाले हैं ॥ २० ॥ इस प्रकार श्री साम्ब-पुराण में बीज-प्रसव नाम वाला ७४ वाँ अध्याय समाप्त होता है।

<sup>१</sup> इस अध्यय मे भी सूर्योपासना पर ज्ञैव प्रभाव परिनियत होता है

## अध्याय ७५

इस प्रकार अंकुर सहित वह यीनि बीज बताया गया । विशाल प्रसव भी बताया गया । समस्त प्राणियों के लिए उसका पुण्य फल अतदायक है ॥१॥ हे देव ! पहले विषय में मृत्यु संशय है इसलिए कृपा करके उसे पुनः बताये । मैं भगवान् सूर्य में भग्नि रखता हूँ ॥२॥ यह त्रिपात्र मुनकर प्रभु ने विधिवत् उसे बताया । समयादि के लक्ष्य को और चतुर्वेदीक्षा को ॥३॥ यह ज्ञान उस भजन के लिए है जो परीक्षित हो, सुभूषण रत हो, विनीत हो, तपस्वी हो, क्रोधादि रहित हो ॥४॥ पहले कहे गए बबान के अनुसार देवेश की पूजा करके तब उसमें दशातिष्ठका भूत योनि का प्रावाहन करे ॥५॥ समस्त भूर्तों द्वारा देखकर शमशान में सकलीकृत करने पर तबार संम्पात् करके तदन्तर दर्भपुंज पर बैठें ॥६॥ दूसरे स्थान पर्यामे हुए आज्या आदि से सुपूजित शिष्य को और नीचे कुश के द्वारा तीन पार नाभि के ऊपर पवित्र करे ॥७॥ इसके बाद क्रमानुसार आहूतियां प्रदान करे । शिष्य में सम्पातों को गिराये और दोष मुक्त हो जाय ॥८॥ बाद में सूर्य के स्वरूप को सकलीकृत करके पवित्र होकर पुनः यज्ञ करे और दक्षिण दिशा में अग्नि स्वापना करके अपने पापों का हवन कर दे ॥९॥ तदन्तर अग्नि को लेकर उसमें भस्म मुष्टि प्रदान कर । इस प्रकार के व्रत का पालन करने वाले व्यक्ति की संस्कार<sup>१</sup> योग्यता बढ़ती है ॥१०॥ इस प्रकार श्री सम्बुद्धराम में ज्ञानोत्तर में बीजप्रसव में ७५वाँ अध्याय समाप्त होता है ।

---

१. तात्त्विक परम्परा में १० संस्कारों को स्वीकार किया गया है देखिए शदित ऐन्ड शाक्त, पृ० ४८३ तथा महानिवापितत्व-२१६-२५३.

## अध्याय ७६

इसके बाद इसकी (शिष्य की) योग्यता को जानकर गुरु संस्कार प्राप्ति करे प्राणी की पवित्र तन्त्रों से धूजा करके ॥१॥ दशात्मा विधान द्वारा संहार अवित का आवाहन करके आत्मा को सकलीकृत करके शिष्य में न्यासों का प्रयोग करे ॥२॥ पूजादिक को सम्यक रूप से सम्पन्न करके प्रतिमंत्र का प्रयोग करे तदन्तर अपि रक्षण को प्रतिपन्न करे ॥३॥ पाप शुद्धि के लिए दस दिन तक यज्ञ करे । इससे ब्रह्महत्यारा भी पवित्र हो जाता है वस्तुतः अन्यत्र भज्ञापापों में केवल तीन रात्रि का विधान है ॥४॥ प्रत्येक देवता को तीन आहुतियाँ देकर दक्षिणग्रन्थ में संहार संस्थित होकर गुरु क्रमशः लाभ प्राप्त करता है ॥५॥ आठ सौ आहुतियाँ देकर और इक्कीस सम्पातों का प्रयोग करके शिष्य के मस्तिष्क पर सम्पात का प्रयोग करे तथा शिवयोति में अंजलि प्रदान करे ॥६॥ दशात्मा के द्वारा तीन बार दर्भे में हवन करे और किया योनि में निश्चिप्त करे ॥७॥ इस प्रकार संत्रिण किया योनि में पुमवन कर्म<sup>१</sup> करके इक्कीस बार चावल से हवन करे ॥८॥

इसी प्रकार दशात्मा मंत्र द्वारा मस्नक पर जल डालकर आते कर्म<sup>२</sup> करे और व्याहूति<sup>३</sup> होम करके पान करे ॥९॥ हिरण्यमर्मी की किया योनि परम असित है । सघु से युक्त पदार्थ का हवन करके प्रशमन करे ॥१०॥

१. पुमवन संस्कार के विस्तार के लिए देखिए महानिर्बाणितन्त्र, पृ० २३३ ( १२६-३२ )

२. महानिर्बाणितन्त्र पृ० २३६, ( १४६-५७ )

३. व्याहूति से अभिप्राय भूः भुवः स्वः से है । महानिर्बाणितन्त्र पृ० २२३ ( ५१७० )

और भी अन्याश्य जो प्राशन<sup>१</sup> आदि शिष्ट संस्कार है उन्हे भी काले मृग चर्म आदि प्रतीकों के साथ दशात्मा के द्वारा पूर्ण करे ॥११॥ कारण योनि में केन्द्रित होकर होम करे । सात व्रतों को सात-सात दिन तक करे ॥१२॥ यज्ञवान् पुरुष वर रूप काले कारण के लिए वैवाहिक कर्म करे ॥१३॥ यज्ञवान् (परुष) हवियज्ञ द्वारा सौम्यान करे ॥१४॥ तदन्तर गूलर की लकड़ी पर विनयस्त दशात्मा मंत्र द्वारा न्यास करे ॥१५॥ देवता को निवेदित करके यज्ञ के अधिकारी को दक्षिणा देकर गुरु की प्रदक्षिणा करे और उससे आज्ञा ले ॥१६॥ इस प्रकार संस्कृत हुआ व्यक्ति समस्त सिद्धियों को प्राप्त करता है और मरने के बाद मोक्ष प्राप्त करता है और परम पद में प्रवेश करता है । इस प्रकार श्री साम्ब-पुराण में ज्ञानोत्तर में बीजप्रसव में ७६ वाँ अध्याय समाप्त होता है ।

## अध्याय ७७

जिससे बन्धन का विनाश हो इसलिए यह यज्ञ शिव के समान है। इसलिए इस शेष ऋषि का क्रमशः वर्णन करूँगा ॥१॥ और पुरुष यथोचित रूप से देव का दर्शन करके और पहले की भाँति संस्कार करके सम्यक रूप से भूतों का मण्डल विधिवत् निर्मित करे ॥२॥ उस भूतों के मण्डल में देवता की यथोचित रूप से पूजा करके तत्त्वज्ञ व्यक्ति मन्त्र से पवित्रित जल द्वारा उस यज्ञ को पूर्ण करे ॥३॥ मंगलमय द्रव्यों से देवता को अभिषिक्त करके अर्लंकार को लेकर सुपूजित देवता को निवेदित करे ॥४॥ तदनन्तर प्रदक्षिणा करके विधिपूर्वक प्रणाम करके देवता से यह कहे कि आप प्रसन्न हो जाए ॥५॥ इस प्रकार यथाशक्ति व्रताचरण से मनुष्य बन्धनों से मुक्त हो जाता है और महान प्रसाद को प्राप्त करता है ॥६॥ इसके बाद दक्षिणाग्नि द्वारा सूर्ययोनि में विधान पूर्वक हविष्य देकर एकाग्रचित्र बैठकर ॥७॥ यथोचित पुरुष देव को स्थापित कर पूजित करे और इस प्रकार का निवेदन करे जिससे कि वह देवता उसके प्रति अनुग्रहवान् हो ॥८॥

अग्नि की दिशा में और पूर्व की ओर पुरुष को स्थापित करके मंत्रों से हवन करे ॥९॥ शिष्य को अभिमन्त्रित करके १००-१०० आहुतियाँ दे ॥१०॥ घुटने के बल बैठकर मूलयोनि का सम्पादन करे ॥११॥ नाभि में भाव योनि होनी चाहिए ॥१२॥ हृदय में परमायोनि और बाहुओं में कारण वाली क्रिया योनि उसमें बीज बोना चाहिए ॥१३॥ तदन्तर अष्ट बीज के रूप में प्रकीर्तित संहार चक्रु हो ॥१४॥ पुष्प सहित अंगुष्ठ से न्यास करने पर सर्वत्र प्रशंसा होती है और इसके बाद पात्राधिवासित भस्म प्रतिमान के रूप में प्रदान करे ॥१५॥ साधक संपूर्ण द्वारा विश्वसक तर्पण करे उससे विज्ञों का

निवारण होता है और भी कार्य होता है ॥१६॥ देवता के समक्ष उम्मा अनुशासन मुनाना चाहिए और कहना चाहिए कि आपके द्वारा शिष्य अनुग्रह योग्य है जैसे यास्त्र से अनिन्दित है ॥१७॥ देवता के समान सगोचर गुरु को भी यथावत संमुक्त करे और सबको प्रदक्षिणा करके देवता का विसर्जन करे ॥१८॥ इस प्रकार श्री वास्त्र-युराण में विसर्जन<sup>१</sup> विधि नामक उत्तर वाँ अध्याय समाप्त होता है ।

१. तान्त्रिक पूजा में अनेक उपचारों का उल्लेख किया गया है जिनमें विसर्जन भी सम्मिलित है देखिए निबन्धतन्त्र, पटल ३८, फलकारिणीतन्त्र पटल ३-

## अध्याय ७८

बब इसके पश्चात मैं मन्यास के मार्ग को बताऊँगा ॥१॥ आज ही उम पाजों को पूजा करके समादिरत करता हूँ। बिना यथोचित रीति से हवन किये हुए पूजा का प्रयोग नहीं करना चाहिए। हृदय को हृदय में स्थस्त करके होम भस्मादि से निषण करे ॥२॥ कर्म सहित अहसून्न को स्वयोनि में वित्यस्त करे तदन्तर किश्वसुर्जारिन में यज्ञ करे और गृह आकर आचमन करे ॥३॥ अग्नि की प्रदक्षिणा करके कीजाकर के द्वारा ही पवित्र भस्मोदक पिये ॥४॥ और मैं सत्यस्त हूँ इस प्रकार कहें और व्रत का आचरण करे। इसके बाद देवता अग्नि और गुरु-तीनों की प्रदक्षिणा करे ॥५॥ शिष्य के सहित सिर की मृण्ड कराके इसके बाद सब कुछ छोड़ दे। सुख और दुख में एक समान समझे। देव और लोक सबको समान माने ॥६॥ पवित्र जल से हाथ और पूँछ धोये इसके पश्चात धीरे धीरे संचरण करे। वषट्काल में सूनसान घर और तृक के मूल भाग का आश्रय न ले ॥७॥ मौन भाव साधे और देह का ध्यान छोड़ दें, हृदयाधिप देवता का ध्यान धरे, देवता और गुरु को देखकर मनसा पूजा<sup>१</sup> करे ॥८॥ इस प्रकार का आचरण करता हुआ वह व्यक्ति निःसन्देह शुद्ध हो जाता है उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती और सर्व प्रकार से मुक्ति का अधिकारी हो जाता है ॥९॥ इसप्रकार श्री साम्ब-पुराण के ज्ञानोत्तर में ७८ वाँ अध्याय समाप्त होता है।

१. पाठ—सत्यासबन्धन्

२. वाह्य पूजा मानसिक पूजा के अभाव में व्यर्थ है। महानिवणितन्त्र, ०पृ ३५७-८४, देखिए सनतकुमारतन्त्र भूतशुद्धितन्त्र उद्दिरित बुडराठ, प्रित्तपिल्ल आफ तन्त्र, पृ० ७६८-७१

## अष्टाय १६

जब राष्ट्र दस्युओं से नष्ट हो जाये अथवा बनवानि शत्रु द्वारा पराजित हो जाये तब राजा द्वारा प्रार्थना किये जाने पर चाहे जीर्ण हो चाहे विगत चेष्टा बाला हों सन्यास<sup>१</sup> से लौट आना चाहिए ॥२॥ इसके पश्चात् लौटकर तीन दिन तक शुभ गोष्ठ सेहार मंत्र का जाप करे तदन्तर नमस्कार आदि पूजन द्वारा संभाष्य योग्य बने ॥३॥ इसके बाद स्नान कर पवित्र होकर देवाधिदेव को प्रणाम करके यह प्रार्थना करे कि मुझे क्षमा करें मेरी रक्षा करे ॥४॥ बीजयोनि का आवाहन करके इसके बाद पृथ्वी का सन्धिसन वरे जल को मस्तक पर डाले और दण्डमा द्वारा यज्ञ करे ॥५॥ संहार शक्ति का आवाहन करके आत्मा न्यास का प्रयोग करे स्वकलीकृत करके तदन्तर यज्ञ करे ॥६॥ इसके पश्चात् शेष सौ हविष का पान करे प्रकृति को प्राप्त करके दीक्षा शक्ति प्राप्त करे ॥७॥ पायिव मन्त्रों से अग्नि में सौ घृताहुतिया देकर वारुण द्वारा हविष देकर उसी प्रकार पान इत्यादि करे जैसा पहले बताया गया है ॥८॥

तदन्तर बीजयोनि द्वारा स्नुति करके पूजा और प्रणाम करके यह प्रार्थना करे कि है देवेश । मैं कृपा के योग्य बनू और काम और सद समृद्धियो के लिए समर्थ होऊ ॥९॥ इसका प्रूवेप्रमाण कहा गया है इसी विधि में न्यास द्वारा निवर्तन करना चाहिए ॥१०॥ इस प्रकार श्री साम्ब पुराण में ज्ञानोत्तर में उक्ता अध्याय समाप्त होता है ।

१. द्रष्टव्य है कि भारतीयों की राजनीतिक चेतना एवं देश-भक्ति की भावना इतनी प्रबल थी कि राष्ट्रीय संकट में सन्यासियों के लिये भी विधान था कि वे संसार में लौट आये ।

२. गोष्ठ का अर्थ यही सभा व्यवचा समाज लिया जा सकता है

## अध्याय २०

अथवा संशयापन स्थिति में तत्काल मुक्ति का प्रयत्न करे । दक्षिण -  
मूर्ति<sup>१</sup> में आश्रित होकर देवता की सम्मान से पूजा करे ॥१॥ देवदण्ड  
के फल स्वरूप धीर स्थिर चित्त और इन्द्रिय द्वारा देवता की सम्मान से उत्साह  
नपने हृदय में परम पुरुष का न्यास करे ॥२॥ आचमन के बाद तुमः आच-  
मन करके यथाक्रम मंत्रों का प्रयोग करे । वायव्य कोण में अग्नि की निविदा  
करके स्वंप्र को वही प्रश्नुक्त करे । तदन्तर संहार देवता द्वारा अग्नि सूर्य  
करे ॥३॥ संहार महिन कही यदी योनि पाप का विनाश करनी है और  
तत्त्व बीज के जप से पाप को शीघ्र ही तट करके ॥४॥ भूनेश योनि  
को दग्ध करके क्रपशः शिव योनि में प्रवेश करके उसके पश्चात् एह संयुत  
होकर वायु के द्वारा अचलीकृत होकर ॥५॥ शिव और अग्नि की परिचर्या  
हो जिसने कि भूतक्षय हो । इसके पश्चात् हृदय में कही गई अग्नि के मधी-  
भूत होने पर ॥६॥ शरीर के पापों को दग्ध करे । परमेश्वरी के मंत्रों का  
जप करे ॥७॥

द्वारों के शीर्ष पूर मध्यपर्मडली को ब्रह्मा ने व्यवस्थित किया इससे  
अनन्तर विद्वानों ने सौ यज्ञों के सोभ से अग्नि के मार्य को छढ़ा कर दिया ।  
अविकाशी ईश्वर के ऊंचे सलाट भाग को भेद कर प्रतिष्ठा हो गया । एकार  
से उत्पन्न होने वाले विसर्गस्त को स्वर्य न आविष्ट करे ॥८॥ इस प्रकार  
इस साधना द्वारा मनुष्य मृत्यु के अनन्तर परम शिव<sup>२</sup> में प्रवेश करना ॥  
॥९॥ इस प्रकार साम्बन्ध-पुराण में द०व० अध्याय भगवान् होता है ।

१. शिव का एक रूप जिसमें वह योग, ज्ञानादि के शिष्यक बनाये गए  
हैं देखिए राव, एलीमेन्ट्स आफ हिन्दू आइकनो शॉप्स, २ (१),  
पृ० २७३.

२. शैव प्रभाव परिलक्षित करता है ।

## अध्याय २९

इन आठों नामों के पश्चात् अनुपूर्वों के अनुसार भिन्न भिन्न अर्थवेद से संदर्भसर शरीर के रूप में परब्रह्म योग विद्यनान है ॥१॥ इन प्रतिलोम प्रब्दी कहा गया है । इसे सात्त्विक पूजक क्रमः दीप दिक्षायि और स्पर्श करे और २४ अग्नियों से ३ योगों से सम्पन्न करे विसर्गस्थ उपंजन आदि और अंत से उपमित होना चाहिए और अन्त में विन्दु से संयुक्त को ॥२॥ २२ अन्तराओं और ११ आकूर से युक्त हो और अंकार तथा वषट्कार से दोष्ट हो ॥३॥ अन्तस्थ वर्णों को तथा उष्मों को भी शलाका के अंत में संयुक्त करना चाहिए ॥४॥ अन्तग वर्णों को प्रतिमंत्र विधि से प्रसव में युक्त करे ॥५॥ अंत में अतग एक एक के तीन तीन खंड कलिपत करे ॥६॥ मन्त्रों के साधन से प्राण चालन में नित्य उच्छोर करे ॥७॥

आसन पर क्षुरिका विनयस्त करके भंश प्रयुक्त करे और नदनोर शलाका पूजन करे ॥८॥ अग्नि के षष्ठी विधान में दीपन और अभिषेचन में और ध्यान में जप करे और परम विधि का उपर्योग करे ॥९॥ सहित कर्म में शमो, बेल, पलाश, दूब काला तिल, कुस और फूलों के समूह प्रयुक्त करे ॥१०॥ दूध सहित पुर्ण वृक्षों का प्रयोग करे । किंशुक<sup>१</sup> वृक्ष नित्य घन प्रदान करने वाला है ॥११॥ करवीर कनक यह वृक्ष शैव दायक है प्रियंगु और सौध्रपुष्प ये भी जीवन दायक है ॥१२॥ शतपुष्पों, बीजों, सबण

१. ढाक का वृक्ष जिसके फूल सुन्दर किन्तु निर्गंध होते हैं—विद्याहीना न शोन्ते निर्गंधा इव किंशुकाः चापव्यषतक, ३. शतु० ६.२०, रघु०, ३१.

मंस, और महिलका आदि को जष द्वारा होम कर्म में प्रयुक्त करना चाहिए ॥१४॥ कीवे और उलू के पंखों अथवा जिन जीवों में प्रस्तर बैर नहीं है उनके पंखों को प्रयुक्त करे ॥१५॥ बहेड़ा, खैर, सहचर और बासक इन लकड़ियों का प्रयोग उच्चाटन यज्ञों में करे ॥१६॥

इवल्ष विद्वानों में और परकीय नंद्रों में जो कुछ बताया गया है उन्हीं में सबको सिद्धि होती है ॥१७॥ जो रस विहीन हों वीजों का प्रयोग समस्त अभिवार कर्मों में ऐसे वाह्य प्रयोग करना चाहिए ॥१८॥ कल्पों द्वारा कही गयी विधियों से सबको सिद्धि नह्काल करनी चाहिए ॥१९॥ मंत्र मम्पुट योग से शलाका से मिद्दि करे ॥२०॥ अूरिका और कर्तृरी द्वारा दक्षिण निवाणि का आवाहन करे ॥२१॥ तीनों लक्षों के धीमे साधक को परमेष्ठिन को सावना चाहिए । किया कारण को सिद्ध करने वाले व्यक्ति को यह सब कार्य श्रेष्ठ शिलात्म पर करना चाहिए ॥२२॥ मूर्य देवना के कारण बनाकर को गयी यह साधना बानन्ददधिती होती है । भृतेश्वर अंकर की साधना केवल जल और वायु का पान करके भयानक रात्रि में करनी चाहिए ॥२३॥ साधना युक्त मनुष्य को शमशान भूमि में भक्षण करते हुए सारी साधना करनी चाहिए ॥२४॥

ज्येष्ठ मास में ज्ञवकि बालू संतरन रहनी है साधक को मृष्टि का जष करना चाहिए ॥२५॥ जष के अंत में मंत्र साधक को दीपक दिखाना चाहिए भस्म को लगाये, भस्म में शयन करे और जो का भोजन करे ॥२६॥ भस्म निष्ठ साधक को भस्म द्वारा सिद्धि मिलती है यही भास्कर का व्रत है ॥२७॥ इसे सम्पन्न करने से क्रमशः साधक संकपण और विदेशीता को प्राप्त करता है ॥२८॥ व्रत के अंत में साधक पुरुप स्वेच्छा से बीज कार्य में संचारण करे जैसा कहा शया है मन्त्र कीष में अनेक शास्त्र है ॥२९॥ सून्हे अथवा पके कंदमूल फलों तथा पत्रों का भोजन करे असर्पर्द इस विधि से आठ याम का पान करे ॥३०॥ अथवा विधिपूर्वक मंत्रों द्वारा प्राप्त किया भित्ता अन्न अंतिमिति के सहारे सिद्धि करे ॥३१॥ साधक बालि को चाहिए कि

व्योमस्थ अथवा अग्निस्थ कार्यों को संवत्सरतनु स्थित पूजा मंत्रों के पूर्व सिद्ध करे ॥३२॥ अनुलोम विधि से हृदय मंत्र का जप करके कत्तरि श्रीरक्तच और शलाका इन तीनों का उपयोग करे । अग्नि, जिर, रौत्य, स्वायोनि, शिखा अपरा प्रतिमास्था और परा ये आठ शक्तियोनियाँ हैं ॥३४॥ पूरब और पश्चिम में तथा दक्षिण और उत्तर में अथवा अन्याय दिशानुसार स्वरों की पूजा करे ॥३५॥ प्रतिदिन यज्ञ करे और रात्रि में भी द्रव्यों के अभाव में मंत्र तत्पर होकर सिद्धि प्राप्त करे ॥३६॥ और पृथक् पृथक् रूप से क्षुरिकादि साधक को जप से ही एक-एक योग की चतुर्पूर्णी सिद्धि प्राप्त करना चाहिए ॥३७॥ इस प्रकार श्री साम्ब-गुरुण में ज्ञानोत्तर में ८१वाँ अध्याय समाप्त होता है ।

१. भस्म-स्नान और भस्म-शैयन पशुपतीं का विशिष्ट कर्मकाण्ड था देखिए गणकारिका, रत्नटीका, ७ पृ. १७ सर्वदर्शनसंग्रह, पृ. १६८  
“...भस्मना त्रिपवणं स्नायीत भस्मनि शथीतेति” बृहत्संहिता, अध्याय ३६ पद्म १६.

## अध्याय २२

अब इसके उपरान्त मंत्र तत्त्व से उत्पन्न होने वाला परम रहस्य<sup>१</sup> बता रहा है जिससे कि चराचर युक्त सम्पूर्ण मंत्र पूर्ण तथा व्याप्त है ।

फल, व्याघ, सम, अथातु, मध्य, मध्य, निविड़य औरम, किक्का, समनी परम, परम, कूरिका, फट्ना, अयथाना अयन्ताना, आदि शब्दों से तथा दिशदिशित वीजों से बना हुआ मन्त्र कर्त्तरी (मन्त्र,) कहा जाता है । फट् सेपा तथा पीड़ा के गोग से जो गं, गी, गु, ए, नाम का चक्र बनता है उसे शलाका मन्त्र कहते हैं । जिह्वापूलीय नं के, खं, को जोड़कर परमेष्ठी आदि अक्षरों से दक्षिणा मन्त्र बनता है । इसके बाद हरा, गोग शलाका अर्के फट् गुददेश तथा वायञ्च से फट् तक कूरिका मन्त्र होता है । यह कूरिका मन्त्र सभी नाड़ियों का विरोध करने वाला मंगलमंथ निरंजन के सभी मन्त्रों का सारभूत तत्त्व है तथा सभी मन्त्रों का उपकारक है । क्रिया के मन्त्र में सभी अतों के साथ इसका (कूरिका मन्त्र) प्रयोग<sup>२</sup> होता है । इस प्रकार का बीस लाख की संख्या वाला कूरिका मन्त्र<sup>३</sup> समाप्त हुआ । श्रद्धा ने कहा-समस्त मूलों का आलय और समस्त प्राणियों के हृदय में यह भाव स्थित है ॥१॥ विद्वान् लोग हृदय में स्थित भाव-पुष्पों से सदैव अवैना करते हैं । भावज्ञ युष्मों से ही अर्चना करनी चाहिए अन्य से नहीं ॥२॥

१. मन्त्रों में प्रयुक्त होने वाले शब्दों से अभिप्राय है ।

२. वे० में प्रयोगानामन्त्राण अशुद्ध है, प्रयोगानामन्त्रणा होना चाहिए ।

३. उत्तिक अभिचार में प्रयुक्त होने वाला एक मन्त्र विशेष ।

जरा मरण कारण दिव्य ब्रह्माक्षर पदों द्वारा प्रफुल्ल वद्य संस्थान में  
स्थित मुख में ही उस देव की उपासना करनी चाहिए ॥३॥ विश्व के  
इस विशाल आयतन को ही हृदय समझना चाहिए ब्रह्मा के इस वचन को मुन-  
कर शंकर ने कहा ॥४॥ यत्न पूर्वक सुनो-तुम्हे पुष्पों का उपदेश कह रहा  
है अहिंसा ग्रथम् पुष्प है तदुपरात् इन्द्रियनिग्रह (दूसरा पुष्प) ॥५॥  
(तीसरा) धृति पुष्प, (चौथा) क्षमा पुष्प, और (पांचवा) शोच पुष्प, (छठा)  
अक्रोच पुष्प, सातवाँ लज्जा पुष्प ॥६॥ और आठवाँ सत्य पुष्प इनके द्वारा  
शिव प्रसन्न होते हैं ये जाठों पुष्प<sup>१</sup> अक्षत और अव्यय हैं ॥७॥ इन पुष्पों  
की प्रभावतः प्रकल्पित करके निवेदित करें इस प्रकार जो सदैव अव्यय शिव  
को उपासित करता है ॥८॥

वह तमोद्वार का उद्घाटन करता है निरंजन शिव को देखता है।  
वैदिक लिङ्ग को प्रत्याहार के द्वारा करके ॥९॥

१. शिव की अष्टपुष्पों द्वारा पूजा भारतीय धर्मसाधना की एक विशेषता है देखिए हर्षचरित पृ० २१, १०३, पाठक, हिस्ट्री आफ शंख कल्ट्स इन नार्दन इण्डिया, पृ० १७-१८, मजुमदार, रमेश, चन्द्र, इन्स्क्रिप्ट्सन्स आफ कम्बूज, पृ० ३७७, क० मट्टाभायं दी अष्ट मूर्ति कन्तेष्ट आफ शिव इन इण्डिया इण्डोचायना ऐन्ड इण्डीनेशिया, आई० एच० क्यु० २६, पृ० २३३ ।

२. द्रष्टव्य है कि तान्त्रिक पूजा में शुद्ध भाव को ही प्रकाशिता दी गई है। तुलजा के लिए देखिए प्रिन्सिपिल्स आफ तन्त्र ।

ध्यान वारण पुष्पों द्वारा अव्यय शिव की अर्चना करता है। तृणोन्धन के न्यास करके शरीर में अग्नि दीपित करता है ॥१०॥ मन को सुनिश्चित करके तद्गत दोषों से युक्त करके वारणा के सहारे नासाश्र भाग पर शिव का ध्यान वरे ॥११॥ इस प्रकार देहज पूजां को सम्पन्न करके सदा शिव की प्रकृष्ट इन्द्रियां जग भर में हृस्वता को प्राप्त हो जाती हैं ॥१२॥ ध्यान में मलयन मंत्र साधक दोषों में लिप्त नहीं होता। और ज्ञान शुद्ध होकर विषय वासनाओं से अस्पष्ट होकर विचरण करता है ॥१३॥ मन को भावै आहू बनाकर भीम्य ईश्वर की समझे। इस प्रकार वह साधक सर्वगोचर बनकर समत्व भाव को प्राप्त होता है ॥१४॥ इस प्रकार श्री साम्ब-पुराण में ज्ञानोत्तम दृष्टि अध्याय समाप्त होता है।

## अध्याय २३

साधक व्यक्ति विविधाकार और संच संस्थिति विविधि लिङ्गलत्तर को विविध योग से प्राप्त करता है ॥१॥ जिसका योग परम देवता से उत्पन्न शास्त्र में बताया गया है । ज्ञान, योग और कर्म के द्वारा उसी लिङ्ग का व्यान सदैव करना चाहिए ॥२॥ अहिंसा, शाश्वत, धैर्य, इन्द्रिय-नियन्त्रण, शोच, अक्रोध, और सत्त्व से कर्मशास्त्र ज्ञानने वाले साधकों के लिए श्रेष्ठ तत्त्व है ॥३॥ शास्त्र ज्ञान से योग से और गुरु सेवा से इस प्रकार विविध रीति से विकल्प मुक्ति बताई गयी है ॥४॥ आसन तथा अपान, निःश्वास उच्छ्वास तथा दृष्टियों में तीनों उपचारों में जब ज्ञान से समता हो जाये तब घटमान कारणों को योगी साधक व्यक्ति नियमित कर ले क्योंकि इसके उत्पन्न होने पर विषय रूपी सर्वं ऋडा करते हैं ॥५॥ तथा कथित कारणों विद्वाँ का आवास नष्ट करके तथा स्वंय को संयमित करके सदैव गुरु की पूजा करनी चाहिए बिना विज्ञान योग के मृत्यु का विपर्यय संभव नहीं है ॥६॥ योग से ज्ञान अधिक प्रकृष्ट होता है और तोकिन कर्म हीन होता है विज्ञान से प्रेरित व्यक्ति कर्मयोग को सदैव दर्श करे ॥७॥

एक मात्र ज्ञान के ही सहारे साधक स्वयं विचरण करे आत्मादि के भैरव को ज्ञानने वाला सुख से विचरण करे ॥८॥ प्रकृति और पुरुष को ज्ञानकर ज्ञानी पुरुष कभी उखो नहीं होता । इन सबके भी ऊपर और इसे भी सूक्ष्म सर्वेन्द्रियापौ अध्यय शिव है ॥९॥ ज्ञान बुद्धि स्वरूप उसी शिव को ज्ञानकर मनुष्य श्रेष्ठ वेदवित ही जाता है इस प्रकार स्वकर्म से ही कार्य होता .. व योग से न कर्म से ॥१०॥ अपने ज्ञान से वह चराकर को देखता है जे

युरुष प्रकृति में सीन है और प्रकृति बन्धनों से दूरी होने के ॥१४२॥  
पर और अपर कर्मों का रहस्य जानता हो। आगले लोकों कर्म को न  
छोड़े। प्रकृति से श्रेष्ठ पुरुष है और प्रजाने महापद्म ॥१४३॥  
पर और अपर<sup>१</sup> का विचार करने वाले विवेकी पुरुष इसमें पुरुषों से  
जाते हैं कह व्यक्ति उग प्रकृति में विवर्यन में विश्व है ॥१४४॥ अब ऐसे इसका  
ही है तो फिर बन्धन किमकार होगा और वहि इनमें उत्तरांश पाने के लिए  
कैवल्य कैसे मिले ॥१४५॥ और यदि पुरुष का दर्शन दिया है तो वह निरपेक्ष  
होगा इसलिए ज्ञानवान् योगी सर्वेष सुख प्राप्त करता है ॥१४६॥

कालान्तर में ज्ञान-योगी अपनी हस्तांश से विचारण करता है ऐसे ज्ञान  
संस्कार के कारण ही उक्ता में किसी को क्रीचता है ॥१४७॥ उस अवधि अनु  
आत्मज्ञान द्वारा संसारिक बन्धन के ब्रह्म हो जाने पर क्रीचता नहीं होता  
हो जाता है ॥१४८॥ इस प्रकार सूक्ष्मक भाव के अष्टोग रो ब्रह्म आत्मज्ञान से  
जाता है और आत्मा से आत्मा को हिसा नहीं करता। योग ये तीनों द्वयों की  
हिसा करता है ॥१४९॥ दिग्गायें उसके शीति में विज्ञान होती है और श्री  
श्रोत में व्यवस्थित होता है ॥१५०॥ तब बहु योगी अपने अनुभव के ज्ञानांशों से  
परमात्मा को देखता है वायु का परिचय करने पर ही आवेद भावांकार  
हो सकता है ऐसा कहा जाता है वायु को देख नहीं जाना है अतः  
योगी को शीघ्रता पूर्वक वायु को देखना चाहिए ॥१५१॥ अतिकर में उम्मेद  
होने वाली रूप अस्त्री द्वारा ही श्राद्ध होता है ॥१५२॥ इसके अनुभव अनुभव  
वाली जिह्वा रसज्ज होती है और रस दमणानक होता है ॥१५३॥ इसी  
प्रकार ध्याणेन्द्रिय में गन्ध का ग्रहण होता है और गन्ध वृक्षों का गुण है तुम्हारे  
ने वुक्त उस पृथ्यी में कुछ नहीं है ॥१५४॥ अतिकर को अन्यैष्व वालों का है तो  
कि समस्त आत्माओं में विज्ञान है वायु को देखे और ज्ञानांश वर्तावान् ॥१५५॥

१. ये० में 'परावर' अशुद्ध है 'परापर' होना चाहिए।

इन्द्रियों इत्तद् द्वारा रक्षित होती हैं और हाथ इन्द्र से युक्त होते हैं। पुरुष पांगङ्गंयुक्त है और अज्ञान से लिप्त नहीं होता। ॥२६॥ विष्णु भोक्ता हैं और पापों का मुक्तिस्थान कहा गया है ॥२७॥ वायु वर्चस का सार्ग है और पुरुष उससे संयुक्त है दूसरा लिप्त नहीं होता है ॥२८॥ विश्वात्मा वह प्रजापति आनन्दित करता है अवधि के अनुमार मन के प्रदेश को जाना चाहिए ॥२९॥ जहाँ आत्मा की स्थिति है वही मन की भी । साधक का मन उससे संयुक्त होकर स्थिर हो जाता है ॥३०॥ ऐसे करता है, यही अहंकार है। अहंकार से युक्त होकर मनुष्य श्रेष्ठ नहीं बन पाता ॥३१॥ ब्रह्म का जनन श्रेष्ठ है, सर्वात्मक है वह अज्ञान का विपर्यय है ॥३२॥

जो तत्त्वज्ञानी अन्तःकरण में श्रेविष्य को समझता है और जो तेरह तत्त्वों को जानता है वह योगवित है ॥३३॥ इन तत्त्वों के द्वारा आत्मा जानने परीक्ष्य है जो भाव अभाव हो उसकी भावना करनी चाहिए भाव-भावकों द्वारा जानने परीक्ष्य नहीं होते ॥३४॥ भाव के भावना ज्ञान से प्रजाओं का विषयर्थ होता है विश्वक तत्त्व के जानने से ज्ञान होता है और ज्ञान योगवित को क्रम से मिलता है ॥३५॥ कर्मरत व्यक्ति इस रहस्य को जानकार मुक्त हो जाता है ॥३६॥ योग और साधना इसमें कभी द्वासा नहीं होता, अनेक बन्धनों से बिरे होने पर भी अनुसरण करता है ॥३७॥ योग के ही द्वारा विचरण करता है, योग से ही ज्ञानी होता है उसका संभव, प्रसव और आलय सब पृथक पृथक है ॥३८॥ करणों<sup>१</sup>, आकृति और चित्त इन तीनों को और दूसरे इन्द्रियों को भली भाँति भावित करता

१. आत्मा-परमात्मा में लीनता का आदर्श प्रस्तुत किया गया है।

२. अहंकार ही बन्धन का कारण है देखिए महाभारत, शान्ति, ११२-२०

३. इन्द्रिय-वपुषा करणोंजिज्ञतेन सान्विषतत्त्वी प्रतिसंप्यपातयत, रघु

चाहिए ॥३६॥ जो समस्त भावों द्वारा भावना योग्य नहीं है ऐसे इस प्रकार अव्यय शिव को जानना चाहिए और यह कार्य एक मात्र ज्ञान<sup>१</sup> से ही संभव है ॥४०॥ लौकिक (प्राकृत) कर्म में भी शास्त्र के अनुसार शिव<sup>२</sup> का ध्यान करना चाहिए । श्री साम्बपुराण में ज्ञानोत्तर, में द३ वाँ अध्याय समाप्त होता है ।<sup>३</sup>

१. ज्ञानयोग को ही इस अध्याय में मुक्ति का साधन बताया गया है, तुलना कीजिए इवेताइश्वतर उ० ११२-२०।

२. ५५ से द३ अध्यायों तक वर्णित सौरोपासना शिव प्रभाव से परिपूर्ण है देखिए हाजरा, आन साम्ब-पुराण, सौरवर्क, अनालस आफ अण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इनसटीचयूट, ३६ (१९४५) पृ० ६६-६२।

३: ४७ से द३ अध्यायों तक का भाग उत्तर कालीन है । १२५०-१५० ई० के मध्य रचा गया है देखिए हाजरा, वही ।

## अध्याय २४

ओ सम्ब ने कहा, हे भगवान् ! मुनिश्रेष्ठ ! समस्त कुछ रोगादि उपद्रवों<sup>१</sup> से प्राणीजन सदैव पीड़ित होते रहते हैं ॥१॥ जिस कर्म विपरक से, हे महात्मे ब्रह्मज्ञ ! यह सब होता है वह सब सुनने की मेरी इच्छा है ॥२॥ नारद बोले- ब्रह्मोपवासों द्वारा सूर्य देवता जिनके द्वारा अन्य जन्मों में नहीं सन्तुष्ट किए गए हैं हे यशुसिंह ! वही मनुष्य कुछरोगादि के भागी होते हैं ॥३॥ साम्ब बोले-हे मुनि ! उनके रोगों का उपशमन कौन होता है सत्य-सत्य मुझे बताइये ? ॥४॥ नारद बोले-हे महाबाहु साम्ब ! सुनो वे लोग सूर्य देवता को उपासना करे जिससे कि समस्त रोगों से मुक्ति भिल जाती है इसमें कोई संशय नहीं ॥५॥ साम्ब बोले-थृति का विस्तार करने वाले, प्रभूत अर्थ वाले इन समस्त रहस्यों को आपने बताया जिसे सुनकर मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है इसमें कोई सन्देह नहीं ॥६॥ सूर्य को उद्देश्य करके महात्मा पाठक को क्या देना चाहिए कि पाप नाशक सूर्य प्रसन्न हो जाए ॥७॥ नारद बोले-हे महाबाहु ! निष्पाप साम्ब ! सुनो मैं तुम्हें बता रहा हूँ उस सूर्य को जानकर यथाविधि उनकी पूजा करके ॥८॥

गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप, स्वर्ण भूषण, वस्त्र, जिरोरत्न, आभृषण इन सर्वके द्वारा ॥९॥ सूर्य रूप वाले उस पाठक की पूजा करके अविक्षय कपिला गण दान देव ॥ गेहूँ, जौ, उड़व और मूँग का दान देव ॥१०॥ हाथी, घोड़ा,

---

१. द्रष्टव्य है कि साम्बपुराण की रचना का कारण साम्ब का कुछ-रोगग्रस्त होना कहा जा सकता है वही विषय इस पुराण के अन्तिम अध्याय में पुनः प्रमुख हो गया है ।

भैस और विविध रहन, सोना, चाँदी, कांच और ताँबे के बत्तेन का दाक दे ॥११॥ दास और दातियाँ दे लौर उपजाऊ जमीन दे । विशुद्ध मन से अनेक पटु बस्त्र दे ॥१२॥ जो सूर्य की दो पत्नियाँ—हैं निशुभा और राती, उनकी प्रसन्नता के लिए पाठक को बस्त्रालंगार देना चाहिए ॥१३॥ इस प्रकार जो व्यक्ति इस भूतल पर भक्तिपूर्वक दान कर्म सम्पादित करता है वह शुच पौत्रादि से संयुक्त होकर हर्ष से भरे हए मन बाला होकर ॥१४॥ पृथ्वी पर समस्त शोणों को भोगकर सूर्य-लोक में आदर प्राप्त करता है अद्वितीये पुराणों को पढ़ने से जो फल मिलता है वही फल उसे साम्ब-पुराण के पढ़ने से मिलता है यह मैं सब सत्य सत्य कह रही हूँ ॥१५॥ इस प्रकार थी साम्ब-पुराण में वसिंठ-वृहद्बल सम्बाद में ८४ वाँ अध्याय<sup>१</sup> समाप्त होता है । थी साम्ब सदाशिव को अविज्ञ है । शुभ हौ । यह सन्धि समाप्त हो गया ।

१ भाषण के इस आधारे पर अध्याय को साम्ब-पुराण के सूच भाग का अंश, — यानि जा सकता है अस्तु इसकी तिथि ६०९-६१० ई० के मध्य निश्चित की गई है देखि हाजरा, बहु ५० ई० ।

## विशिष्ट व्रन्थ-सूची

ब्रह्माल वी० एत०,	मार्कोडेश पुराण, एक संस्कृतिक अध्ययन, इलाहाबाद, १९६१
अलौ एस० एम०,	मत्स्य पुराण, ए स्टडी, वाराणसी, १९६३
आष्टे, वी० एस०,	ज्ञानन पुराण, ए स्टडी, वाराणसी, १९६४
अरोरा, आर० के०,	वी जियागरफो आफ वी पुराणाज, विली, १९६६
अवस्थी, ए० वी०, एल०,	संस्कृत-हिन्दी कोश, वाराणसी, १९७३
इरविज़न जुलियस,	दी मगाज, सनवरणिंग ग्रैंड दी भविष्य पुराण, पुराणम् १३ (?) जनवरी १९७१ स्टडीज इन दी स्कॉल पुराण,
कविराज गोपीनाथ,	ए डिसक्रिप्टिव कैटलाग आफ वी संस्कृत मैनस्क्रृप्ट्स इन दी लाइ-बैरी आफ इण्डिया आफिस, लन्दन (भाग ६) १९४४
काणे धी० वी०,	ए कैटलाग आफ संस्कृत मैनस्क्रृप्ट्स इन गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज लाइब्रेरी, सरस्वती भवन, वाराणसी, (भाग १) १९१८-३०
कान्तराल, एस० जी०;	हिन्दी आफ धर्मशास्त्र भाग १, (२), पूना, १९६२
	कल्चरल हिन्दी काम दी मत्स्य पुराण, बडोदा, १९६४

- कीथ ए० बी०,  
किरफिल, डब्लू०  
भाज्जावरन एन०,  
गोती, एम० ही०,  
बटजी, अशोक,  
दोक्षितार बी० बार० आर०,  
इंसार्हे, एन० बाई,  
पारवीटर, एफ० ई०,  
आठिल, ही० बार०,  
ब्राम्हेश् एल० पी०,
- कैटलाग आफ दी संस्कृत ऐण्ड प्रारूप  
मैनहस्कृप्ट्स इन बी लाइब्रेरी आफ  
इण्डिया आफिस, भाग २ (पाँडे १-२)  
आवस्फोर्ड १९३५
- दास पुराण पंच लक्षण, बान, १९२७  
गुरुद पुराण, ए स्टडी, वाराणसी, १९७५  
अविनपुराण ए स्टडी,  
बंड्या पुराण, ए क्रिटिकल स्टडी,  
कलकत्ता, १९७२
- इन्सिधन्ट एण्ड इन्डियन सोसाइटी एज डिविडिड इन  
दी मत्स्य पुराण, ए स्टडी, मद्रास, १९३५
- एन्सिधन्ट एण्ड इन्डियन सोसाइटी एज डिविडिड इन  
दी मार्कंण्डेय-पुराण, बड़ौदा, १९६८
- पुराण, इन्साइक्लोपिडिया आफ रेलीजन  
ऐण्ड इथिक्स, भाग १०
- दी पुराण टेश्ट्स आफ डायनस्टीज  
आफ दी कलि एज आवस्फोर्ड, १९१३
- एन्सिधन्ट इन्डियन हिस्टोरिकल ट्रूडी-  
शन, लन्दन १९२२
- कल्पन्तर विश्वामी वी वायु पुराण,  
पूता, १९४६
- सन्तवरसिष इन ऐन्सिधन्ट इन्डिया,  
वाराणसी १९७१

युशालकर, ए० छी०;	स्टडीज इन वो इपिःस ऐण्ड पुराणाज, बम्बई, १९५२
मिराशी, वी० वी०,	श्री भोस्ट फम्ल टेम्पुल्स आफ वी सन, पुराणम्. (c) १९६६
मनकडे डी० आर०,	पुराणिक क्रान्तालाजी.
मणि, वी०,	पुराणिक इन्साइक्लोपिडिया, वाराणसी, १९७४
बोनर, ब्रिलिस,	न्यू लाइब्रे आन दो सनटेम्पुल आफ कोनाकौ, वाराणसी, १९७२
बेहरा, के० एम०,	पामलोफ बैनक्लाट आन कोनाकौ टेम्पुल, इण्डियन हिस्ट्री कार्येस १९७४
बनेल ए० सी०,	ए बलासीफाइड इन्डेक्स दु वी संस्कृत मैनस्कृत्स इन वो पेलेस ऐड सन्जौर, लन्दन, १९६०
राय, एस० एन०,	पौराणिक धर्म एवं समाज, इलाहाबाद, १९६८
विल्सन, एच० एच०,	विल्सन पुराण (१-५) लन्दन १९६४-७०
बुडराफ सरजान,	दी रारलैण्ड आफ लेटरस मद्रास, १९७४
	प्रिन्सिपिल्स आफ तन्त्र, मद्रास, शक्ति ऐड शाक्त, मद्रास; १९६३
	वी सरऐन्ट पावर, मद्रास १९७४
	महात्मिक्य तन्त्र, मद्रास १९७१
वेदकुमारी	नीलमत पुराण भाग १ वाराणसी १९६८ इंट्रोडक्शन दु तन्त्र शास्त्र, मद्रास १९६८

शासनी ग.न० पी०,

थीवासनक, वी० मी०,

शासनी एवं गुड़ी,

शासनी, पी० पी० पूर्ण,

ए डिस्क्रिटिव कैटलाग आफ संस्कृत  
संस्कृष्टिस इन दी सनन्नमेट कलेशन  
अ-उर दी बैयर आफ एशियाटि न  
सोसाइटी बंगाल, भाग ५ कलकत्ता १९२८  
सनवरशिय इन ऐसियट इण्डिया,  
डलाहापुर, १९७२

पुराणक रेकार्ड्स आन दी सनवरशिय,  
पूराण, १९ (२) जुलाई १९६६  
ग्रन्टीक्यूटी आफ दी मगाज इन ऐन्सियट  
टिउब, इचियन हिम्ट्री कांग्रेस १९८८,  
गगाज दी इन्सियज प्रसिद्ध इन इण्डिया,  
श्रीसीतिश्व इन्टर युनीवर्सिटी सेमी-  
नार, बेंगल आफ ऐडवान्सड एटडी,  
डिवार्डमेन्ट आफ ऐन्सियट हिम्ट्री ऐ०३  
कलधर, कलकत्ता युविक्सिटी, १९६८,  
दी मगाज ऐ०३ दी सनवरशिय,  
अ.ल डिण्डिया ओरियन्टल कानकैन्स,  
भजीगढ़ १९४५

सनवरशिय इन बलि, ए हापीथीसिस  
पूराण गाय १७ (१), जनवरी १९७५  
ए डिस्क्रिटिव कैटलाग आफ संस्कृत  
संस्कृष्टिस इन दी लाइब्रेरी आफ  
संस्कृत कालेज, कलकत्ता, १९०२

ए डिस्क्रिटिव कैटलाग आफ दी  
संस्कृत संसिक्षिट्स इन दी तंजौर  
महाराज सरफोजी महल लाइब्रेरी,  
तजौर, श्रीरंगम, १९३२

स्टेटेक्सन, एच० वान०,  
हाजरा, आर० सी०; इंडिश्च सोनिन प्रैमिटर साम्ब आ॒उ<sup>१</sup>  
वैश्व शाकद्वीपीय ब्राह्मण, वेस्त्रेंटिन,  
१९६८

स्टडीज इन दी पुराणिक रेकार्ड्स  
आन हिन्दु राहस्य ए२८ कस्टम्स,  
हाका १९५०

स्टडीज इन दी उपग्राम्याज, भाग १  
कलकत्ता, १९५८

दी उपग्राम्याज, अनाल्स आफ भ०डार-  
कर औरिन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट  
(२१) १९५०

दी साम्ब-पुराण शू दी ए४४८, जन्मल आफ  
एशियाटिक सोसाइटी, लेटर्स, भाग  
१८ (२)

दी साम्ब-पुराण-ए सौरवर्क आफ डिफे०ट  
इन्ड्स, अनाल्स आफ भ०डारकर  
औरियाटल रिसर्च इन्स्टीट्यूट भाग  
२६, १९५५

श्री गोस्ट इमोडैट लैसेज आफ सन  
वरशिप, भारतीय विद्या, ४ १९४२-४३

## शब्दानुक्रमणिका

अग्नि—१, ७४, ८१, १०४; १५३, १६०,	अनुवत्सर—६७ १७१, १८२, १८५, १८७, २०२,	अण्डकपाल—७०, ७१ २२६, २२७, २३३, २३५, २३६,	अनन्त—७७, २३२, २३७ २३७, २४३, २४७, २५६, २५७	अङ्गतर—७७ २७८, ३११, ३१२, ३१३, ३१८, ३१९, ३२१	अरिष्टनेत्रि—७३, २३२, २३७, अवस्फूर्जी—७७ अमा—६० अश्वमेघ—१४३, १४६ अरुणाहिती—२२२, २३६ अंगावह—२३७, अमला—२३५, अंशमाठर—२३७ अम्बिका—२३७, अनुलोम—३१६, अवरितु—२३५, अनल—३५ अनिल—६५ आदित्य—२०, २६, ३७, ६४, ६५६, ७, ८८, १३०, १४१, १४३, १५१, १५३, २२१, २२३, २३२, २४२, २४६ आप—६५, ७५
अमरावती—७, ७३					
अलकापुरी—७					
अर्यमा—१२, १३, २६,					
अंशु—१२, १३, २६, ६५, ७७, १०७, २११, २२३, २३१, २३६					
अंगिरा—२४, ३८, ७७					
अवि—२४, ५२, ६६, ७७					
अर्क—२६, १३२, २२४, २३१					
अश्विनीकुमार—४२, १३०, २६९					
अरुण—५१, ७५, १६३, २१६, २१७, २३१, २३४, २३६, २४६, २५४,					
अजएकपाद—६४					
अहिरवृन्दय—६४					
अर्यमान धाता—६८					
अनमलोचनी—२३२, २३७					
अरुणि—२३१					
अनुमन्ता—६५					

आद्रव—२५

आदिह—६६

आद्विग्वसु—२३७

इन्द्र—१, १२, २०, २६, ३१, ३३, ४२, ४५,  
५१, ६६, ७३, ७८, ७९, ८१, ११५,  
१४३, १६०, २०६, २११, २१७,  
२२५, २३१, २३३, २३६, २३७,  
२४१, २४५, २४७,

इन्द्रवत्सर—६७

इन्द्रियाकु-पुत्र—१२६

इन्द्रलीका—२०१, २०४

ईश न—७२, ७४, १४३, १६०, १७१,  
१४६, २१७, २५१, ३०३

उदवसु—२७

उत्तरकुह—४०

उद्वक्षि—६६

उग्रमेत्र—७७

उर्वशी—७७, २३२, २३५,

उदावसु—२४३

उपशमन—३२४

ऊर्जायु—७७

ऋक—२६, ८६

ऋतु—७७

ऋतुस्थल—२३२, २३४

एलापंच—७७

कृष्ण—१, ६, ७, ८, ६, १०, ११,

कामदेव—६, ६५

केनु—४, ६, ८, १२, १३३, २३२, २३४

कामया—२८, ३४, ३८, ३५, ४३, ५३, ५५

कामिनी—३६

कार्तिनी—५, ५५५, १०५

कुमेर—५, ८, १५, २१, २८, २९३, १०३, १२५,  
१४५, १५१, १५३, १५४

कामी—३४

काम—६५

कुमा—१०, १४३, १४४, १५१, १५२

कुमी—३३

कुमारी—३३

कुमीनक—११

कुमुकभ—८५, १०८

कुमुकी—१५, ५

कुमार—१५१

कैवा—१५२

कामंज—१५६

क्रोम—१५६

खलीनक—२३३, २३४, २३५, २३६

२३७, २३०, २३३, २३१,

२४४, २४५

गणेश—१

गःध्यमदेव—१५

गत्वर्व—४८, ५८, ५५, ६०, ६५,

गृह्ण—५८, ६८, ६८, ६८, ६८,

गौतम—६६, ७७

गौणक—५८

## साम्ब पुराण

मूत्रसन—७६	जाम्बवनी—१०, १८, २८, ६४
यहेश्वर—६१	जान्दकार—५८
गान्धिवर्णी—११३	जमदग्नि—६६, ७७, २०१, २०२, २०३
भगा—१२७, १५७	२०४
गृह—२५५	जनलीक—६८, १७१, १४१
चन्द्रभागा—६, १२, १३, ८७, ८०,	जम्बू—७०
८३ ८४, ९७, १७,	जपोतिष्क—७१, ७२, १४३
१२७, १८७,	जाम्बुनद—७१
चित्रगुप्त—५८	जम्बूदीप—७१, १५, ८६, १८६
चन्द्रमा—६२, ६७, ६८, ७८ ७९, ८०	जान्दक—१०७
८१ ८२, ८४, ८८, १३२,	जाम्बवती-पुत्र—१२९
१६०, १६२, २१७, २२५,	जबलद—२३४
२४३, २८१	जठर—२९५
चाक्षुप—६५	त्वष्टा—१२, १३, २६, ३८, ६२, ७७, ८११
चन्द्रलोक—८०	२१७, २३३, २३६,
चित्रसेन—७७	तपती—४०, ४३, (नदी) ४८
चित्रांगद—७७	तुषित—६५
चन्द्रकान्तमणि—८५	तपोलोक—६८, ७१, १५१
चन्द्रमण्डल—८६	तक्षक—७७
चन्द्रमासश्चुंग—१४३	तक्ष्य—७७, २३२, २३५, २३७,
चित्रसंजक—१४३	तिलोत्तमा—७७
चण्डपिंगल—२५३	तोष—१४२
चित्रनाभि—२३६	तुरुष्क—१५५, २२८
चन्द्र—२३७	तपोवन—७७, १५०, १५३
चित्रभानु—२४०	दधीचि—२
छाया—३६, ४०, ४१, ४३,	द्वारकापुरी—७, ८, १६
क्षुत्राप—७८	दुर्वासा—१०

दिघि (दण्ड) — २०, २२, ३७, ५८,	नैमित्यारब्द्य — १
५६, ६०, ६१, १३५,	नारद-कहे २१६, २२१, २५६, ७,
दण्डनावक — १०७, १२१, १४०,	८२, ११, १५, १६, १२१८,
दक्ष — २४, ६५	११८, २३, २४, २६, ३२,
दिवाकर — २५, ३३, ८३, ८८, ११८,	४१, ४५, ४६, ४७, ४८, ५४,
१८१, २११२४१	५६, ६१, ६२, ६३, ७५,
दिति — ३८	८०, ८३, ८७, ९४, १५,
दम्भ — ४२, ६५	१०७, १२४, १२७, १२८, १३८,
दक्षसाचणि — ६६	१३५, १३६, १७६, १८०,
द्वारवती — ६७	१८८, २०१, २०६, २१३,
दण्ड — १००, १४२, १६५	निश्चया — २८, ३७, ३८, ४३, १२०, १२१,
दुर्गा — १२५	१४२, २३८, ३२५,
दण्डी — १४३	नारायण — ८८, ६५, १४३, १६०;
दण्डपाणी — २२२, २३१, २३४	नामत्य — ८२, ६५
छाता — १२, १३, २६, २११-२३१, २३६,	चर — ६५
३०३	निवह — ६६
बर्मराज — ४३	नैऋत्यपूरी — ७०
ध्रुव — ६५, ६७, ६८, १७६	निपृत्ति — ७८, २३३, २३७
धर्म — ६६, ६७	नैमित्य — १२७
धर्मसाचणि — ६६	नर्नदा — १२७
धृतार्ची — ७७, २३५, २३७	नदग्रह — १३०,
धृत रात्रि — ७७	नैपृथ्य — १६०, २४७, २५१, ३०२
ध्रुवावती — १६६	पञ्चशिख — ५
धृषि — २३२	प्रद्यमन — ७
धृणिप — २३७	पूषा — १२, १३, २६, ६४, ७७, २११,
ध्रीः कवच — ३१६	पञ्चन्त्य — १२, १३, २६, ३४, ७७, ८८,
धृति पुष्प — ३१८	३११,

## साहचर्य-फुराण

- पिंगल—२०, २२, ३७, १०७, १२०,  
१२१, १३५, १४२, २२२,  
२३१, २३४, २३६, २३८,  
२४७,
- पुलमत्य—२४
- पुलह—२४, ५१.
- प्रभाकर—२६
- प्रदलाद—३६
- पृथ्वी—४३
- प्राप्त्ययान—५८, १०७।
- पुरुरव—६४
- पारावत—६५
- प्रवह—६६
- परिवाह—६६
- परिवत्सर—६७।
- पुष्कर—७०, ७४, ८७, ११७, १२७,
- पुजिकस्थला—७६, २३७,
- प्रहेति—७६
- प्रमलोचन्ती—७७, २३२,
- पौरुषेय—७७
- पशुपति—८१, १७६,
- पथोणी—१२७
- पृथ्यूदक—१२७
- पश्चग—१३०
- पृथ्वी लोक—१७९
- पदपिण्ड—२२३, २२४,
- पुरुषोत्तम—२२९
- प्रभा—२३२
- पूर्वचित्ति—२३२
- प्रम्लोचा—२३५, २३७,
- प्रेमा—२३७
- पूर्वचित्त—२३७
- पारियात्रि—२५७
- प्रियंगु—३१४
- ब्रह्मा—१५२, १९६, २०६, २३३, २३७,  
२३९, २४०, २४१, २४३, २४६,
- २५७, २६०, २६२, २८५, २८७,  
२९०, ३१३,
- ब्रह्मा—५, २०, २३, २४, २५, ३५, ४५,  
४७, ५०, ५२, ५४, ५५, ५७, ५८,  
६२, ६४, ६७, ७४, ७५, ८४, ८६,
- ८१, ९७, १०७, ११८, १२५,  
१२६, १७१, १७२,
- ब्रह्म—१७०, ३२२,
- ब्रह्मन—२२५
- बालस्थिल्य—२५५
- बृहद्बल—४, ६, ७, १२, १६, १८; २३;
- १३८, १४३, १७०, ३२५,
- ब्रह्मलोक—७, ५०, ६८ १४१, १६६;
- बृहस्पति—३८, १७१, २२४, २३७,
- बड़वा—४२
- ब्रह्मसावणि—६६
- ब्रह्मप्रेत—३७
- बुध—१३२, २३२, २३७,

- |                             |                            |
|-----------------------------|----------------------------|
| ब्रह्मरुद्र—१७२             | महादेव—३४,३५,३६,           |
| ब्रह्मज्ञ—३२४               | महेश्वर—३५,६७,८४३,२९१,७६६, |
| भास्कर—२,६,२९,३२,५५,८२,८९,  | मरुत—४१,६५,८१,११८,१४३,     |
| ९१,९४,९७,१५७,१७२,           | माटर—५८,१०७,२३२,२३५,       |
| १८७,२१३,८४२,३१५,            | मेष—६४,६०,७१,७८,७३,८५,८६,  |
| भय—१२,१३,२९,३२,६५,८११,      | महल्लीका—८८,७१,            |
| भूगु—२४,५२,७७,              | मानस—७०,६६,                |
| भानु—२६,२३३,२३७,८५५,        | मेनका—७७,८३७,              |
| भूवनी—३८                    | महापथ्य—७७                 |
| भूत—६५                      | महेन्द्र—८८,८९             |
| भवसावणि—६६                  | भग—८६,८६                   |
| भौत्य—६६                    | मादग—८६,८८,                |
| भारद्वाज—६६,७७,             | मामग—८६                    |
| भूलोक—६८,७१,१४१,            | महालोक—१८१                 |
| भुवलोक—६८,७१,१३१,१४१,       | मेघनाथ—१७६                 |
| भूतमातृका—२२२               | महानस—१८२                  |
| मनु—२,४३,६५,१७६,१८२,        | मोदगङ्गा—१८७               |
| महेश—८८,११८,                | मुण्डी८—१८४                |
| माकंडेय—२                   | महाइवेता—२८८,२३१,२३४,      |
| भूसल—१०                     | मेना—२३८                   |
| मित्र—१२,१३,१४,१६,२९,६४,७६, | मैती—२३७                   |
| २११,२३१,२३६,                | मैताक—२५६                  |
| मिहिर—१४०,१४२,२२१,२२२,२२९,  | यमराज—१,२३,४०,४३,७३,८१,    |
| २३०,                        | १२५,१६०,                   |
| मित्रवन—१५,८७,८३,८८,१७८     | यजुष—२६,८८                 |
| मारीचि—२४,३८,               | यम—३८,४०,४३,१४३,२१७,२२५,   |
| मर्त्तण्ड—२९,३८,५४,९१,      | २११,२३३,२३६,२४७            |

## सामिक्र शब्दालं

३

यमी—३६, ४३	रायोदया—५०
यमुना—४३, २२, ७१, १५७	रामानन्द—५२
यमपुरी—७०, ७४	रामीता—५२, ५३
यमती-पुरी—७३	रामराज्य—१५, १३५, २३७
यक्षप्रेत—७७	रामिक्षिय—३२, २३८, २३९
याजक—१०१	रामि हृषीकृष्ण, २०३, २३१,
योगीण—१६९	२३२, २४२
योगवह—२३२	रामन—१०४, १८३
राक्षस—१	रामुका—१०१, २०२
रुद्र—२०, ३१, ३८, ४५, ५५, ५६, ६५,	रामित—२३२
६५, ७५, ८५, ११०, १११, ११२,	रामीराम—२३०
१७१, १७२, १८०, १८१, १८२,	रामहर्षीकृष्ण—२३१
२६४,	रामकृष्ण—२३२
रुद्रलोक—७, ५८,	२३३—३०१
रैवतक—८	रामगण्डर—३५, ११२, १५७
रुद्रिमणी—१०	रामभी—१०७, १२५, १८१
रक्षोहति—७६	रामीतुल—३१६
राजी—२२, ३७, ४३, १५५, १८३, १८४,	रामानुज—३१८
२८३,	रामानुजी—३१८
राज—२२	रामदेव—५२, ११२
रमा (इन्द्रलोक की अवतार) —३३	रामेश—३१८
रैवत (रैवत) —४३, ६८, १८,	रामानी—३, १३, १३, १५, १६, १७,
रैवत—६४, ६५	१८, १९, २०, २१, २२, २३, २४, २५,
रजस—६५	१८०, १८१, १८२, १८३, १८४, १८५,
राहु—६७, ६८, ८३, ८५, ८६, ८७, १३३,	२३५, २३६, २३७, २३८, २३९, २४०,
२३७,	२४१

वैशम्पायन-२	वैदस्वत-३६,६६,७३,१२६,१५२
विष्णु-२,५०६,१२ १३,२०,२३,२५, ३१,३४,३२,४५,४७,५२,५६, ६२,६४,६६,७४,७७,८१,८८, ८९,९७, १०७, ११८, १२४, १२६, १२८, १४२, १६६, १७१, १७२, २११, २३१, २३६, २४१, २४२, २४३, २४०, २४४, २२२,	विन्ध्याचल-८८ विश्वामित्र-४७, ६६, ७७ वायु-५२, ७०, ७४, १३५, १६०, १७१, २२५, २३३, २३७, २४७, २७८, ३०८, ३२१,
विष्णुलोक-७	वयु-६८, ६५, १३०, १४२, वृपाक्षि ३८
विश्व-४,६,७, ८,९६,१०,१२,१४, १६,२०,२४, ३७,६६, ७७, ८७,८१ ८४,८३,८६, १०२, १०५, १०६, ११३, ११७, १२७, १३५, १३८, १४२, १५०, १५७, १७४, १७८, १७६, १८१, १८२, १८३, १८८, ३२४,	विवस्वत-११८, २०६ विश्वावसु-७७ व्याघ्र ७७ व्यूहचि-७७ विश्वत-७७ विश्वदेव-८४ विभावसु ५५, ७७ दद, १४८ वृहद्यज्ञ-४६ विनायक-१०७ वर्षनिका-११८ वेगवती-१३७ वामदेव-१३० विकंकत-१४६ विष्णुरद्व-१७२ व्यास-१८७ विवाधिष्ठि-२२५ विष्वद्यज्ञ-२३२ विश्वाची-७७, २३२, २३७
वरुणलोक-७	
वरुणघुरी-७३	
विवस्वान-१२, १३, २६, ३८, ४५, ५२, ६४, ७७, ८१, २११,	
विश्वकर्म-२७, ३८, ४१, ४२, ४५, ४६, ४८, ५१, ५६, ६३, ६४, १०५, १२८, १७६, १८८, १८८, २३२, २३५, २३७, २४३,	
विरीचन-३८	

- |  |  |
|--|--|
| विराट् - २३२   | शाकाद्वीप - ४२, ६४, ६५, ६६, ६७   |
| वक् - २३२  | शनैश्चर - ४३, ६७, १३२  |
| विश्वाज - २३७  | शोभना - ४३   |
| विद्युश्वर २७०   | शुचि - ६६, ७७, ८१  |
| वाहृण्ड्रत - २७६   | शुक्र - ६७, ७७, १३२, २२५, २३२,<br>२३५, २३७   |
| चीरभद्र - २९४  | शैनेश्चर - २३७   |
| दिव्याधर - २६६   | शंखपाल - ७७  |
| विवृत - २६७  | श्वेतद्वीप - ८७  |
| व्याहृति - ३०७   | शति - २२५, २३२   |
| विसर्गस्थ ३१४  | शयमा - २३२   |
| वासक - ३१५   | शिवतंत्र - २६६   |
| व्याव - ३१७  | शिवधात्री - ३०१  |
| विषयव - ३२०, ३२१, ३२२  | षडानन - १  |
| वायुवर्चस - ३२२  | सूर्यलोक - ७, १४, २७, २७, ३२, ४७,<br>५३, ५८, ८०, ८३, १०४,<br>१२१, १२२, १३४, १५२,<br>१५५, १७१, १८८, २०८,<br>२१०, २११, ३२५ |
| शंकर - १, २, २५, ५२, ५७, ५८, ६१,<br>६२, ७०, ७२, १०७, १२५,<br>१२६, २२५, २३३, २३७<br>३०१, ३१५, ४ | सत्यभाभा - १०  |
| शिव - ५, ५२, १२६, २६१, २६२, २३८,<br>२६७, २६८, २६९, ३१३, ३१८,<br>३१९, ३२०, ३२३                  | सुमेरु - १५, २०, २२, ४३, ६२, ६४, ७१,<br>७३   |
| शीनक - १   | स्तोष - १२   |
| शुकदेव - ५   | साम - २६, ८८   |
| शाहृदेव - ८६   | सुषुप्ति - २७  |
| शुतश्वा - ४०   | सुरादत्य - २७  |
| शुतकर्मि - ४०  |  |

## शब्दानुक्रमणिका

सौम्यसुरत—२७	सुव्रत—८६
सविता—२६, ६४, २३६, २४३	सर्वदेव—८९
सुरुपा—३८	सरस्वती—१०३, ११७, १२७, १३८,
सुरेणु—३८	१६६
संजा—३८, ४०, ४३, ४५	सिंघु—११७, १२७
सावर्णिमनु—४०, ४३	सद्विता—१२६
संवरण—४३	सावित्री—१२६, १५१
सोम—५२, ६५, ६७, ७४, ८४, १०४, १०७, १२८, १४१, २४७	सत्यलोक—१४१
स्वारोचिष—६५	सूर्यग्रहण—१५५
सूर्यसावर्णि—६६	सत्यवती—१६६
सर्वलोक—६८, ७१, १४१	सुनगा—१६६
सत्यलोक—६८, ७१	सनत्कुमार—१८२
सुतल—७१	सतलज—१८७
सुशाल—७१	सूर्यहृदय—२२३
सौमनस—७१, ७२, १४३	सुवर्चसा—२३२, २३७
सुखापुरी—७३	स्वर्णरेतस—२२१, २३६, २४१
सोमपुरी—७३	सुरराज—२३७
सेनजित—७७, २३२, २३४, २३७	सुषुम्ना—१४३
सुषेण—७७, २३०, २३५, २३७	हिरण्यगर्भ—२३, २४, ६४, २३८, ३
सूर्यचर्ची—७७	हरिकेश—२७, २३२, २३७, २४३
सहजन्या—७७, २३२, २३७	हिरण्यकशिपु—३८
सूर्यमणि—८५	हेमकूट—७०, ११८
सूर्यमण्डल—८४, ८७, १०३, १०४, १६१, १६३, १६४, १८८, २४५,	हिमालय—१४, ११८
	हेरम—१२५